भारत में स्थानीय सरकार एवं प्रशासन

बी.ए.-III
(Option II)

Directorate of Distance Education
Maharshi Dayanand University, Rohtak

भारत में स्थानीय सरकार एवं प्रशासन

(Option II)

बी. ए. III

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक—124 001

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

विषय सूची

अध्याय 1	स्थानीय शासन का अर्थ एवं महत्त्व	5
अध्याय 2	भारत में स्थानीय शासन का विकास	12
अध्याय 3	नगरपालिका की रचना, कार्य, प्रशासन	23
अध्याय 4	भारत में नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन : प्रकार, भर्ती एवम् प्रशिक्षण	38
अध्याय 5	नगरपालिकाओं पर राज्य का नियन्त्रण	45
अध्याय 6	राज्य विभाग और नगरपालिका निकायों का निदेशालय तथा शहरी विकास मन्त्रालय	50
अध्याय 7	नगर निगम	62
अध्याय 8	74वाँ नगरपालिका संविधान संशोधन अधिनियम, 1992	80
अध्याय 9	जिला प्रशासन	90
अध्याय 10	डिप्टी कमिश्नरः शक्तियां, कार्य एवं भूमिका	96
अध्याय 11	डिविजनल कमिश्नर	106
अध्याय 12	राज्य मुख्यालय का जिला प्रशासन पर नियन्त्रण	110
अध्याय 13	ग्रामीण स्थानीय स्वशासनः जिला परिषद्, पंचायत समिति, पंचायत	113
अध्याय 14	पंचायती राज वित्त, क्रमिक प्रशासन, भर्ती एवं प्रशिक्षण	130
अध्याय 15	पंचायती राज संस्थाओं पर सरकार का नियन्त्रण	142
अध्याय 16	पंचायती राज में राजनीतिक दलों की भूमिका	148
अध्याय 17	73वां संशोधन – 73वें संशोधन अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ	153
अध्याय 18	पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में राज्य सरकार एवं संघीय सरकार की भूमिका	167
अध्याय 19	ग्रामीण–नगरीय सम्बन्ध एवं समस्याएँ	173

B.A.-III

PUBLIC ADMINISTRATION
LOCAL GOVERNMENT AND ADMINISTRATION IN INDIA
(Option-II)

Max. Marks: 100
Time: 3 Hrs.

Note: Ten questions in all will be set out of which only five are to be attempted by the examinees. There will be one objective type (multiple choice) question which will be compulsory.

Local Government: Meaning and significance, evolution of Local Government in India since 1882.

Municipalities: Composition, functions, finances, personnel, general working of municipal bodies with special reference to Haryana and Punjab. State Government to control over municipal bodies.

State Department and Directorate of Municipal bodies, its organization and functions.

Role of the Ministry of Urban Development as well as the Central Council of Local Self-Govt. in regard to municipalities.

Municipal Corporation: Composition, functions and finances, Town and Metropolitan Planning in India, 74th Constitutional. Amendment Act, 1992.

District Administration: Its features, purposes, problems, Deputy Commissioner: his role and position, administrative change in the context of planning and Development at district level, Divisional Commissioner: his role and position: State Headquarter's control over district Administration.

Rural Local Government: Zila parishad, Panchayat; Samiti, Panchayat: Their composition, functions, finance role of political parties in Panchayati Raj, 73rd Constitutional Amendment Act, 1992.

Role of State and Union Government in regard to Panchayati Raj Institutions in Policy, assistance, training and general control.

Problems of rural-urban relationship.

अध्याय-1
स्थानीय शासन का अर्थ एवं महत्त्व
(Meaning and Significance of Local Government)

आज लोक कल्याणकारी राज्य में सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था को सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि ऐसी शासन व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक भागीदारी निभाता है। सीले (Seeley) के अनुसार, "लोकतन्त्र ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक भाग लेता है।" लोकतन्त्र तब तक सफल नहीं माना जाता जब तक इसे विकेन्द्रित न किया जाए। इसका अर्थ है कि जब तक स्थानीय स्तर के लोगों को अपनी समस्या को सुधारने का अधिकार न दिया जाए लोकतन्त्र शासन व्यवस्था को सफल नहीं कहा जा सकता। सच्चा लोकतन्त्र वहीं है जहाँ पर स्थानीय समस्याओं को हल करने के लिए योजना व नीतियों का निर्माण उन्हीं स्थानीय लोगों के द्वारा किया जाए क्योंकि मूल समस्याओं से वे ही जूझते हैं और उन समस्याओं का हल भी वे ही जानते हैं, केन्द्रीय स्तर पर बैठे हुए नेताओं व अधिकारियों को स्थानीय स्तर की समस्याओं का ज्ञान नहीं होता, अर्थात् अनेक समस्याएँ ऐसी होती हैं जो स्थान या क्षेत्र की अपनी–अपनी होती हैं तथा जिनका समाधान स्थानीय निवासी ही भली–भाँति कर सकते हैं। अतः सत्ता, अधिकार, शक्ति व उत्तरदायित्व के विकेन्द्रीकरण के द्वारा आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्यों में स्थानीय शासन की संस्थाओं की स्थापना देखने को मिलती है। ब्रिटेन में इन्हें "स्थानीय सरकार", संयुक्त राज्य अमेरिका में "नगरपालिका शासन", फ्रांस में "स्थानीय प्रशासन" तथा भारत में "स्थानीय स्व–शासन कहा जाता है। स्थानीय शासन की इकाइयाँ वस्तुतः न केवल लोकतन्त्र की आधारशिला है अपितु "रीढ़ की हड्डी" भी है। पं० जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "स्थानीय स्वशासन लोकतन्त्र की सच्ची पद्धति का आधार है और होना भी चाहिए। हम नीचे के स्तर पर लोकतन्त्र के बारे में कुछ नहीं सोचते लोकतन्त्र ऊपरी स्तर पर तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि इसका निर्माण स्थानीय स्वशासन के आधार पर नहीं किया जाता।" अतः स्थानीय शासन के आधार पर लोकतन्त्र का निर्माण किया जाता है।

स्थानीय शासन का अर्थ
(Meaning of Local Government)

साधारण शब्दों में स्थानीय शासन से अभिप्राय उस शासन से होता है जहाँ स्थानीय मामलों का प्रबन्ध स्थानीय व्यक्ति स्वयं अपने प्रतिनिधियों द्वारा करते हैं। इस शासन का सम्बन्ध किसी स्थान विशेष में रहनेवाले लोग तथा उनके द्वारा चलाए जानेवाले शासन से होता है। व्यवहार में वे सब कार्य जिनका सम्पादन ग्राम पंचायतों, ब्लाक समितियों, जिला परिषदों नगर–पालिकाओं, परिषदों तथा निगमों द्वारा होता है, स्थानीय शासन के अन्तर्गत आते हैं। स्थानीय शासन की परिभाषा विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न रूप में दी गई हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

ब्रिटेन के एनसाइक्लोपीडिया (Encyclopaedia Britannica) के अनुसार, "स्थानीय शासन का अर्थ पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अन्दरूनी प्रतिबन्धित एवं छोटे क्षेत्र में निर्णय लेने तथा उनको क्रियान्वित करने की सत्ता से है।"

जी०डी०एच० कोल (G.D.H. Cole) के अनुसार, "स्थानीय शासन एक ऐसा शासन है जो अपने सीमित क्षेत्र में प्रदत्त अधिकारों का उपभोग करता हो।"

एल० गोल्डिंग (L. Golding) के अनुसार, "स्थानीय शासन एवं बस्ती के लोगों द्वारा अपने मामलों का स्वयं प्रबन्ध करना है।"

गिल क्राइस्ट (Gilchrist) की दृष्टि से "स्थानीय सस्थाएँ अधीनस्थ संस्थाएँ हैं जिन्हें सीमित क्षेत्र में कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है।"

जी०एम० हैरिस (G.M. Harris) के अनुसार स्थानीय स्वशासन, "स्थानीय संस्थाओं द्वारा शासन है, जो कि स्वतन्त्र रूप से निर्वाचित हों, परन्तु राष्ट्रीय शासन के अधीन हों।"

एच० सिजविक (H. Sidgwick) के मतानुसार, "स्थानीय शासन में कुछ अधीनस्थ संस्थाएं होती हैं जिनको निश्चित क्षेत्र में कानून और नियम बनाने का अधिकार प्राप्त होता है।"

जे०जे० क्लार्क (J.J. Clarke) के अनुसार, "स्थानीय शासन किसी भी राष्ट्र अथवा राज्य की सरकार का वह भाग है जो कि मुख्यतः ऐसे मामलों से संबंध रखता है, जो कि किसी जनपद अथवा स्थान के निवासियों से संबंधित होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि स्थानीय शासन एक ऐसी व्यवस्था है जो स्थानीय लोगों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होती हैं तथा जिन्हें राष्ट्रीय तथा राज्य सरकार के नियन्त्रण में रहते हुए भी स्थानीय स्तर की समस्याओं के शासन हेतु अधिकार व दायित्व प्राप्त होते हैं। स्थानीय शासन अपने सीमित क्षेत्र में प्रदत्त अधिकारों का उपभोग करता है किन्तु स्थानीय शासन अपने क्षेत्र में सम्प्रभु नहीं होता।

स्थानीय शासन सत्ता के विकेन्द्रीयकरण पर आधारित है और इसका मुख्य उद्देश्य स्थानीय क्षेत्र के निवासियों का कल्याण एवं विकास करना होता है। स्थानीय स्तर पर गठित संस्थाएँ स्वतन्त्र व स्वायत्त होती हैं और ये प्रशासन का संचालन बिना रोकटोक करती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ये पूर्णतः स्वतन्त्र होती हैं, ये राज्य एवं केन्द्र सरकारों के अधीन रहकर कार्य करती हैं।

स्थानीय शासन की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of Local Government)

स्थानीय शासन के अर्थ व परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी विशेष क्षेत्र के स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा संचालित शासन प्रबन्ध ही स्थानीय शासन कहलाता है। स्थानीय शासन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. ***निश्चित स्थानीय क्षेत्र (Definite Local Area)*** – स्थानीय शासन की प्रत्येक इकाई, चाहे वह नगरपालिका की कोई संस्था हो या पंचायत की कोई संस्था हो, का अपना एक निश्चित कार्य क्षेत्र होता है। स्थानीय शासन की प्रत्येक इकाई का अधिकार क्षेत्र व सीमान्तर का निर्धारण राज्य सरकार/संघीय सरकार करती है। इस निश्चित अधिकार क्षेत्र के अन्दर रहकर ही स्थानीय शासन की इकाई अपने दायित्वों का निर्वाह करती है। State Government स्थानीय शासन की किसी भी इकाई की सीमा का निर्धारण करते समय सम्बन्धित क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व (1 km. वर्ग में रहनेवाले लोग), स्थानीय क्षेत्र की आय के साधन, शहरीकरण या ग्रामीण पृष्ठभूमि का विस्तार आदि तत्त्वों को ध्यान में रखती है।

2. ***स्थानीय सत्ता (Local Authority)*** – स्थानीय शासन की संस्थाओं का प्रशासन कुशलतापूर्वक चलाने के लिए वहाँ के नागरिकों के प्रतिनिधियों को सत्ता व शक्ति सौंपना आवश्यक है। ये चुने हुए प्रतिनिधि स्थानीय शासन के संस्थाओं के प्रशासन का संचालन करते हैं और अपने क्षेत्र के लोगों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इन प्रतिनिधियों को स्थानीय समस्याओं के बारे में ज्ञान होता है और ये अपने विचार केन्द्र या राज्य सरकार के पास प्रभावशाली तरीके से पहुँचा सकते हैं। इसलिए स्थानीय शासन की संस्थाओं के जनप्रतिनिधियों को स्थानीय स्तर पर शक्ति सौंप देनी चाहिए।

3. ***स्थानीय लोगों की सेवा (Service to Local People)*** – स्थानीय शासन पर गठित सभी संस्थाएं लोगों की सेवा और सुविधा के लिए कार्यरत होती हैं। इन संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य स्थानीय क्षेत्र में रहनेवाले लोगों का कल्याण करना होता है। बिजली, पानी, स्वास्थ्य, यातायात, शिक्षा आदि सभी प्रकार की सेवाओं का लाभ स्थानीय क्षेत्र के लोगों को मिलता है। यदि वित्तीय स्थिति अच्छी हो और राज्य सरकार कुछ सहायता प्रदान कर दे तो स्थानीय लोगों की सेवा के स्तर व गुणों में वृद्धि हो सकती है।

4. ***स्थानीय आय के साधन (Local Sources of Income)*** – स्थानीय शासन की संस्थाएँ स्थानीय सेवाओं व प्रशासन का प्रबन्ध करने हेतु स्थानीय वित्तीय स्रोतों से प्राप्त धन का ही प्रयोग करती हैं। इन संस्थाओं की आय के अनेक साधन होते हैं जिसमें स्थानीय कर (Local Tax) एवं राज्य से प्राप्त ऋण व सेवाओं के बदले ली गई फीस शामिल है। स्थानीय संस्थाओं को अपना बजट बनाने की स्वतन्त्रता होती है। वे अपने शासन को सुचारू रूप से चलाने के

लिए आय के सभी उपलब्ध साधनों का पूरा लाभ उठाती हैं। कई बार स्थानीय नागरिक भी स्वेच्छा से स्थानीय क्षेत्र के विकास के लिए चन्दा, दान आदि भी देते हैं।

5. ***स्थानीय स्वायत्तता (Local Autonomy)*** – स्थानीय शासन की संस्थाएँ स्थानीय लोगों की जरूरतों को पूरा करती हैं। यदि इन संस्थाओं पर अत्यधिक नियन्त्रण व प्रतिबन्ध लगाए जाए तो ये कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। इन संस्थाओं को एक अधिकार क्षेत्र की सीमा में रहकर पूर्ण स्वतन्त्रता व स्वायत्तता होती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि ये संस्थाएँ अपनी इच्छा से कुछ भी कार्य कर सकती हैं। राज्य या केन्द्रीय सरकार के कानूनों व नियमों के विरुद्ध ये संस्थाएँ कुछ भी नहीं कर सकतीं। इन संस्थाओं को किस हद तक स्वायत्तता दी जाए व किस सीमा तक स्वतन्त्रता दी जाए, इसका निर्णय सम्बन्धित विषय पर निर्भर करता है।

6. ***अप्रभुसत्तामयी अस्तित्व (Non-sovereign Existence)*** – ये संस्थाएँ प्रभुसत्ताधारी नहीं होतीं। इन पर केन्द्र व राज्य सरकारों के आदेश व शक्ति का नियन्त्रण होता है। ये केवल स्वायत्त होती हैं। पूर्ण प्रभुसत्ता केवल राज्य के पास होती है। पूर्ण प्रभुसत्ता का अर्थ यह होता है कि किसी मामले पर निर्णय लेने का अधिकार किसके पास हो। स्थानीय प्रशासन चलाने के लिए इन संस्थाओं को स्वायत्तता दी गई है, परन्तु कर्त्तव्यों का पालन ठीक प्रकार से न करने पर सरकार इनके कार्यों में हस्तक्षेप भी कर सकती है। ये संस्थाएँ अपने कार्यों व शक्तियों के सफलतापूर्वक संचालन के लिए, वित्तीय सहायता, तकनीकी सहायता, कानूनों की स्वीकृति एवं कर्मचारियों की भर्ती व प्रशिक्षण के लिए राज्य सरकार की स्वीकृति पर निर्भर रहती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राज्य सरकार स्थानीय शासन की संस्थाओं पर वैधानिक, प्रशासनिक व वित्तीय नियन्त्रण रखती है। इस प्रकार ये संस्थाएँ पूर्णतः प्रभुसत्ता सम्पन्न नहीं होतीं।

7. ***संवैधानिक दर्जा (Legal Status)*** – प्रत्येक देश की स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को संविधान या विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों द्वारा वैधानिक दर्जा दिया जाता है। भारत में 73वें व 74वें संवैधानिक संशोधन के पारित हो जाने के उपरान्त पंचायतों व नगरपालिकाओं से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण बातों का वर्णन संविधान की धारा 243, 11वीं अनुसूची व 12वीं अनुसूची में किया गया है। इससे पूर्व पंचायतों का जिक्र धारा 40 में आता था।

8. ***सभी स्तरों पर गठित सरकारों का आधार (Base of all Levels of the Governments)*** – अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राज्य तथा जिला स्तर पर गठित सरकारों का आधार व नींव स्थानीय शासन की इकाइयाँ होती हैं। इन्हें सरकार की स्टाफ एजेंसी माना जाता है। केन्द्रीय व राज्य सरकार के कल्याणकारी व विकास संबंधी कार्यक्रम स्थानीय स्तर पर ही लागू किए जाते हैं। सभी विषय चाहे वह कानून व व्यवस्था का विषय हो या फिर समाज कल्याण या राष्ट्रीय विकास का, स्थानीय लोगों के लिए होते हैं।

9. ***सरकार व जनता के बीच कड़ी (Link between the Government and the Public)*** – स्थानीय शासन की इकाइयों को सरकार व जनता को जोड़नेवाली कड़ी माना जाता है। जिला प्रशासन जिसे भारतीय लोक प्रशासन का आधार माना जाता है, वास्तव में स्थानीय शासनीय इकाइयों के माध्यम से ही जनता तक पहुँचता है। इन इकाइयों को राजनीतिक शक्ति भी प्राप्त होती है जिनकी उपेक्षा करना व्यावहारिक तौर पर सम्भव नहीं होता।

10. ***जनता का शासन (Rule of the People)*** – स्थानीय शासन को जनता का शासन कहा जाता है, क्योंकि जनता के प्रतिनिधि, जो कि प्रत्यक्ष चुनाव से चुने जाते हैं, ही लोगों के सहयोग व परामर्श के अनुसार स्थानीय शासन का प्रबन्ध करते हैं। इस स्तर पर जन प्रतिनिधियों और जनता के मध्य विशेष दूरी नहीं होती। प्रजातन्त्र, जिसका अर्थ लोगों का शासन होता है, स्थानीय शासन की इकाइयों में ही विराजमान होता है।

11. ***स्थानीय शासन का विभाजन (Divison of Local Government)*** – प्रत्येक देश की स्थानीय शासन की इकाइयों का विभाजन दो प्रकार से होता है – ग्रामीण एवं शहरी संस्थाएँ। भारत में ग्रामीण स्तर पर गठित ग्रामीण शासन की इकाइयों में पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् और शहरी स्तर पर गठित शहरी शासन की इकाइयों में नगर परिषद्, नगरपालिका एवं नगर/निगम सम्मिलित हैं। ग्रामीण इकाइयों में जिला परिषद् और शहरी इकाइयों में

नगर निगम उच्चतम, स्वायत्त तथा शक्तिशाली निकाय माने जाते हैं।

12. ***सरकार पर निर्भरता (Dependence on the Government)*** – स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय लोगों द्वारा गठित प्रशासकीय इकाइयों जोकि स्वयं निर्णय करती हैं, को स्थानीय सरकार कहा जाता है। परन्तु व्यवहार में ये निकाय पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं होते। केन्द्रीय या राज्य सरकार भिन्न–भिन्न आधारों पर इनकी आन्तरिक कार्य–प्रणाली में हस्तक्षेप करती रहती है। सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी इन संस्थाओं की स्वायत्तता पर प्रभाव डालते हैं और इन अधिकारियों को स्थानीय शासन की इकाइयों की स्वतन्त्रता के रास्ते में गले की हड्डी माना जाता है। ये निकाय धन की उपलब्धता, नियमों की व्याख्या, तकनीकी परामर्श, पदाधिकारियों की अवधि तथा कार्यकाल आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर सरकार के दृष्टिकोण व सोच पर ही निर्भर होते हैं।

13. ***निरन्तर विकास की अवस्था में (Incessant Development)*** – स्थानीय प्रशासन की संस्थाओं की एक और विशेषता यह होती है कि ये संस्थाएँ निरन्तर विकास की अवस्था में रहती हैं क्योंकि इनमें हर समय विकास की गुंजाइश रहती है। इतिहास के भिन्न–भिन्न कालों; जैसे – प्राचीन युग, वैदिक युग, मौर्य युग, मुगल युग, ब्रिटिश युग और स्वतन्त्रता के बाद के युग में इन संस्थाओं में किसी न किसी प्रकार का सुधार हुआ है। आज संवैधानिक मान्यता मिलने के बाद इन संस्थाओं का क्रम तथा विकास का क्रम और आगे बढ़ा है।

14. ***प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग (Use of Delegated Powers)*** – स्थानीय सरकार की भिन्न–भिन्न इकाइयों में राज्य या केन्द्रीय सरकारों द्वारा प्रदत्त की गई शक्तियों का प्रयोग किया जाता है। सम्बन्धित उचित सत्ता (Concerned Appropriate Authority) अधिनियमों व उपनियमों के अनुसार इन इकाइयों की शक्तियाँ व कार्य हस्तांतरित करती रहती हैं ताकि प्रजातन्त्र का विकास हो सके और ये संस्थाएँ सरकार के अधीन रहकर अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर सकें।

निष्कर्ष (Conclusion) – स्थानीय शासन की इकाइयों को संवैधानिक दर्जा मिलने के बाद और प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा के विकास के फलस्वरूप स्थानीय शासन का महत्त्व बढ़ गया है। प्रजातन्त्र की गति और सफलता स्थानीय शासन की कार्यकुशलता व श्रेष्ठता पर निर्भर करती है।

स्थानीय शासन का महत्त्व

किसी विशेष क्षेत्र के स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा संचालित शासन प्रबन्ध ही स्थानीय शासन कहलाता है। लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था के महत्त्व एवं उपयोगिता को निम्न बिन्दुओं द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है–

1. ***लोकतन्त्र की आधारशिला*** – स्थानीय शासन व्यवस्थाएँ लोकतन्त्र की जड़ों को गहरा बनाती हैं। इनके अभाव में लोकतन्त्र की सफलता सम्भव नहीं है। वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश देशों में प्रतिनिधियात्मक लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था प्रचलित है, लेकिन इस शासन व्यवस्था के देशों में अधिकांशतः व्यक्तियों का शासन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की जाती है ताकि लोकतन्त्र केवल शिखर पर ही नहीं रहे वह धरातल पर लोकतन्त्र बन सकें। इस प्रकार की आवश्यकता स्थानीय शासन ही पूर्ण कर सकता है क्योंकि इसमें स्थानीय जनता, स्थान विशेष की समस्याओं का प्रबन्ध करती है। अतः स्थानीय संस्थाओं को लोकतन्त्र की "रीढ़ की हड्डी" भी कहा जाता है। वास्तविकता यह है कि उच्च स्तर के लोकतन्त्र की सफलता प्रायः निम्न स्तर के मजबूत लोकतन्त्र पर निर्भर करती है।

2. ***लोकतन्त्र की पाठशाला*** – ब्राइस के अनुसार लोकतन्त्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला तथा इसकी सफलता की गारन्टी स्थानीय शासन है। स्थानीय शासन राजनीतिक अनुभव की विविधता को बढ़ावा देकर तथा अपने को लोकतान्त्रिक पद्धति पर आधारित सृजनात्मक क्रियाकलाप के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित करके लोकतन्त्र की नमनीयता, शक्ति तथा सम्पन्नता के विकास में योगदान देता है। अतः ब्राइस का विचार है कि स्थानीय शासन का जो अभ्यास नागरिकों को होता है उससे उनके व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक कार्यों के प्रति यह कर्त्तव्य की भावना जागृत होती है कि कार्य कुशलता व ईमानदारी से किया जाए। अतः इन संस्थाओं को लोकतन्त्र की "पाठशाला", "प्रयोगशाला" एवं "नर्सरी" कहा जाता है।

3. ***जनता को राजनीतिक प्रशिक्षण***– स्थानीय शासन राजनीतिक प्रशिक्षण का सुनिश्चित साधन है। उसका सम्बन्ध मुख्यतः ठोस कार्यों से होता है जैसे – पार्क विकसित करना, पानी की व्यवस्था, कूड़ा करकट हटाना इत्यादि। अतः स्थानीय संस्थाओं के कार्यों एवं परिणामों को हर व्यक्ति सरलता से देख व जान सकता है। चूंकि हर कार्य जनता की आँखों के सामने होता है अतः महत्त्वपूर्ण स्थानीय समस्याओं के सन्दर्भ में सूक्ष्म वाद–विवाद उठ खड़ा होता है जिससे लोगों को शिक्षा मिलती है और उनमें अनुशासन का विकास होता है। नागरिकों में जागरूकता उत्पन्न होती है तथा उन्हे राजनीतिक प्रशिक्षण मिलता है।

4. ***नेतृत्व का प्रशिक्षण***– स्थानीय संस्थाएँ केवल सामान्य जनता का ही नहीं बल्कि नेतृत्व करनेवाले वर्ग का भी प्रशिक्षण का कार्य करती हैं। उभरते हुए नेतृत्व के विकास में ये संस्थाएँ अत्याधिक सहायक हैं। स्थानीय संस्थाओं के सदस्य इन संस्थाओं के माध्यम से प्राप्त राजनीतिक व प्रशासनिक अनुभव एवं ज्ञान का उपयोग राष्ट्रीय या प्रान्तीय स्तर पर कर सकते हैं। चर्चिल, मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, लाला लाजपतराय, सरदार बल्लभ भाई पटेल, फिरोजशाह मेहता जैसे सर्वमान्य नेताओं ने अपना सार्वजनिक जीवन स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से ही शुरू किया था। लास्की का विचार है – "उन्हीं व्यक्तियों को केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार में प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने का अधिकार मिलना चाहिए जो पहले कम से कम तीन वर्ष तक स्थानीय संस्थाओं में प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर चुके हों।"

5. ***नागरिक गुणों का विकास***– ये संस्थाएँ जनता में अनेक नागरिक गुणों का विकास करती हैं। उदाहरणार्थ उदारता, सहिष्णुता एवं व्यापक दृष्टिकोण, सहयोग एवं सार्वजनिक सेवा की भावना, पारस्परिक समझ एवं सामंजस्य, सार्वजनिक उत्साह आदि भावनाएँ इन्हीं संस्थाओं की क्रियान्विती के माध्यम से उत्पन्न होती हैं। ये संस्थाएँ विभिन्न जातियों एव धर्मों के लोगों में समान लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सामूहिक रूप से मिलजुलकर कार्य करने की भावना पैदा करती हैं। अतः लॉर्ड ब्राइस ने इस सन्दर्भ में लिखा है, "स्थानीय संस्थाएँ सामान्य कार्यों में नागरिकों की सामान्य रुचि जागृत करती हैं। ये लोगों को दूसरों के हित का कार्य करने का प्रशिक्षण ही नहीं देतीं वरन् उन्हें प्रभावशाली ढंग से दूसरों के साथ कार्य करना भी सिखाती हैं। ये सहज ज्ञान, तर्कसंगतता, न्यायप्रियता एवं सामाजिकता का विकास करती हैं।"

6. ***लोककल्याणकारी राज्य के आदर्शों की प्राप्ति में सहायक***– स्थानीय संस्थाओं – सफाई, स्वास्थ्य, जल प्रबन्ध, महिला एवं बाल विकास, कमजोर वर्गों के कल्याण हेतु मेले, बाजार, पुस्तकालय, सांस्कृतिक गतिविधियों, भूमि सुधार का कार्यान्वयन एवं विकास जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन कर लोककल्याणकारी राज्य की धारणा के अनुरूप नागरिकों के जीवन को सुखी एवं समर्थ बनाने में अपना योगदान देती है। वारने के अनुसार, "समाज का कोई ऐसा वर्ग नहीं है जिसकी स्थानीय संस्थाएँ सेवा नहीं करतीं। समाज के कुछ वर्गों की तो ये जन्म से मृत्युपर्यन्त सेवा करती हैं।"

7. ***केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकार के कार्यभार में कमी***– आधुनिक समय में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों पर कार्यों का इतना बोझ है कि यदि उन्हें स्थानीय विषयों का कार्यभार सौंप दिया जाए तो वे कार्यभार से इतनी दब जाएगी कि वे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय विषयों का सम्पादन कुशलतापूर्वक नहीं कर पाएगी स्थानीय शासन केन्द्रीय व राज्य सरकारों को बहुत सी जिम्मेदारियों से मुक्त कर देता है। इस प्रकार स्थानीय संस्थाएँ केन्द्र व राज्य सरकारों को "उच्च रक्तचाप" से बचाती हैं। जेम्स फेसलर के अनुसार हम एक राष्ट्रीय सरकार चाहते हैं जो समस्त कार्यक्षेत्र पर आच्छादित हो ..... हम उप राष्ट्रीय सरकार चाहते हैं, जिनमें से प्रत्येक राष्ट्रीय क्षेत्र के कुछ कार्यों को सम्पादित करें ..... हम म्यूनिसिपल सरकारों का समूह चाहते हैं ऐसे क्षेत्रों के लिए जहाँ कई व्यक्ति साथ मिल–जुलकर रहते हैं, जिनकी सामान्य समस्याएँ हैं और जो सामूहिक सामाजिक जीवन से उत्पन्न हुई हैं।"

8. ***स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध***– स्थानीय शासन की स्थापना से शासन में कार्यकुशलता बढ़ जाती है। यदि स्थान विशेष से सम्बन्धित सभी विषयों का प्रबन्ध भी केन्द्रीय सरकार या प्रान्तीय सरकार के द्वारा किया जाए तो प्रबन्ध नितान्त अकुशलतापूर्ण होगा क्योंकि केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार के कर्मचारी न तो स्थान विशेष की समस्याओं व वातावरण से परिचित होते हैं और न ही उस स्थान विशेष की उन्नति में रुचि रखते हैं। अतः स्थानीय विषयों का प्रबन्ध स्थानीय व्यक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिए। स्थानीय व्यक्ति स्थानीय समस्याओं की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि से परिचित होते हैं और उनका जीवन उस स्थान विशेष से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होने के कारण वे उस स्थान

की उन्नति में विशेष रुचि भी रखते हैं। लास्की के अनुसार, "हम लोकतान्त्रिक सरकार के सभी लाभ तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक हम यह स्वीकृत नहीं करते कि सभी समस्याएँ केन्द्रीय समस्याएँ नहीं हैं तथा जहाँ समस्या हैं वहीं के लोग उसे अच्छी तरह महसूस कर सकते हैं। अतः स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय व्यक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिए।"

9. ***स्थानीय सूचनाओं का सम्प्रेषण*** – स्थानीय शासन स्थानीय जनता तथा राज्य शासन के बीच विचारों और भावनाओं के सम्प्रेषण का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। वह स्थानीय समुदाय की इच्छाओं और आकांक्षाओं को मुखरित करता है और उन्हें राज्य शासन तक पहुँचाते हैं। राष्ट्रीय संकट के समय स्थानीय शासन केन्द्र के लिए डाक केन्द्र की भाँति कार्य करते हुए राष्ट्रीय निर्णयों को देश के हर कोने में पहुँचाने में सहायक होता है तथा स्थानीय क्षेत्रों की घटनाओं को सूचना केन्द्र तक पहुँचाता है। जनसंख्या, भूमि, उत्पादन, खपत, शिक्षा, स्वास्थ्य, आय आदि के सम्बन्ध में केन्द्र एवं राज्य सरकारों को सही आंकड़े इन संस्थाओं के द्वारा ही उपलब्ध कराये जाते हैं, जिनके आधार पर भावी योजनाएँ बनाई जाती हैं।

10. ***नौकरशाही की बुराइयों से बचाव*** – यदि स्थानीय विषयों का प्रबन्ध भी केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार द्वारा ही किया जाए तो नौकरशाही की शक्तियों में अत्याधिक वृद्धि हो जाती है तथा भ्रष्टाचार आदि बुराइयों के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है किन्तु स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के अन्तर्गत स्थानीय प्रबन्ध जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि ही करते हैं। अतः नौकरशाही की बुराइयों को सीमित करने के लिए स्थानीय शासन महत्त्वपूर्ण है।

11. ***विकास कार्यों में सहायक*** – स्थानीय संस्थाएँ अत्यधिक एवं सामाजिक विकास की योजनाओं को लागू करने में अत्यधिक सहायक होती हैं। उदाहरणार्थ – भारत में सामुदायिक विकास की योजनाओं को पंचायत व्यवस्था के माध्यम से लागू करने का प्रयास किया गया। स्थानीय संस्थाएँ कुछ व्यापारिक कार्य भी भली–भांति कर सकती हैं जिसमें आर्थिक लाभ कमाना उद्देश्य नहीं होता। उदाहरणार्थ कुछ नगरपालिकाएँ, दूध, मक्खन, घी आदि सस्ते दामों पर उपलब्ध कराती हैं। प्रो० हिक्स के अनुसार, "राष्ट्रीय परियोजनाओं के प्रसार के लिए जिन सेवाओं की आवश्यकता होती है उन्हें स्थानीय स्तर पर भली प्रकार किया जा सकता है। इनको संगठित करने का सुगम मार्ग स्थानीय शासन है।"

12. ***प्रशासनिक व्यय में बचत*** – स्थानीय समस्याओं से अवगत नागरिक अपनी समस्याओं को अच्छी तरह से ही नहीं अपितु कम खर्च में सुलझा लेते हैं। किसी भी सरकार की कार्य सम्पन्नता चाहे वह केन्द्रीय हो या प्रान्तीय या स्थानीय, इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके पास वित्तीय स्रोत कितने उपलब्ध हैं। स्थानीय सरकारों द्वारा कार्य करने पर प्रशासन में मितव्ययता रहती है। धन की बचत का कारण यह है कि स्थानीय कार्य स्थानीय सत्ता द्वारा किए जाते हैं जोकि स्थानीय स्तर पर कर या फीस के माध्यम से जो फण्ड एकत्रित होता है, उसमें से किए जाते हैं अतः जब स्थानीय व्यक्ति स्थानीय प्रबन्ध में भागीदारी करते हैं तो वे कम से कम कीमत पर कार्य करना चाहेंगे क्योंकि वे जानते हैं कि यह उनका पैसा है जो स्थानीय सेवाओं पर खर्च हो रहा है। अतः वे सेवाओं को अधिक मितव्ययी बनाने तथा धन की व्यर्थ बर्बादी को रोकने हेतु सजग रहते हैं। स्थानीय पदाधिकारियों का स्थानीय समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण सुधारात्मक तथा सहानुभूतिपूर्ण होता है। इसी कारण डॉ० फाइनर ने कहा है कि स्थानीय सरकार की स्थापना से व्यय में बचत होती है।

13. ***सरकारी नीतियों के परीक्षण की प्रयोगशाला*** – रेने ऑस्टिन का विचार है कि स्थानीय संस्थाएँ सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में नवीन नीतियों का छोटे क्षेत्र में प्रयोग करने व परीक्षण करने हेतु प्रयोगशाला है। ये राष्ट्रीय जीवन में स्थानीय हितों का संरक्षण करती हैं। छोटे क्षेत्र में इन नीतियों के सफल परीक्षण के बाद इन्हें अन्य क्षेत्रों में लागू किया जा सकता है। ब्रिटेन में तो ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब किसी नीति को स्थानीय स्तर पर लागू किया गया है। उसकी सफलता का मूल्यांकन कर अन्य स्थानीय संस्थाओं या राष्ट्रीय सरकार ने भी उन्हें अपनाया। भारत में भी पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था का प्रयोग पहले राजस्थान के नागौर जिले में करने के बाद राजस्थान के अन्य जिलों तथा देश के अन्य भागों में इसे अपनाया गया।

14. ***नागरिकों को राष्ट्रीय मुख्यधारा से जोड़ने में सहायक*** – स्थानीय प्रशासन में व्यवहार रूप में भाग लेने में नागरिकों

में स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम एवं देशभक्ति की भावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है। स्थानीय शासन में स्वतन्त्रता का उपभोग करने के बाद नागरिक राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उपभोग करने के लिए तत्पर तथा जागरूक रहते हैं अपने मामलों को अपने सक्रिय हस्तक्षेप से सुलझाने का अधिकार मिलने पर वे महसूस करते हैं कि राष्ट्र निर्माण में उनकी भी साझेदारी है, अतः वे राष्ट्रीय मुख्यधारा में खुशी–खुशी शामिल होने को तत्पर रहते हैं। डॉ० डी० टॉकविले का कथन है, "नागरिकों की ये स्थानीय सभायें स्वतन्त्र राष्ट्रों की शक्ति का निर्माण करती हैं, जो महत्त्व विज्ञान की शिक्षा के लिए प्राथमिक शालाओं का है, वही महत्त्व स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने के लिए नगर सभाओं का है। एक राष्ट्र स्वतन्त्र सरकार की पद्धति को भले ही स्वीकार कर ले, परन्तु स्थानीय संस्थाओं के बिना उसमें स्वतन्त्रता की भावना नहीं आ सकती।"

15. ***व्यापक दृष्टिकोण का विकास*** – स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से नागरिक अपने क्षेत्र की सफाई, स्वास्थ्य, अनिवार्य शिक्षा, जल प्रबन्ध आदि कार्यों में रुचि लेते हैं। इसके बाद ही वे राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करने की योग्यता प्राप्त करते हैं। क्षेत्रीय व स्थानीय मामलों में रुचि लेते हैं और रुचि लेते–लेते नागरिक राष्ट्रीय मामलों में भी रुचि लेने लगते हैं। स्थानीय कार्यों से ही उनका दृष्टिकोण विकसित होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्थानीय शासन की संस्थाएँ न केवल लोकतन्त्र की सुदृढ़ता एवं विकास के लिए अपरिहार्य हैं अपितु नागरिकों के अच्छे जीवन के लिए आवश्यक हैं। जितनी अधिक क्रियाशील ये संस्थाएँ होंगी स्थानीय जीवन उतना ही सुखी एवं सम्पन्न होगा। इन्हीं के माध्यम से लोकतन्त्र को वास्तविक रूप प्रदान किया जा सकता है क्योंकि ये संस्थाएँ ही जनता को राजनीति व प्रशासन में आधिकारिक साझेदार बनाने के अवसर प्रदान करती हैं। ताकि लोकतन्त्र में लोक का महत्त्व कायम हो सके।

अध्याय-2
भारत में स्थानीय शासन का विकास
(Evolution of Local Government in India)

भारत में स्थानीय शासन का इतिहास अति प्राचीन है यद्यपि उनके आधुनिक स्वरूप का विकास ब्रिटिश शासन व्यवस्था के दौरान हुआ। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते, उसे समाज के अन्य व्यक्तियों की सहायता की जरूरत पड़ती है, इसी कारण वह स्थानीय तौर पर समूह बनाकर रहता है। यही समूहों में रहना ही स्थानीय शासन को जन्म देता है। भारत में स्थानीय शासन के विकास को निम्न कालों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्राचीनकाल में स्थानीय शासन।
2. ब्रिटिश काल में स्थानीय शासन।
   (a) 1687 से 1881 ई. तक का काल।
   (b) 1882 से 1919 ई. तक का काल।
   (c) 1920 ई. से 1937 ई. तक का काल।
   (d) 1938 ई. से 1947 ई. तक का काल।
3. स्वतन्त्रता के पश्चात् स्थानीय शासन।

प्राचीन काल में स्थानीय शासन
(Local Government in Ancient Times)

भारत की पौराणिक कथाएँ स्थानीय शासन से सम्बन्धित कहानियों से जुड़ी हैं। प्रत्येक काल में स्थानीय शासन का उल्लेख मिलता है। वर्तमान पंचायतें प्राचीन काल के छोटे–छोटे गणराज्यों के रूप में विकसित हुई हैं। वैदिक कालीन इतिहास के अध्ययन से हमें पंचायतों का अस्तित्व प्राप्त होता है। इस समय में सभा तथा समितियों का उल्लेख भी मिलता है। ये सभा तथा समितियाँ निष्पक्ष रूप से कार्य करती थीं। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में राजा को ऐसे गाँव की रचना का सुझाव दिया है जिसमें कम से कम 100 परिवार तथा अधिक से अधिक 500 परिवार रहते हैं। जिससे गाँवों के संगठन की व्यवस्था इस प्रकार हो कि प्रत्येक 800 गाँवों के केन्द्र में एक स्थानीय, 400 गाँवों के केन्द्र में एक द्रोणमुख, कार्वटिक 200 गाँवों के केन्द्र में तथा संग्रहण दस गाँवों के समूह में हों। कौटिल्य ने नगर के लिए पुर शब्द का प्रयोग किया है तथा पुर के प्रधान अधीक्षक को 'नागरिक'। कौटिल्य ने नगर को कई भागों में विभक्त कर नगर के प्रत्येक एक चौथाई भाग को 'स्थानिक' नाम के अधिकारी के अधीन रखा तथा प्रत्येक दस, बीस, चालीस परिवारों पर एक गोप की नियुक्ति की व्यवस्था की।

गुप्त कालीन व्यवस्था में भी ग्राम पंचायत का अत्यधिक महत्त्व था। उस समय यद्यपि राजवंशी प्रणाली थी, लेकिन शासन का विकेन्द्रीयकरण विभिन्न स्तरों पर किया गया था। गांवों की सुरक्षा शान्ति व मर्यादा के लिए ग्रामिक ही उत्तरदायी होता था। इसके साथ ही पंच मण्डल या पंचायतें सहायता के लिए स्थापित की जाती थीं जिसमें गाँवों के वृद्ध व्यक्ति भी सम्मिलित होते थे।

मुगल काल पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि स्थानीय शासन की सबसे छोटी इकाई गाँव का मुखिया एवं मुकद्दम होता था। जो सरकारी कर्मचारी न होकर उसी गाँव का प्रतिष्ठित व्यक्ति होता था। उसका प्रधानकार्य गाँव में शान्ति बनाए रखना तथा कर वसूल करना होता था तथा पटवारी गाँव का हिसाब–किताब रखता था। इस काल में नगर का प्रशासन कोतवाल के सुपुर्द होता था। मुगल कालीन लेखकों से यह तथ्य सामने आते हैं कि इस काल में पंचायती संस्थाओं की उपयोगिता में कमी आई, क्योंकि मुगल सम्राटों ने इस व्यवस्था की तरफ ध्यान नहीं दिया।

ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन

डॉ. एस. आर. महेश्वरी के अनुसार ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन का आरम्भ 1687 से माना जा सकता है जबकि मद्रास नगर के लिए स्थानीय शासन के निकाय अर्थात् एक नगर निगम की स्थापना की गई। 1687 से उसका इतिहास रंग-बिरंगा तथा विजातीय आत्मा से प्रभावित रहा है। हर युग का अपना निश्चित उद्देश्य व प्रयोजन रहा है।

1. **1687 से 1881**—इस काल में स्थानीय शासन को केन्द्र तथा प्रान्तों के वित्तीय बोझ को हल्का करने का साधन माना जाता था और इसी रूप में उसका प्रयोग किया जाता था। इसी प्रकार वह साम्राज्यीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता था।
2. **1882 से 1919**—इस काल में स्थानीय शासन को स्वशासन के रूप में देखा जाने लगा।
3. **1920 से 1937**—इस काल में स्थानीय शासन प्रान्तों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत चला गया और फिर उस पर जनता के प्रतिनिधियों का नियंत्रण स्थापित हो गया।
4. **1938 से 1947**—इस काल में स्थानीय शासन जीर्णोद्धार तथा पुनर्निर्माण की अवस्था में था।

1. **1687 से 1881**—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में 1687 में मद्रास में नगर निगम की स्थापना की गई। इसे अनेक लोक सेवाओं के लिए उत्तरदायी बनाया गया तथा करों के संग्रह के अलावा इसे दीवानी व फौजदारी मामलों का अभिलेख न्यायालय भी बनाया गया। 1726 में बम्बई तथा कलकत्ता में नगरपालिका निकायों की स्थापना की गई। 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत प्रेसीडेन्सी नगरों में जस्टिस ऑफ पीस की नियुक्ति की गई जिनका कार्य अपने नगरों की सफाई व स्वास्थ की व्यवस्थाओं का पर्यवेक्षण करना था। 1793 के अधिकार पत्र अधिनियम द्वारा उन प्रेसीडेन्सी नगरों में नगर प्रशासन की स्थापना का उत्तरदायित्व गवर्नर जनरल को सौंप दिया गया। उसे इस हेतु मद्रास, बम्बई व कलकत्ता में शांति दण्डाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। 1863 में कलकत्ता में नगर निगम की स्थापना की गई।

   वर्ष 1870 स्थानीय शासन के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा। इस वर्ष लॉर्ड मेयो का प्रस्ताव पारित हुआ जिसमें शक्तियो के विकेन्द्रीकरण तथा शक्तियों को प्रशासन से सम्बद्ध करने की आवश्यकता पर बल देते हुए इस हेतु नगर प्रशासन को सर्वाधिक उपयुक्त मानकर म्युनिसिपल संस्थाओं को सशक्त बनाने का सुझाव दिया गया। इस काल की प्रमुख विशेषताएँ थीं—

   1. भारत में स्थानीय प्रशासन ब्रिटिश स्वार्थों की पूर्ति हेतु स्थापित किया गया, न कि भारत में स्वशासी संस्थाओं के विकास हेतु।
   2. स्थानीय शासन की संस्थाओं में अंग्रेजों का आधिपत्य था। अतः भारतीयों को इनके कार्यकलापों में भाग लेने के समुचित अवसर नहीं मिले।
   3. भारत में स्थानीय शासन को स्थापित करने का मुख्य लक्ष्य साम्राज्यीय वित्त के बोझ को हल्का करना था।
   4. स्थानीय संस्थाओं की सदस्यता के आधार के रूप में निर्वाचन प्रणाली को केवल मध्यप्रदेश में लागू किया गया। 1881 तक पांच में से चार नगरपालिकाएँ पूर्णतः नामित संस्थाएँ थीं।

2. **1882 से 1919**—1880 में लॉर्ड रिपन भारत के वाइसराय बने। रिपन के शासनकाल का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य 1882 का स्थानीय स्वशासन का प्रस्ताव था। रिपन देश की नगरपालिकाओं को विकसित करना चाहता था। उसके अनुसार इन्हीं से देश की राजनीतिक शिक्षा आरम्भ होती है। इनका मुख्य उद्देश्य देश के प्रशासन को उत्तम बनाना ही नहीं अपितु राजनैतिक और लोकप्रिय शिक्षा का साधन बनाना भी था। ग्रामीण प्रदेशों में स्थानीय बोर्डों की स्थापना की गई। प्रत्येक जिले में जिला उपविभाग, तालुका अथवा तहसील बोर्ड बनाने की आज्ञा हुई। इन स्थानीय संस्थाओं को निश्चित कार्य व आय के साधन दिए गए। इन संस्थाओं में गैरसरकारी सदस्यों की संख्या अधिक रखी गई। सरकार का हस्तक्षेप कम करने के लिए आशा की गई कि सरकार इन्हें आज्ञा न दे अपितु इनका मार्गदर्शन ही करें। बोर्डों के अध्यक्ष इन्हीं के सदस्यों द्वारा चुने जायें। प्रस्ताव को प्रत्येक प्रांत को अपनी स्थिति के अनुसार लागू करने का सुझाव दिया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 1883–85 के बीच अनेक प्रांतों में स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित हुए। नौकरशाही भारतीयों को स्वायत्त शासन के योग्य नहीं समझती थी। लार्ड कर्जन ने सभी उदारवादी नीतियों का विरोध किया और स्थानीय संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण बढ़ा दिया।

   इसके अतिरिक्त लार्ड रिपन का यह विचार था कि स्थानीय शासन की संस्थाएं ही भारतीयों को स्वराज्य की ओर ले जा सकती हैं क्योंकि इस स्तर पर लोगों को शासन की आरम्भिक जानकारी मिलती है। 18 मई, 1882 को यह प्रस्ताव प्रस्तुत

किया गया। जिसका कि स्थानीय शासन के इतिहास में बहुत ही महत्त्व है। इस प्रस्ताव की निम्नलिखित सिफारिशें थीं–

लॉर्ड रिपन के प्रस्ताव की सिफारिशें (Recommendations of Lord Ripon's Resolution)– लॉर्ड रिपन की सिफारिशें निम्नलिखित थीं–

1. ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में स्थानीय निकायों (local bodies) की स्थापना की जाए।
2. स्थानीय निकायों में कम–से–कम दो–तिहाई गैर–सरकारी सदस्यों का चुनाव हो और जहाँ तक सम्भव हो सके स्थानीय निकायों के सभापति निर्वाचित तथा गैर–सरकारी सदस्य होने चाहिएं।
3. स्थानीय शासक की संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक शिक्षा प्रदान करना हो।
4. सरकारी नियन्त्रण बाहरी होना चाहिए।
5. स्थानीय निकायों को कर लगाने व सरकार से ऋण लेने का अधिकार मिलना चाहिए।
6. इस संस्थाओं में कार्य करनेवाले कर्मचारियों पर सिर्फ संस्थाओं का ही नियन्त्रण होना चाहिए, सरकार का नहीं।
7. स्थानीय संस्थाओं को बजट तैयार करने में पूर्ण वित्तीय स्वायत्तता मिलनी चाहिए।
8. सामाजिक कार्यों में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों को इन संस्थाओं की ओर आकर्षित करने के लिए राय साहब, राव साहब आदि विशेष उपाधियाँ देनी चाहिए, जिससे वे लगन से कार्य कर सकें।

प्रस्ताव की असफलता के कारण (Reasons of Resolution's Failure)–वास्तव में लॉर्ड रिपन के प्रस्ताव में ऐसी सिफारिशें की गईं जो व्यावहारिक और प्रशंसनीय थीं। इन सिफारिशों का प्रभाव यह हुआ कि कई राज्यों में स्थानीय की वित्तीय दशा सुधरी और चुनाव में गैर–सरकारी सदस्यों को आगे आने का मौका मिला। परन्तु यह प्रस्ताव अपने उद्देश्यों को पाने में असफल रहा। इस प्रस्ताव की असफलता के कारण निम्नलिखित हैं–

1. तत्कालिक अधिकारी वर्ग ने इन संस्थाओं के कार्यों में विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई अतः नौकरशाही का असहयोग इसकी असफलता के लिए उत्तरदायी था।
2. चुनाव–प्रणाली साम्प्रदायिकता पर आधारित थी, जिसके कारण योग्य व्यक्ति आगे न आ सके।
3. इन संस्थाओं के पास वित्त के साधन अपर्याप्त थे, जिसके कारण योजनाएँ पूरी तरह से लागू नहीं हो सकीं।
4. सरकार इन संस्थाओं को अपनी इच्छा से निलम्बित (Suspend) कर सकती थी। इस प्रकार इन संस्थाओं पर सरकार के नियन्त्रण की तलवार हमेशा लटकती रहती थी।
5. लॉर्ड रिपन के प्रस्ताव में ग्रामीण क्षेत्रों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया था।
6. प्रान्तों की सरकारों ने इस प्रस्ताव की मुख्य धाराओं में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किए जिसकी वजह से इसका मौलिक रूप ही बिगड़ गया।
7. लॉर्ड रिपन के बाद कोई ऐसा उदारवादी वायसराय नहीं आया जिसने इन संस्थाओं के विकास में रुचि रखी हो। लॉर्ड कर्जन आदि वायसराय स्थानीय शासन के सख्त विरोधी थे।

लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक (Father of Local Self Govt.) माना जाता है। उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव के सुझावों को हमेशा याद रखा जाएगा क्योंकि इससे पूर्व ये संस्थाएँ न तो पूर्णतः स्थानीय थीं और न ही स्वशासित। उसके प्रस्ताव को स्थानीय स्वशासन का मैगना कार्टा (Magna Carta) भी कहा जाता है। लॉर्ड हैली (Lord Haily) के अनुसार, "इस प्रस्ताव ने भारत में उत्तरदायी सरकार की नींव रखी।" प्रथम बार चुनाव–प्रणाली आरम्भ की गई और भारतीयों को स्वशासन में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ।

स्थानीय शासन के इतिहास में अगला महत्त्वपूर्ण कदम सन् 1906 में गठित राजकीय विकेन्द्रीयकरण आयोग (Royal Decentralization Commission) की रिपोर्ट थी। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट सन् 1909 में प्रस्तुत की। इस आयोग ने निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए–

1. प्रत्येक गाँव में एक पंचायत गठित की जाए और गाँव को स्थानीय शासन की प्रारम्भिक इकाई माना जाए।
2. स्थानीय निकायों में चुने हुए सदस्यों का बहुमत होना चाहिए।
3. नगरपालिका अपना अध्यक्ष स्वयं चुने, किन्तु जिला कलैक्टर को जिला स्थानीय मण्डल (District Local Board) का अध्यक्ष

बनाए रखा जाना चाहिए।

4. नगरपालिकाओं को कर निर्धारित करने और अपना बजट बनाने की शक्ति दी जानी चाहिए।
5. बड़े–बड़े शहरों में पूर्णकालिक अधिकारी मनोनीत किए जाने चाहिए।
6. सरकार का नियन्त्रण बाहरी हो जो कि सलाह देने, सुझाव देने व लेखा परीक्षा तक ही सीमित हो।
7. ऋण लेने तथा नगरपालिका सम्पत्तियों को बेचने या पट्टे पर देने के मामलों में सरकारी नियन्त्रण होना चाहिए।
8. प्राथमिक शिक्षा का विषय नगरपालिकाओं को सौंप देना चाहिए।

सन् 1918 तक स्थानीय निकायों को कोई आशातीत सफलता नहीं मिली और भारत सरकार ने सन् 1918 में 39A एक प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य भारतीयों को स्थानीय स्वशासन प्रबन्ध के मामलों में प्रशिक्षण देना और उन्हें राजनीतिक शिक्षा प्रदान करना था। प्रस्ताव में निम्नलिखत बातें सम्मिलित थीं–

1. गाँवों में पंचायतों को दोबारा से गठित किया जाए।
2. स्थानीय निकायों में चुने गए सदस्यों का बहुमत हो।
3. स्थानीय शासन का मताधिकार विस्तृत किया जाए।
4. स्थानीय निकाय का सदस्य मनोनीत नहीं बल्कि चुना हुआ होना चाहिए।
5. स्थानीय निकायों को बजट निर्माण, कर लगाने तथा कार्यों की स्वीकृति में स्वायत्तता दी जानी चाहिए।

रॉयल कमीशन के सुझावों को उन्होंने पृष्ठांकित किया तथा नगरपालिकाओं को कर लगाने के मामले में अधिक अधिकार दे दिये गये।

3. **1920 से 1937**–1920 में 1919 का भारत सरकार अधिनियम लागू होने पर स्थानीय शासन हस्तांतरित विषय बन गया जिसका नियंत्रण लोकप्रिय शक्ति के अधीन हो गया। केन्द्रीय सरकार ने इस विषय में प्रान्तीय सरकारों को निर्देश देने बंद कर दिये और प्रत्येक प्रान्त को अपनी–अपनी आवश्यकतानुसार स्वायत्त संस्थाओं का विकास करने की अनुमति मिल गई। स्थानीय करों व प्रान्तीय करों की सूची को पृथक कर दिया गया। परन्तु वित्त चूँकि अभी भी आरक्षित विषय था अतः भारतीय मंत्री इस विषय में कुछ नहीं कर सके। स्वशासन की इस क्रियान्विति का मूल्यांकन 1930 में साइमन आयोग ने किया और इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि उत्तर प्रदेश, बंगाल व मद्रास के अतिरिक्त तथा ग्राम पंचायतों के क्षेत्र में इन संस्थाओं में कोई उन्नति देखने को नहीं मिली। स्वायत्त संस्थाओं की दशा 1919 के सुधारों के बाद बिगड़ गई है। अतः आयोग ने सुझाव दिया कि इन स्वायत्त संस्थाओं पर सरकार का नियंत्रण बढ़ा देना चाहिए। इस काल में प्रान्तों द्वारा जो विभिन्न अधिनियम बनाए उनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएँ थीं–
   1. स्थानीय संस्थाओं का गठन प्रायः पूर्ण रूप से निर्वाचन के आधार पर रखते हुए निर्वाचक मण्डल का भी विस्तार किया गया।
   2. स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के अध्यक्ष पद पर गैर सरकारी व्यक्ति की नियुक्ति को स्वीकृति दी गई।
   3. स्थानीय संस्थाओं को अधिक प्रशासनिक शक्तियाँ दी गईं।
   4. स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को वित्तीय क्षेत्र में भी पहले से अधिक शक्तियाँ दी गई थी।
4. **1938 से 1947**–1935 के अधिनियम को 1937 में प्रान्तीय भाग में लागू किए जाने से प्रांतों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को और भी अधिक गति मिली। लोकप्रिय सरकारें वित्त का नियंत्रण करती थीं और इसलिए वे इन संस्थाओं को अधिक धन उपलब्ध करा सकती थीं। प्रान्तीय स्थानीय करों के बीच जो पृथक्वीकरण था, वह समाप्त हो गया। लगभग सभी प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं को अधिक कार्यभार दे दिया गया। परन्तु उनकी कर लगाने की शक्तियाँ लगभग वही रहीं अपितु कुछ कम कर दी गईं अर्थात् चुंगी बढ़ाने, व्यापारों, व्यवसायों तथा सम्पत्ति पर कर लगाने की शक्तियाँ कम कर दी गईं। विकेन्द्रीकरण आयोग की सिफारिशों को अनदेखा कर दिया गया। स्वतंत्रता के समय नये करों के लगाने के लिए प्रान्तीय सरकारों से आज्ञा लेनी आवश्यक थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में स्थानीय स्वशासन का विकास
(Development of Local Self Government in India after Independence)

भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ प्राचीनकाल से ही विद्यमान रही हैं। रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में स्थानीय संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। मध्यकालीन भारत में भी स्थानीय शासन प्रचलित था किन्तु स्थानीय स्वशासन के आधुनिक स्वरूप का विकास, शहरी तथा ग्रामीण दो प्रकारों के रूप में ब्रिटिश शासन व्यवस्था के दौरान हुआ। इस काल में स्थानीय प्रशासन को स्थापित करने का लक्ष्य साम्राज्यीय वित्त के बोझ को हल्का करना था न कि भारत में स्थानीय संस्थाओं का विकास करना। अतः ब्रिटिश सरकार ने जिला स्तर पर स्थित प्रान्तीय सरकार के विभिन्न विभागों के माध्यम से स्थानीय प्रशासन चलाने की नीति अपनाई। कलेक्टर को जिला प्रशासन का वास्तविक शासक बना दिया। अतः सच्चे अर्थों में स्वशासन जैसी कोई वास्तविक व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर लोकतंत्र को अधिक सुदृढ़ बनाने के निश्चय से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के विकास की नवीन आशायें बंधी।

स्वतंत्र भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू हुआ जिसमें स्थानीय स्वायत्त शासन को राज्यसूची के अन्तर्गत रखा गया। संविधान के चौथे अध्याय में राज्य नीति के निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद 40 में राज्य सरकारों को निर्देशित किया गया कि वे ग्राम पंचायतों का गठन अधिक अच्छे ढंग से करें और उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में अधिक अच्छे ढंग से कार्य करने के लिए समर्थ बनाने की भावना से उन्हें आवश्यक शक्तियां प्रदान की जाएँ।

स्थानीय स्वशासन की विकास यात्रा

स्वतंत्र भारत में एक दशक तक नगरीय शासन के क्षेत्र में महानगरों में नगर निगम तथा छोटे नगरों में नगरपरिषद् या नगरपालिकाएँ जिस रूप में ब्रिटिश विरासत में प्राप्त हुई थीं उसी रूप में निरन्तर क्रियाशील बनी रहीं। औद्योगिकरण के कारण नगरों में आवास, सफाई, पानी, बिजली, प्रदूषण, भूमि पर अतिक्रमण आदि समस्याएँ उत्पन्न हुईं। अतः 1961 से नगरीय स्वायत्त संस्थाओं को भी महत्त्व दिया गया तथा तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरीय भूमि के मूल्य नियंत्रण, नगर विकास के लिए मास्टर प्लान, गृह निर्माण हेतु मानदण्ड निर्धारण एवं विकास कार्यक्रमों के लिए इन संस्थाओं को उत्तरदायी बनाया गया।

सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु आरम्भ किया गया तथा यह अपेक्षा की गई कि इस कार्यक्रम में जनता की ओर से सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा। सरकार द्वारा प्रायोजित सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने ग्रामीण विकास के लिए नवीन प्रशासनिक इकाइयों की स्थापना की आवश्यकता उत्पन्न की। अतः सामुदायिक विकास खण्डों की स्थापना की गई तथा खण्ड विकास अधिकारी को खण्ड स्तर पर विकास कार्यों की जिम्मेदारी सौंपी गई किन्तु इस व्यवस्था ने सक्रिय जनसहयोग प्राप्त करने की अपेक्षा पद की प्रशासनिक शक्तियों में वृद्धि की। अतः 1957 में केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् ने सम्पूर्ण सामुदायिक विकास योजना के परीक्षण हेतु गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया।

बलवंतराय मेहता समिति–इस समिति ने स्पष्ट मत व्यक्त किया कि प्रतिनिधित्व करनेवाली लोकतांत्रिक संस्थाओं के निर्माण के बिना स्थानीय लोगों की रुचि एवं स्वयं द्वारा उद्यम को प्रेरित नहीं किया जा सकता। सामुदायिक विकास योजना जनसाधारण में स्वयं कार्य करने की भावना जगाने की दृष्टि से पूर्णतः असफल रही है। इस प्रकार की भावना के अभाव में सामाजिक एवं आर्थिक सुधार की परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर नहीं रह सकेगी। समिति ने सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु पंचायती राज संस्थाओं को प्रारम्भ करने का सुझाव दिया। आयोग ने इस अनुशंसा को "लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण" का नाम दिया। पंचायती राज दर्शन के बारे में लिखा "पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय नेतृत्व एक कड़ी है जो सरकार व स्थानीय जनता को जोड़ता है, तथा सरकारी नीतियों की क्रियान्विति करता है।" मेहता समिति के सुझाव भारत सरकार द्वारा स्वीकृत कर लिए गए। सर्वप्रथम 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में दीप प्रज्ज्वलित कर तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री ज़वाहरलाल नेहरू ने पंचायती राज व्यवस्था का उद्घाटन किया। इसके पश्चात् 1960 से 1964 तक की अवधि में बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, आसाम, प. बंगाल, केरल सहित अनेक राज्यों में पंचायती राज व्यवस्थाओं का गठन किया गया। बलवंतराय मेहता समिति के सुझावों के अनुरूप थोड़ी बहुत भिन्नताओं के साथ त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था को अपनाया गया। इस त्रिस्तरीय संरचना का स्वरूप इस प्रकार था–

1. ग्राम स्तर– ग्राम सभा तथा ग्राम पंचायत (आधार स्तर)
2. खण्ड स्तर– पंचायत समिति (मध्यवर्ती स्तर)
3. जिला स्तर– जिला परिषद् (शिखर स्तर)

पंचायतीराज की इस व्यवस्था की क्रियान्विति के बाद इस व्यवस्था में अनेक कमियाँ उभरने लगीं तथा विकास के बुनियादी लक्ष्य को प्राप्त करने में पंचायतें असफल रहीं। अतः भारत सरकार ने दिसम्बर, 1977 में पंचायती राज व्यवस्था को अधिक सक्षम, कुशल व प्रभावशाली व जनोपयोगी बनाने हेतु सुझाव देने के लिए अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति को नियुक्त किया।

अशोक मेहता समिति–अशोक मेहता समिति ने 1978 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के स्थान पर द्विस्तरीय प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया गया।

1. जिला परिषद्, 2. मंडल पंचायत। पश्चिम बंगाल व कर्नाटक के अलावा अन्य राज्यों ने इन सुझावों को स्वीकृत नहीं किया।

अन्य समितियाँ–गरीबी निवारण कार्यक्रमों तथा जिला ग्रामीण अभिकरण (DRDA) तथा अन्य संगठनों, जिनका उद्देश्य निम्न स्तर तक विकास करना था, के लिए यह आवश्यक समझा गया कि पंचायतीराज व्यवस्था को विकास कार्यक्रमों से अधिकाधिक जोड़ा जाए। अतः 1983 में हनुमंतराव समिति की नियुक्ति की गई जिसने अशोक मेहता समिति के सुझावों का समर्थन किया। 1985 में जी. बी. के. राव समिति ने जिला परिषद् को अधिक सशक्त बनाने का सुझाव दिया तथा 1986 में नियुक्त एल. एम. सिंघवी समिति ने सुझाव दिया कि दो–तीन गाँवों को एक पंचायत में सम्मिलित कर पंचायतों को वित्तीय सुदृढ़ता प्रदान की जाए।

73वाँ संविधान संशोधन-

पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने हेतु 1989 में 64वाँ संशोधन विधेयक लाया गया लेकिन राज्यसभा में अपेक्षित बहुमत के अभाव में यह पारित नहीं हो सका। कुछ संशोधनों के बाद यह विधेयक 1992 में 73वें संशोधन विधेयक के रूप में पारित हुआ। बिहार व पश्चिम बंगाल सहित 17 राज्यों के अनुसमर्थन के बाद 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत किए जाने व 24 अप्रैल 1993 को गजट नोटिफिकेशन के बाद प्रवर्तित हुआ।

73वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएँ-

1. **पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्तर**–73वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग, भाग 9 पंचायत शीर्षक के साथ अनुच्छेद 243 एवं एक नई अनुसूची, ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गई है जिसके द्वारा पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो गया है।
2. **ग्रामसभा को संवैधानिक स्तर**–ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन की प्रत्यक्ष लोकतंत्रीय संस्था के रूप में प्राथमिक स्तर पर प्रत्येक गांव के सभी वयस्क नागरिकों की सदस्यता से बनी ग्रामसभा की व्यवस्था की गई है। ग्राम सभा के कार्यों व शक्तियों के निर्धारण का अधिकार राज्य विधानमण्डलों को दिया गया है।
3. **त्रिस्तरीय पंचायती राजव्यवस्था का गठन**–प्रत्येक राज्य में इस भाग के उपबन्धों के अनुसार ग्राम, मध्यवर्ती और जिला स्तरों पर पंचायतों का गठन किया जाएगा। मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन नहीं हो सकेगा यदि किसी राज्य की जनसंख्या 20 लाख से अधिक नहीं है। उक्त प्रावधान का आशय यह है कि संविधान द्वारा सभी राज्यों को त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को लागू करने हेतु निर्देशित किया गया है तथा 20 लाख से कम जनसंख्यावाले राज्यों को पंचायती राज की मध्यवर्ती इकाई के गठन से छूट प्रदान की गई है।
4. **पंचायतों की संरचना**–पंचायती राज संस्थाओं का गठन करते समय राज्यों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रत्येक स्तर पर गठित की जानेवाली पंचायतीराज इकाई की जनसंख्या सम्पूर्ण राज्य में जहां तक संभव हो समान होनी चाहिए। किसी पंचायत के सभी स्थान ऐसे व्यक्तियों द्वारा भरे जाएँगे जो कि पंचायत क्षेत्र में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए हों।

किसी राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायती राज संस्थाओं के ग्राम स्तर, मध्य स्तर एवं जिला स्तर की पचायतों में सभापति के संबंध में तथा लोकसभा और राज्यसभा सदस्यों के सम्बन्ध में उनके निर्वाचन क्षेत्रवाली इकाइयों में प्रतिनिधित्व के लिए आवश्यक उपबन्ध कर सकता है।

ग्राम स्तर की पंचायत का सभापति उस तरीके से चुना जाएगा जैसा कि राज्य का विधानमण्डल प्रावधान करे। किन्तु मध्यवर्ती स्तर तथा जिला स्तर की पंचायत का सभापति उसके निर्वाचित सदस्यों द्वारा तथा उनमें से ही निर्वाचित होगा।

5. **स्थानों का आरक्षण**–

(अ) **अनुसूचित जातियों/जनजातियों हेतु आरक्षण**–प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित करने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार आरक्षित पदों की संख्या प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जानेवाले स्थानों की कुल संख्या उस अनुपात में होगी जिस मूल्यानुपात में उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जातियों/जनजातियों की कुल संख्या का अनुपात है। इस प्रकार आरक्षित स्थानों में से कम से कम एक तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों व जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।

(ब) **महिलाओं के लिए आरक्षण**–73वें संविधान संशोधन अधिनियम की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि पंचायती राज संस्थाओं के सभी स्तरों पर महिलाओं के लिए स्थानों का आरक्षण किया गया है। अधिनियम में प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जानेवाले स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई स्थान (जिसमें अनुसूचित जातियों/जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी सम्मिलित है) महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। ऐसे स्थानों का आवंटन किसी पंचायत में चक्रानुक्रम में किया जाएगा।

(स) **सभापति/अध्यक्ष पद के लिए आरक्षण**–ग्राम तथा अन्य स्तर की पंचायतों के सभापति/अध्यक्ष के पद अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए इस तरीके से आरक्षित होंगे जैसा कि राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा उपबन्धित करे। परन्तु किसी राज्य की प्रत्येक स्तर की पंचायतों में सभापति/अध्यक्ष के पद अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए उस राज्य में इनकी कुल जनसंख्या के अनुपात में होंगे। परन्तु प्रत्येक स्तर की पंचायतों में सभापतियों के पदों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई पद स्त्रियों के लिए आरक्षित होंगे। इस खण्ड में आरक्षित पदों की संख्या का आवंटन प्रत्येक स्तर की विभिन्न पंचायतों में चक्रानुक्रम से किया जाएगा।

(द) **पिछड़े वर्गों हेतु आरक्षण**–यह अधिकार राज्य विधानमण्डलों की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।

6. **पंचायतों का कार्यकाल**–73वें संशोधन से पूर्व पंचायतों का कार्यकाल निश्चित होते हुए भी अनिश्चित रहा करता जो कि पंचायतों की असफलता का प्रमुख कारण रहा किन्तु 73वें संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है। इस सन्दर्भ में अधिनियम में प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक पंचायत यदि वह उस समय प्रकृत किसी विधि के अधीन पहले ही विघटित नहीं हो गई है, तो अपनी प्रथम बैठक के लिए नियुक्त तारीख से पाँच वर्षों तक निरंतर बनी रहेगी, उसके बाद नहीं। अधिनियम में यह भी प्रावधान है कि किसी पंचायत का निर्वाचन उसके निर्धारित कार्यकाल की अवधि की समाप्ति के पूर्व करा लिए जाएंगे। यदि पंचायती राज संस्था निर्धारित अवधि से पूर्व विघटित/भंग हो जाती है तो उसके विघटन की तारीख से छः माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व निर्वाचन पूरा करा लिया जाएगा। परन्तु यदि विघटित की गई पंचायती राज संस्था का कार्यकाल निर्धारित कार्यकाल से 6 माह से कम रह गया हो तो ऐसी स्थिति में निर्वाचन कराना आवश्यक नहीं होगा। विघटित/भंग किए जाने के पश्चात् ऐसी नवीन निर्वाचित पंचायत केवल उस शेष अवधि के लिए ही कार्य करेगी, जितनी अवधि के लिए विघटित पंचायत कार्य करती यदि वह विघटित नहीं होती।

7. **सदस्यता के लिए अयोग्यताएँ**–कोई व्यक्ति पंचायत के सदस्य के रूप में चुने जाने और बने रहने के लिए अयोग्य होगा यदि वह किसी विधि द्वारा राज्य के विधानमण्डल के निर्वाचनों के प्रयोजनों के लिए अयोग्य है। परन्तु कोई व्यक्ति उस आधार पर अयोग्य नहीं होगा कि 25 वर्ष से कम आयु का है यदि वह 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है। यदि ऐसा कोई प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या किसी पंचायत का कोई सदस्य इन अयोग्यताओं के अधीन आ गया है तो ऐसे प्रश्नों का निर्णय ऐसे प्राधिकारी द्वारा और उस तरीके से किया जाएगा जैसा कि राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा प्रावधान करे।

8. **पंचायतों की शक्तियाँ, प्राधिकार तथा उत्तरदायित्व**–पंचायतों के कार्यों, शक्तियों तथा उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है कि संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ तथा प्राधिकार प्रदान कर सकता है, जो कि उनको स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए समर्थ बनाने हेतु आवश्यक हों और ऐसी विधि में समुचित स्तर पर पंचायतों को शक्तियों और जिम्मेदारियों को सौंपने का उपबन्ध समाविष्ट किया जा सकता है; जो कि निम्न के संदर्भ में हों–

क. आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करना।

ख. आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों का कार्यान्वयन जिसमें ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध मामलों से सम्बन्धित कार्यक्रमों का कार्यान्वयन भी सम्मिलित है।

9. **पंचायतों द्वारा करारोपण शक्तियाँ और उनकी निधियाँ**–पंचायतों की करारोपण की शक्तियों के सन्दर्भ में आवश्यक प्रावधान करने का अधिकार राज्य विधानमण्डलों को प्रदान किया गया है। इस सन्दर्भ में व्यवस्था की गई है कि राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा निर्धारित सीमाओं व प्रक्रिया के अन्तर्गत पंचायतों को करों, शुल्कों, पथकरों, फीसों के उदग्रहण, संग्रह और विनियोग के लिए प्राधिकृत कर सकता है। राज्य की संचित निधि से पंचायतों को अनुदान देने की व्यवस्था कर सकता है। पंचायतों द्वारा अथवा उनकी ओर से प्राप्त समस्त धनराशि के उधार के लिए क्रमशः ऐसी निधियों की स्थापना और उनसे ऐसा धनराशि निकालने की व्यवस्था कर सकता है, जैसा कि विधि द्वारा निर्धारित किया जाए।

10. **वित्तीय स्थिति के पुनर्विलोकन के लिए वित्त आयोग की स्थापना**–73वें संविधान संशोधन अधिनियम में व्यवस्था की गई है कि इस अधिनियम के लागू होने पर यथाशीघ्र तथा इसके पश्चात् प्रत्येक 5वें वर्ष की समाप्ति पर राज्यपाल द्वारा वित्त आयोग स्थापित किया जाएगा जो कि राज्यपाल को

1. राज्य द्वारा संग्रहित करों, शुल्कों, पथकरों, और फीसों से प्राप्त आय का राज्य और पंचायतों के मध्य वितरण,
2. ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों का निर्धारण, जो कि पंचायतों को सौंपे जा सकते हैं,
3. राज्य की संचित निधि से पंचायतों को अनुदान शासित करनेवाले सिद्धान्तों की,
4. पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक उपायों की सिफारिश करेगा।

वित्त आयोग की संरचना, उसके सदस्यों की योग्यताएँ, उनके चुने जाने की रीति एवं शक्तियाँ राज्य विधानमण्डल द्वारा विधि द्वारा निर्धारित की जाएँगी।

11. **पंचायतों का लेखा परीक्षण**–किसी राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायतों द्वारा लेखाओं के रख–रखाव और ऐसे लेखाओं के लेखा परीक्षण के सम्बन्ध में प्रावधान कर सकेगा।

12. **राज्य निर्वाचन आयोग की व्यवस्था**–पंचायतों के समस्त निर्वाचनों के लिए मतदाता सूची की तैयारी, उसके संचालन के लिए अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होगा जिसमें एक राज्य निर्वाचन आयुक्त होगा, जो राज्यपाल द्वारा नियुक्त होगा। राज्य निर्वाचन आयुक्त की सेवाशर्तें व पदावधि वही होगी जो राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि के उपबन्धों के अधीन राज्यपाल नियम द्वारा निर्धारित करे किन्तु राज्य निर्वाचन आयुक्त की सेवाशर्तों में उसकी नियुक्ति के बाद कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता और उसको केवल उसी रीति व उसी आधार पर हटाया जा सकेगा जिस आधार पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाया जा सकता है। राज्य निर्वाचन आयुक्त के निवेदन करने पर राज्यपाल उसे ऐसे आवश्यक कर्मचारीगण उपलब्ध करवाएगा जो कि उसके कार्यों के सम्पादन में सहायता हेतु आवश्यक हों।

13. **संघ राज्य क्षेत्रों पर प्रवर्तन**–इस भाग के उपबन्ध संघ राज्य क्षेत्रों पर भी लागू होंगे।

14. **कतिपय क्षेत्रों में इस भाग का लागू न होना**–73वें संविधान संशोधन अधिनियम में व्यवस्था है कि इस भाग की कोई बात नागालैण्ड, मेघालय और मिजोरम राज्यों तथा मणिपुर राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों जहाँ जिला परिषद् विद्यमान है तथा पश्चिम बंगाल के दार्जीलिंग जिले के पहाड़ी क्षेत्रों जहां दार्जिलिंग गोरखा हिल परिषद् विद्यमान है, लागू नहीं होगी।

उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि 73वाँ संविधान संशोधन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में सशक्त कदम है किन्तु पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने के साथ ही विकेन्द्रीकरण हेतु दृढ़ राजनीतिक शक्ति तथा नौकरशाही का इस व्यवस्था के अनुकूल प्रशिक्षण आवश्यक है। 73वें संशोधन ग्रामीण स्तर पर स्थानीय स्वशासन के विकास का अन्तिम पड़ाव नहीं है। समय के साथ इस व्यवस्था में और अधिक सुधारों की संभावनाएँ परिलक्षित होने लगी हैं।

74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषतायें

ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के समान ही शहरी स्थानीय संस्थाओं को भी सशक्त बनाने तथा इस हेतु संवैधानिक आधार प्रदान करने

के उद्देश्य से भारतीय संविधान में 74वाँ संशोधन अधिनियम, 1992 "नगरपालिकाएँ" शीर्षक से भाग 9 'क' अन्तः स्थापित किया गया जो 1 जून 1993 से लागू हुआ। इस संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **नगर निकायों का गठन**–इस भाग के प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक राज्य में तीन प्रकार की नगरपालिकाओं के गठन का प्रावधान किया गया है।

   क. **नगर पंचायत**–किसी संक्रमण क्षेत्र के लिए अर्थात् ऐसा क्षेत्र जो ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में संक्रमित हो गया है।

   ख. **नगरपालिका परिषद्**–किसी छोटे नगरीय क्षेत्र के लिए।

   ग. **नगर निगम**–किसी बड़े नगरीय क्षेत्र के लिए।

अधिनियम में व्यवस्था है कि राज्यपाल किसी औद्योगिक नगरी को उपर्युक्त प्रकार के गठन से छूट प्रदान कर सकते हैं 'एक संक्रमण क्षेत्र' एक छोटा नगरीय क्षेत्र या एक बड़ा नगरीय क्षेत्र से तात्पर्य ऐसा क्षेत्र है जो कि राज्यपाल क्षेत्र की जनसंख्या, जनसंख्या के घनत्व, राजस्व, गैर कृषि कार्यों में नियोजन के प्रतिशत, आर्थिक महत्त्व इत्यादि के आधार पर जैसा वे ठीक समझे लोक अधिसूचना के द्वारा निर्देशित करें।

2. **नगरपालिकाओं की संरचना**--समस्त नगर निकायों में सभी स्थानों की मूर्ति, प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा की जाएगी। इस हेतु प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाएगा जो वार्डों के रूप में ज्ञात होंगे। राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा किसी नगरपालिका निकाय में निम्नलिखित के प्रतिनिधित्व के लिए भी व्यवस्था कर सकता है।

   क. नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान व अनुभव रखनेवाले व्यक्तियों के लिए किन्तु इन्हें मत देने का अधिकार नहीं होगा,

   ख. नगरपालिका निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करनेवाले लोकसभा के सदस्यों अथवा राज्य विधानसभा के सदस्यों के लिए,

   ग. नगरपालिका क्षेत्र में निर्वाचक के रूप में रजिस्ट्रीकृत राज्यसभा के सदस्यों, अथवा राज्य की विधानपरिषद् के सदस्यों के लिए।

अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई है कि किसी नगरपालिका के सभापति के निर्वाचन की रीति के सन्दर्भ में राज्य विधानमण्डल प्रावधान करेगा।

3. **वार्ड समितियों का गठन**–अधिनियम में प्रावधान किया गया है कि किसी ऐसी नगरपालिका के प्रादेशिक क्षेत्र में, जिसकी जनसंख्या तीन लाख या उससे अधिक है, वार्डों की समितियों का गठन होगा जिसमें एक या एक से अधिक वार्ड होंगे। राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा वार्ड समिति की संरचना और प्रादेशिक क्षेत्र तथा स्थानों को भरने की रीति के सम्बन्ध में प्रावधान कर सकेंगे। वार्ड समिति के क्षेत्राधिकार में आनेवाले वार्डों के प्रतिनिधि उस समिति के सदस्य होंगे। समिति के सदस्य अपने में से वार्ड समिति के सभापति का चुनाव करेंगे। राज्य विधानमण्डल वार्ड समितियों के अलावा अन्य समितियों का भी गठन कर सकते हैं।

4. **स्थानों का आरक्षण**

   क. **अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए आरक्षण**–प्रत्येक नगर निकाय में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित होंगे। यह आरक्षण उस नगरनिकाय क्षेत्र में इन वर्गों की जनसंख्या के अनुपात में होगा तथा ऐसे आरक्षित स्थानों का आवंटन किसी नगरनिकाय के निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम में किया जाएगा। इस प्रकार आरक्षित स्थानों की कुल संख्या का कम से कम एक तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों/जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।

   ख. प्रत्येक नगर निकाय में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जानेवाले स्थानों की कुल संख्या का कम से कम एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे (जिनमें अनुसूचित जाति/जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थान भी सम्मिलित हैं) ऐसे आरक्षित स्थानों का आवंटन विभिन्न नगरनिकायों को निर्वाचन क्षेत्रों में चक्रानुक्रम से किया जाएगा।

   ग. **अध्यक्ष/सभापति के पद हेतु आरक्षण**--राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा निर्धारित तरीके से नगरनिकायों के सभापति के पद के लिए अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित कर सकेंगे।

   घ. **पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण**–राज्य विधानमण्डल किसी नगरनिकाय में अथवा सभापति के पद हेतु पिछड़े वर्ग के लिए स्थानों का आरक्षण कर सकेंगे।

5. **नगरपालिकाओं का कार्यकाल**–पूरे देश में नगरनिकायों का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है। अधिनियम में इस सन्दर्भ में व्यवस्था है कि प्रत्येक नगरनिकाय यदि वह उस समय प्रकृत किसी विधि के अधीन पहले ही विघटित नहीं की गई है, तो अपनी प्रथम बैठक की नियुक्त तारीख से 5 वर्षों तक निरन्तर बनी रहेगी, उसके बाद नहीं। परन्तु किसी नगरनिकाय को विघटित करने से पूर्व सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देना होगा। किसी नगरनिकाय के गठन के लिए निर्वाचन उस नगरनिकाय की निर्धारित अवधि की समाप्ति से पूर्व कराए जाएँगे। यदि किसी नगरनिकाय का विघटन किया गया है तो उसके विघटन की तारीख से छः माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व निर्वाचन करा लिए जाएँगे किन्तु यदि विघटन के समय उस नगरनिकाय के निर्धारित कार्यकाल के पूर्ण होने में छः माह से कम अवधि का समय शेष रहता है तो निर्वाचन कराना आवश्यक नहीं है। कोई नगरनिकाय जिसका गठन किसी नगरनिकाय की अवधि समाप्ति के पूर्व उसके विघटन पर किया गया है तो उसका कार्यकाल केवल उस शेष अवधि तक ही रहेगा, जिस अवधि तक विघटित नगर निकाय रहती यदि वह विघटित नहीं होती।

6. **सदस्यता के लिए अयोग्यताएँ**–कोई व्यक्ति किसी नगर निकाय के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने व बने रहने के लिए अयोग्य होगा यदि वह किसी विधि द्वारा राज्य विधानमण्डल के निर्वाचनों के लिए अयोग्य है परन्तु कोई व्यक्ति इस आधार पर अयोग्य नहीं होगा कि उसकी आयु 25 वर्ष से कम है यदि उसने 21 वर्ष की आयु पूरी कर ली है। राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा सदस्यता सम्बन्धी अयोग्यताएँ निर्धारित कर सकते हैं। सदस्यों की अयोग्यताओं के सम्बन्ध में विवाद उठने पर उसका निपटारा ऐसे प्राधिकारी द्वारा ऐसी रीति से किया जाएगा जैसा कि राज्य विधानमण्डल उपबन्धित करे।

7. **नगर निकायों की शक्तियाँ, प्राधिकार एवं दायित्व**–संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा नगरनिकायों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकता है जो कि उनको स्वशासन की संस्था के रूप में कार्य करने के लिए समर्थ बनाने हेतु आवश्यक हों और ऐसी शक्तियों और उत्तरदायित्वों में आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करना, ऐसे कार्यों का निष्पादन व कार्यक्रमों का प्रवर्तन जो उन्हें सौंपे जायें जिसमें बारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध मामलों से सम्बन्धित विषय भी सम्मिलित हैं।

8. **नगरनिकायों की करारोपण की शक्तियां एवं उनकी निधियाँ**–किसी राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा नगरनिकाया को करों, शुल्कों, पथकरों, और फीसों के उदग्रहण, संग्रह और विनियोग के लिए प्राधिकृत कर सकता है। राज्य की संचित निधि से उनके लिए अनुदानों की व्यवस्था कर सकता है। नगरनिकायों या उनकी ओर से प्राप्त समस्त धनराशि के उधार के लिए निधियों की स्थापना तथा उनसे धनराशि निकालने की व्यवस्था, राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा निर्धारित कर सकता है।

9. **वित्त आयोग का गठन**–अनुच्छेद 243 झ के अधीन गठित वित्त आयोग नगरनिकायों की वित्तीय स्थिति का भी पुनर्विलोकन करेगा और निम्नलिखित के सन्दर्भ में सिद्धान्तों की सिफारिश राज्यपाल को करेगा।

   क. राज्य सरकार द्वारा लगाए गए करों, शुल्कों, पथकरों, और फीसों से हुई आय का राज्य सरकार एवं नगरनिकायों के बीच वितरण।

   ख. ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों का अभिनिर्धारण जो कि नगरनिकायों द्वारा आरोपित करने हेतु उन्हें सौंप जा सकते हैं।

   ग. राज्य की संचित निधि से नगरनिकायों को दिए जानेवाले सहायता अनुदान।

   ध. नगरनिकायों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक उपायों की।

   ग. नगरनिकायों के ठोस वित्त के हित में राज्यपाल द्वारा वित्तीय आयोग को निर्दिष्ट किसी अन्य विषय पर।

वित्त आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को राज्यपाल अपने स्पष्टीकरण ज्ञापन सहित राज्य विधानमण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया जाना कारित करेगा।

10. **नगरनिकायों का लेखा परीक्षण**–किसी राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा नगरनिकायों के लेखाओं के अनुरक्षण तथा लखाओं के लेखा--परीक्षण के सन्दर्भ में उपबन्ध कर सकेगा।

11. **नगरनिकायों के निर्वाचन**--नगरनिकायों के समस्त निर्वाचनों की मतदाताओं की सूची तैयार करने के लिए अधीक्षण, निर्देश और नियंत्रण तथा उनका संचालन राज्य निर्वाचन आयोग करेगा। इन उपबन्धों के अधीन राज्य का विधानमण्डल इस सम्बन्ध

में विधि द्वारा प्रावधान कर सकेगा। किसी नगरनिकाय का कोई निर्वाचन प्रश्नगत नहीं किया जाएगा सिवाय निर्वाचन पिटीशन के जो कि ऐसे प्राधिकारी को और ऐसी रीति से प्रस्तुत किया जाएगा जो कि किसी राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि द्वारा या उसके अधीन उपबन्धित किया जाए।

12. **संघ राज्यों पर प्रवर्तन**–इस भाग के समस्त उपबन्ध केन्द्रशासित प्रदेशों पर भी लागू होंगे।

13. **कतिपय क्षेत्रों में इस भाग का लागू न होना**–संविधान के अनुच्छेद 244 के खण्ड (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों तथा खण्ड दो (2) में अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों पर ये प्रावधान कार्य नहीं होंगे। पश्चिमी बंगाल में दार्जिलिंग जिले के पहाड़ी क्षेत्रों में गोरखा हिल परिषद् के कार्य व शक्तियां इससे प्रभावित नहीं होंगे।

14. **जिला योजना के लिए समिति**–प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा जो जिले में पंचायतों व नगरनिकायों द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समेकन करेगी और सम्पूर्ण जिले के लिए एक विकास योजना प्रारूप तैयार करेगी। राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा जिला योजना समिति की संरचना, स्थानों को भरे जाने की रीति, कार्य और सभापतियों के निर्वाचन की रीति के सम्बन्ध में आवश्यक उपबन्ध करेगा। प्रत्येक जिला योजना समिति का सभापति समिति द्वारा संस्तुत विकास योजना को राज्य सरकार को अग्रेषित करेगा।

15. **महानगरीय योजना के लिए समिति**–प्रत्येक महानगर क्षेत्र में एक महानगरीय योजना समिति का गठन किया जाएगा जो सम्पूर्ण रूप से महानगर क्षेत्र के लिए एक विकास योजना प्रारूप तैयार करेगी। राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा इन समितियों की संरचना, स्थानों के भरे जाने की रीति, महानगरीय क्षेत्र की योजना और समन्वय से सम्बन्धित कार्य तथा ऐसी समितियों के सभापति चुनने की रीति तय करेगा। प्रत्येक महानगरीय योजना समिति का सभापति समिति द्वारा संस्तुत की गई विकास योजना को राज्य सरकार को अग्रेषित करेगा।

उपरोक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि 74वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा नगरीय निकायों को संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो गई है। इन निकायों में अनुसूचित जातियों/जनजातियों तथा महिलाओं को आरक्षण तथा पिछड़े वर्गों को आरक्षण प्रदान किया गया है।

अध्याय-3

नगरपालिका की रचना, कार्य, प्रशासन (Municipalities, Composition, Functions, Finances, Personnel General Working of Municipal Bodies with Special Reference to Haryana and Punjab)

शहरों स्थानीय सरकारों की प्रकृति एवं प्रकार ब्रिटिश शासन के दौरान उभरे। स्थानीय शासन को भारतीय संवैधानिक विकास का महत्त्वपूर्ण भाग माना जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्थानीय शासन को संस्थाओं की संख्या एवं संगठन समान नहीं रही, यद्यपि इन निकायों में कुछ सामान्य विशेषताएँ थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना में राज्य सरकारों से नगरों में स्वायत्त शासन की संस्थाओं को विकसित करने हेतु मास्टर प्लान, गृह–निर्माण हेतु मानदण्ड निर्धारित करने का उत्तरदायित्व नगरीय स्थानीय संस्थाओं को सौंपा गया। नगरीय प्रशासन की प्रशासकीय कुशलता बढ़ाने हेतु सुझाव देने के लिए भारत सरकार द्वारा समय–समय पर विभिन्न समितियाँ गठित की गईं व उनके सुझावों से राज्य सरकारों को अवगत कराया गया।

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में शहरों के नागरिकों को अपने स्वयं के मामलों का प्रशासन संचालित करने के लिए तथा व्यापक अधिकार देने हेतु नगरीय संस्थाओं को अधिक सशक्त बनाने एवं संवैधानिक दर्जा देने के लिए भारतीय संविधान में 74वाँ संशोधन किया गया जो 1 जून, 1993 से लागू हो गया। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान मे एक नया भाग 9क "नगरपालिकाएँ" शीर्षक से जोड़ा गया है। इस प्रकार स्वायत्त शासन की नगरीय संस्थाओं को एक साधारण नाम "नगरपालिका" दिया गया है। इन संस्थाओं का उल्लेख 243वें अनुच्छेद में है। 74वें संविधान संशोधन में तीन प्रकार के नगरीय निकायों के गठन की व्यवस्था की गई है – (1) नगर पंचायत (2) नगर परिषद् (3) नगर निगम।

नगरपालिका की रचना
(Composition of Municipality)

नगरपालिका में कुल कितने सदस्य हों, इस बात पर अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग संख्या निर्धारित की गई है। नगरपालिका में निम्नलिखित दो प्रकार के सदस्य होते हैं–

1. ***निर्वाचित सदस्य (Elected Members)*** – नगरपालिका क्षेत्र को बोर्डों में विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक बोर्ड से एक सदस्य प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आता है। क्षेत्र के सभी मतदाता चुनाव में भाग लेते हैं।

2. ***मनोनीत सदस्य (Nominated Members)*** – इन सदस्यों का प्रत्यक्ष चुनाव नहीं होता, बल्कि ये मनोनीत होते हैं। इन सदस्यों को नगरपालिका की बैठकों में हिस्सा लेने का अधिकार होता है। परन्तु अध्यक्ष, उपाध्यक्ष के चुनाव तथा हटाने की विधि एवम् नगरपालिका की बैठकों के निर्णयों में मत देने का अधिकार नहीं होता। राज्य में निम्नलिखित सदस्य मनोनीत किए जाते हैं–

    1. तीन से कम ऐसे व्यक्ति, जिन्हें नगरीय प्रशासन का विशेष ज्ञान व अनुभव हो।
    2. लोकसभा व विधानसभा के सदस्य जिनके चुनाव क्षेत्र का कुछ या सारा हिस्सा नगरपालिका के अन्तर्गत आता है
    3. नगरीय क्षेत्र में पंजीकृत राज्यसभा के सदस्य जिन्हें नगरपालिका के सचिव की बैठकों में बैठनें की अनुमति दी जाती है।

सीटों का आरक्षण
(Reservation of Seats)

नगरपालिका की रचना में निम्नलिखित सीटें आरक्षित की गई हैं–

1. ***अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण (Reservation for Schedule Castes)*** – राज्य में अनुसूचित जातियों की संख्या के अनुपात में नगरपालिका की कुल निर्धारित सीटों, अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों तथा नगरपालिका की कुल जनसंख्या व अनुसूचित वर्ग की कुल संख्या के मध्य एक समानुपात होना चाहिए।

   यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त आरक्षित सीटों में से 1/3 सीटें इन जातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित की जाएँगी।

2. ***महिलाओं के लिए आरक्षण (Reservation of Women)*** – नगरपालिका के कुल स्थानों में से एक–तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित रखे जाएँगे जिनमें अनुसूचित जातियों की महिलाओं को भी शामिल किया जाएगा।

3. ***पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण (Reservation for Backward Classes)*** – नगरपालिका के कुल स्थानों में से एक स्थान (सीट) तथा नगरपरिषद् में दो सीटें पिछड़ी जातियों के लोगों के लिए आरक्षित रखी जाएँगी।

   उपरोक्त एक से तीन तक के सभी आरक्षण उस वर्ग की अधिकतम जनसंख्यावाले वार्ड में किए जाएंगे।

सदस्यों का कार्यकाल (Term of the Members) – नगरपालिका के सदस्यों का कार्यकाल निश्चित तिथि को हुई प्रथम बैठक से 5 वर्ष तक का होगा। उन्हें निश्चित अवधि से पूर्व भी निलम्बित किया या हटाया जा सकता है। नगरपालिका अधिनियम की धारा 13-A के अनुसार सदस्यों की निम्नलिखित अयोग्यताएँ समझी जाएँगी–

(1) यदि उसे किसी कानून के अन्तर्गत राज्य विधानमण्डल का सदस्य बनने के लिए अयोग्य घोषित किया हो। परन्तु सिर्फ 25 वर्ष से कम उम्र होने पर उसे अयोग्य नहीं माना जाएगा, क्योंकि विधानसभा का सदस्य बनने के लिए कम–से–कम 25 वर्ष निर्धारित की गई है, जबकि नगरपालिका का सदस्य बनने के लिए कम–से–कम उम्र 21 वर्ष है।

(2) यदि वह एक साथ किसी विधानसभा क्षेत्र या संसदीय क्षेत्र के लिए चुना गया हो तो ऐसी अवस्था में उसे एक सीट से त्यागपत्र देना पड़ेगा।

(3) यदि उसके दो जीवित बच्चे हों। यद्यपि वे माता–पिता जिनके 2 जुलाई, 1973 को या इससे पूर्व 2 से अधिक जीवित बच्चे हों तो उनको अयोग्य नहीं माना जाएगा।

इसके अतिरिक्त राज्य सरकार किसी भी सदस्य को अधिनियम की धारा 14 में वर्णित किसी भी कारण से हटा सकती है और धारा 14-A के अनुसार निर्देशक सदस्यों को निलम्बित कर सकता है। सदस्य अपने पदों से इस्तीफा भी दे सकते हैं।

नगरपालिका की अवधि
(Duration of Municipality)

प्रत्येक नगरपालिका अपनी प्रथम बैठक की तिथि से 5 साल तक कार्य करती है। अधिनियम की धारा 254 के अनुसार राज्य सरकार किसी भी नगरपालिका को अयोग्यता, दोष–सिद्धि तथा शक्तियों के दुरुपयोग (Incompetency, Default or Misuse of Powers) के आधार पर भंग कर सकती है। भंग की गई नगरपालिका का चुनाव भंग तिथि से छह महीने के अन्दर–अन्दर करवाना पड़ता है और नवगठित नगरपालिका शेष समय के लिए ही कार्य करेगी, पाँच वर्ष के लिए नहीं।

सभाएँ
(Meetings)

नगरपालिका अपने कार्यों का सम्पादन बैठकों में करती है। एक महीने में कम–से–कम एक बैठक होनी चाहिए। यह आवश्यक

भी है। इसके लिए नगरपालिका के कुल सदस्यों में से 1/5 सदस्य हस्ताक्षर करके अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष से साधारण या विशेष बैठक बुलाने का आग्रह करते हैं। अध्यक्ष या उपाध्यक्ष आग्रह–पत्र मिलने पर 10 दिन के अन्दर–अन्दर बैठक बुलाता है।

यदि अध्यक्ष या उपाध्यक्ष आग्रह–पत्र मिलने के 10 दिन बाद तक भी बैठक न बुलाए तो सदस्य उपायुक्त से बैठक बुलाने की प्रार्थना करते हैं जो स्वयं या किसी अधिकृत अधिकारी को बैठक की अध्यक्षता करने का आदेश देगा। ध्यान रहे कि उपायुक्त या अधिकृत ऐसी बैठक में मत नहीं दे सकता। गणपूर्ति (Quorum) – नगरपालिका की साधारण बैठक के लिए आवश्यक गणपूर्ति समय–समय पर उप–नियमों (Bye-laws) के अनुसार निश्चित की जाएगी परन्तु इसमें उनसे कम सदस्य नहीं होने चाहिए। बैठकों में सभी निर्णय बहुमत से लिए जाएँगे। यदि किसी विषय पर बराबर के मत पड़ते हैं तो अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार होगा।

नगरपालिका के कार्य और अधिकार
(Functions and Powers of Municipality)

नगरपालिका और महानगरपालिका द्वारा पालन किए जा रहे कार्यों की प्रवृत्ति तो एक ही है। वास्तविक अन्तर तो अधिकारा और स्रोतों में है। नगरपालिकाओं के महानगरपालिका में बदल जाने पर उसका कार्यक्षेत्र तो अवश्य बढ़ जाता है, लेकिन स्थानीय निकायों के कार्यों पर चर्चा करते समय हमें राष्ट्रीय और स्थानीय कार्यों में अन्तर अवश्य ही समझ लेना चाहिए। आधुनिक राज्यों के कार्यों को राष्ट्रीय और स्थानीय कार्यों में आसानी से बाँटा जा सकता हैं। राष्ट्रीय कार्यों का क्षेत्र विशाल होता है इसलिए वे केन्द्र द्वारा किए जाते हैं जबकि जो क्षेत्र–विशेष से सम्बन्ध रखते हैं स्थानीय निकायों को सौंपे जाते हैं। उदाहरण के तौर पर सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, प्रबन्ध, जनमार्गों का निर्माण एवं व्यवस्था, नगरोद्यान बनाना, महामारी की रोकथाम, जन आपूर्ति की व्यवस्था आदि कुछ ऐसे कार्य हैं जोकि स्थानीय कहे जा सकते हैं और आमतौर पर स्थानीय प्रबन्ध सभाओं को सौंपे जाते है। यही कारण है कि अधिकतर राज्यों में नगरपालिका के कार्य समान ही है। पालिका परिषदों से सम्बन्धित विभिन्न राज्यों के पालिका अधिनियमों की धाराएँ एक समान नहीं हैं परन्तु अन्तर केवल नाममात्र का ही है। साधारणतः पालिका अधिनियमों में पालिका कार्यों की एक लम्बी सूची है लेकिन व्यवहार में बहुत अन्तर है। कुछ पालिका नियम इन कार्यों को दो वर्गों में बाँटते हैं – अनिवार्य और रूच्यनुकूल, लेकिन दूसरों में ऐसा कोई अन्तर नहीं दिखाया गया।

अनिवार्य वे कार्य हैं जो हर नगरपालिका समिति को निभाने पड़ते हैं और अगर समिति उनकी पालना के लिए बजट मे पर्याप्त व्यवस्था नहीं करती तब राज्य सरकार उसे इन्हें करने के लिए मजबूर करती है और अगर समिति इन कार्यों की पूर्ति सन्तोषजनक ढंग से नहीं करती तो राज्य सरकार समिति को निरस्त भी कर सकती है और नगरपालिका को अपने किसी अफसर के अधीन कर देती है। नगरपालिका द्वारा किए जा रहे कार्यों को हम निम्न पाँच शीर्षकों में बाँट सकते हैं–

1. नागरिक सुरक्षा (Public Safety)
2. शिक्षा (Education)
3. चिकित्सा (Medical Relief)
4. जन स्वास्थ्य (Public Health)
5. जन कार्य (Public Works)

1. ***नागरिक सुरक्षा (Public Safety)*** – कमेटी शहर में जन सुविधा और सुरक्षा का उपाय करने की जिम्मेदार है जैस आग बुझाने के इंजनों का प्रबन्ध, सड़कों पर रोशनी, सड़कों का बनाना, आवारा कुत्तों तथा दूसरे जानवरों को मरवाना, आपत्तिजनक व्यापार बन्द करना आदि शामिल है।

2. ***शिक्षा (Education)*** – कमेटियों को चाहिए कि वह नए स्कूल खोले और पुराने स्कूलों की मरम्मत करवाए जो स्कूल

उनके द्वारा चलाए जाते हैं। कुछ प्राईमरी शिक्षा का प्रबन्ध भी करती है। परन्तु आजकल शिक्षा का अधिक बोझ सरकार (State Education Department) के द्वारा उठाया जाता है।

3. ***चिकित्सा (Medical Relief)*** – नगरपालिकाओं के द्वारा शहर में कुछ अस्पतालों को सहायता भी दी जाती है। कुछ अनाथालय भी कमेटियों के द्वारा चलाए जाते हैं। नगरपालिका संक्रामक तथा महामारी को रोकने के लिए कई प्रकार का प्रबन्ध करती है। हैजा, चेचक, टी०बी०, पोलियो आदि बीमारियों की रोकथाम के लिए टीके लगवाने का प्रबन्ध करती है। जहरीले कीड़े तथा मच्छरों को मारने की व्यवस्था करती है। स्त्री तथा बच्चों के लिए अस्पताल तथा परिवार कल्याण केन्द्र खुलवाती है। गरीबों की मुफ्त चिकित्सा का प्रबन्ध करती है। स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी कार्य स्वास्थ्य अधिकारी के अधीन होते हैं।

4. ***जन स्वास्थ्य (Public Health)*** – जन स्वास्थ्य का क्षेत्र विशाल है। ऊपर बताए गए चिकित्सा तथा स्वास्थ्य कल्याण के अतिरिक्त इसमें भोजन और दवाओं का निरीक्षण और ऐसे व्यवहारों को रोकना जो स्वास्थ्य पर बुरा असर डालते हैं, स्नानागृह बनाना, नालियों का उचित प्रबन्ध, घातक व्यापार पर रोकथाम लगाना, पशुपालन आदि आते हैं। स्थानीय निकाय द्वारा घरों के कूड़े–करकट को हटाने का उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए। जन्म व मरण का रजिस्टर बनाना तथा सलाटर घरों (Slaughter Houses) का बनाना भी शामिल है।

5. ***जन कार्य (Public Works)*** – सड़कों, पुलों, पार्कों, मार्किट और अन्य सब आवश्यकता के कार्यों को नगरपालिकाओं के अन्दर–अन्दर बनवाना। नगर योजना, गरीबों के लिए घर बनवाना तथा अन्य कार्यों का करना है। नगरपालिकाओं को कई प्रकार के मेले जिसमें पशु औद्योगिक प्रदर्शनियां शामिल हैं, लगवाने की अनुमति भी होती है। संक्षिप्त रूप से हम कह सकते हैं कि नगरपालिकाओं को दो प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं।

(a) अनिवार्य कार्य (Compulsory Functions)

(1) पेयजल की व्यवस्था।

(2) सड़कों का निर्माण तथा देखभाल।

(3) जन्म और मृत्यु का रजिस्टर।

(4) अग्निशमन सेवा की व्यवस्था करना।

(5) प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध।

(6) अस्पतालों की देखभाल।

(7) खाने पीने और भोजनालयों का नियन्त्रण।

(8) आपत्तिजनक खतरे के व्यवसायों का नियन्त्रण।

(9) सड़कों पर रोशनी का प्रबन्ध।

(10) गलियों और नालियों की सफाई।

(b) एच्छिक कार्य (Optional Functions)

(1) उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(2) प्रदर्शनी।

(3) उद्योग–धन्धों में उन्नति करना।

(4) खेलकूद की प्रतियोगिताओं का प्रबन्ध करना।

(5) परिवहन की सुविधा।

(6) दूध की डेरी खोलना।

(7) अजायबघर और पुस्तकालयों को बढ़ावा।

(8) श्मशान भूमि तथा कब्रिस्तान के लिए स्थान सुरक्षित रखना और उसकी देखभल करना।

(9) रेड–क्रास संस्था की सहायता करना।

(10) अभिन्यास तैयार करना।

(11) बाग–बगीचे, रेस्ट हाऊस, अनाथालय का निर्माण।

(12) आवारा पशुओं को पकड़ना।

(13) पशुओं की खरीद बेच के लिए प्रबन्ध करना।

(14) खतरनाक भवनों की मरम्मत।

(15) कम आमदनी के लोगों के लिए घरों का प्रबन्ध।

(16) शादियों का पंजीकरण।

(17) नई बस्तियाँ बनवाना तथा उनमें आधुनिक सुविधाएँ देना।

(18) भिखारियों पर प्रतिबन्ध लगाना।

(19) विभिन्न खेलकूद का भवन बनवाना।

(20) सड़कों पर वृक्ष लगवाना।

नगरपालिका की आय के मुख्य स्रोत

पर्याप्त वित्तीय संस्थाओं के अभाव में सभी योजनाएँ अथवा कार्यक्रम मात्र कागजी ही रहेंगे। यह कथन एक स्वयंसिद्ध ही है कि पर्याप्त वित्त के बिना कोई भी शासन अपने सामाजिक तथा आर्थिक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। चूँकि शासन लोक वित्त केवल लोकहित में ही व्यय करता है, इसलिए लोकवित्त का प्रभावी प्रबन्ध लोक प्रशासन का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

नगरपालिका के आय के स्रोत
(Sources of Income of Municipal Committees)

बहुत से राज्यों में नगरपालिकाओं के विभिन्न स्रोतों उदाहरणतः कर, शुल्क, जुर्माना तथा दण्ड आदि तथा लाभदायी उद्यमों से आय इकट्ठी करने की शक्ति है। इन सबके अतिरिक्त नगरपालिकाएँ अनुदानों, अंशदानों, ऋणों तथा विविध स्रोतों पर निर्भर करती हैं। वित्त के स्रोतों को पारम्परिक ढंग से चार वर्गों में बाँटा जा सकता है।

(1) प्रत्यक्ष कर (Direct Tax)

(2) अप्रत्यक्ष कर (Indirect Tax)

(3) अकर राजस्व (Non-tax Revenue)

(4) अनुदान एवं ऋण (Grants and Loan)

(1) **प्रत्यक्ष कर (Direct Tax)**

(i) ***गृह कर (House Tax)*** – पंजाब की नगरपालिकाओं में Punjab Municipal Act, 1911 की धारा 62 के अनुसार किराए की आमदनीवाली इमारतों पर टैक्स लगाया जाता है। अगर नगरपालिकाएँ ये टैक्स न लगाना चाहती हों तो सरकार पंजाब नगरपालिका अधिनियम 1911 की धारा 62A के अनुसार अधिसूचना करके यह टैक्स लगाने का अधिकार रखती है।

अतः गृह कर नगरपालिकाओं की आमदनी का मुख्य साधन है।

(ii) ***व्यवसाय कर (Professional Tax)*** – सलाटर फीस, जानवरों की हड्डियों का व्यापार करना, रिक्शा चलाना, पशुओं का बेचना आदि। कमेटियाँ इस प्रकार कार्य करनेवाले लोगों से व्यवसाय कर इकट्ठा करती है। धोबियों को धोबी घाट बनाकर देना, बूचड़खाना बनाकर देना नगरपालिका की जिम्मेदारी है और नगरपालिका ऐसा कोई भी कार्य करनेवाले लोगों से कर प्राप्त करती है।

(iii) ***तीर्थयात्री कर (Piligrim Tax)*** – नगरपालिका तीर्थ यात्रा पर जानेवाले लोगों से कुछ–न–कुछ मात्रा में कर प्राप्त करती हैं और उस कर के बदले में यात्रा पर जानेवाले लोगों को कुछ आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करती है। अतः यात्रियों पर लगाया गया कर उनकी आमदनी का एक साधन है।

(iv) ***व्यापार कर (Trade Tax)*** – नगरपालिका क्षेत्र के भीतर किए जा रहे व्यापार पर कर लगाने से भी नगरपालिका की आय होती है।

(v) ***तहबाजारी कर (Bazar Tax)*** – कुछ नगरपालिका क्षेत्रों में व्यक्तियों को दुकान के आगे कुछ स्थान पर रखने की अनुमति दे दी जाती है। इस प्रयोग किए गए स्थान का प्रयोग करनेवाले व्यक्तियों को अलग से कर देना पड़ता है। इससे नगरपालिका को आय होती है।

(vi) ***सफाई कर (Scavenging Tax)*** – नगरपालिका क्षेत्र के भीतर सफाई करने का काम नगरपालिका का है इससे नगरपालिका क्षेत्र के भीतर रहनेवालों को लाभ होता है। इसके लिए नगरपालिका को काफी खर्च करना पड़ता है और नगरपालिका इस सेवा के लिए कर लगाती है। यह भी आमदनी का एक साधन है।

(vii) ***पशु कर (Tax on Animals)*** – नगरपालिका उन व्यक्तियों से जो नगरपालिका क्षेत्र में पशु, जैसे कुत्ते, गाय, भैंस, आदि रखते हैं कर लेती है। इससे भी नगरपालिका की आय होती है।

(viii) ***वाहन कर (Vechicle Tax)*** – नगरपालिका द्वारा दी गई सुविधाओं का प्रयोग करने के बदले नागरिकों को कुछ कर देना पड़ता है यह भी नगरपालिका की आय का साधन है।

(2) **अप्रत्यक्ष कर (Indirect Tax)**

(i) ***चुंगी (Octroi)*** – चुंगी नगरपालिका की आमदनी का मुख्य साधन है। नगरपालिका शहर में दाखिल होनेवाली प्रत्येक वस्तु पर चुंगीकर लगाती है। परन्तु इसमें कुछ वस्तुएँ जैसे – दवाईयाँ, खाने का कुछ सामान, अनाज आदि टैक्स से भी होते हैं। नगरपालिका इस टैक्स को इकट्ठा करने के लिए टैक्स कलक्टर चुंगियों के इन्सपेक्टर आदि कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। यह भी नगरपालिका की आमदनी का एक भाग है। कई बार यह सुझाव दिया गया है कि चुंगी कर खत्म कर दिया जाए। चुंगी कर होनेवाली आमदनी की स्थिति अलग–अलग नगरपालिकाओं में अलग–अलग है। कुछ नगरपालिकाओं में चुंगी कर एकत्र करने का खर्च आय से अधिक है। परन्तु अधिक नगरपालिकाओं को इससे लाभ मिलता है। इस कर को कुछ राज्यों में समाप्त कर दिया गया है और कुछ में नहीं अभी समाप्त नहीं किया गया है। इस विषय में एक प्रस्ताव केन्द्र सरकार के विचाराधीन है।

(ii) ***टर्मीनल कर (Terminal Tax)*** – पंजाब में यह कर बहुत कम लगा हुआ है। नगर निगम अमृतसर ने इस विषय में कुछ सुझाव रखे हैं परन्तु फिर भी लिखना उचित है कि यह कर नगरपालिका की आमदनी का एक भाग है।

(iii) ***शो कर (Show Tax)*** – पंजाब में नगरपालिकाओं द्वारा सरकार की आज्ञानुसार शहर में होनेवाले प्रत्येक सिनेमा पर शो टैक्स लगाने का अधिकार है। यह टैक्स सिनेमा, सर्कस, फीट आदि पर भी 5 रुपये से लेकर 15 रुपये प्रति शो के आधार पर लगाए जाते हैं। यह टैक्स भी नगरपालिकाओं की आमदनी का एक साधन है।

(iv) ***घाट कर (Ferries Tax)*** – जिन नगरपालिका क्षेत्रों में किसी नदी को नाव से पार करने के बाद आना या जाना पड़ता है वहाँ नगरपालिका नौका से आर–पार जाने वाले व्यक्तियों से कर लेती है और अपनी आय बढ़ाती है।

(v) ***टोल-टैक्स (Toll-Tax)*** – टोल–टैक्स नगरपालिकाओं की आमदनी के मुख्य साधनों में से है। नगरपालिका की हद में से गुजरनेवाले वाहनों से यह टैक्स वसूल किया जाता है।

(3) **अकर राजस्व (Non-tax Revenue)** – पहले कहा जा चुका है कि नगरपालिका का अधिकतर राजस्व करों से प्राप्त होता है। करों तथा दरों के अतिरिक्त राजस्व इकट्ठा करने के कुछ और स्रोत भी हैं जैसे – शुल्क, दण्ड, जुर्माना, किराया तथा अन्य आय स्रोतों से प्राप्त आय। इन सभी स्रोतों से प्रज्ञपत आय अधिक नहीं होती। पंजाब मे यह नगरपालिकाओं के कुल आय का मात्र 5 प्रतिशत ही है।

(i) ***शुल्क (Fees)*** – शुल्क की परिभाषा ऐसे प्रभार (Charge) के रूप में की जाती है जो कोई व्यक्ति सरकार तथा अर्द्धसरकारी अभिकरणों द्वारा उपलब्ध की गई विशेषज्ञ सेवा के बदले में देता है। इस शुल्क का सीधा सम्बन्ध अभिकरण विशेष द्वारा कोई भी सेवा उपलब्ध करवाने पर व्यय के साथ होता है। वैसे कई बार शुल्क बिना किसी विशेष आधार को ही तय कर दिया जाता है।

नगरपालिकाएं निम्नलिखित शुल्क लगाने में सक्षम होती है–

(1) रजिस्टरों, दस्तावेजों तथा नक्शों की प्रतिलिपियाँ।

(2) कर भुगतान की माँग की सूचना के लिए।

(3) अचल तथा चल जब्री कब्जों को सार्वजनिक स्थानों पर रखने का शुल्क।

(4) खतरनाक अथवा अरुचिकर व्यापार के लाइसेंस के लिए।

(5) चालकों का वाहन चलाने, पशुओं को पालतु बनाने तथा उनको भाड़े पर चलाने के लिए।

(6) होटल तथा लॉज घरों के लाइसेंस के लिए।

(7) कुली तथा पशुओं के लिए लाइसेंस के लिए।

(8) कुत्तों के पंजीकरण के लिए।

(9) मृत पशुओं को ठिकाने लगाने के लिए।

(10) बूचड़खानों की जगहों के लिए।

(11) नहाने तथा कपड़े धोने के स्थान के उपयोग के लिए।

इसके अतिरिक्त पशु–तलाब शुल्क, आवारा कुत्तों को रखने का शुल्क, आतिशबाजी के लिए अनुमति देने का शुल्क नगरपालिका समितियों को उपनियमों की प्रतिलिपियां उपलब्ध करवाने के लिए चिकित्सा शुल्क, शिक्षा संस्थानों से शुल्क आदि।

(ii) ***किराए (Rents)*** – शुल्क के अतिरिक्त नगरपालिका राजस्व का बहुत बड़ा हिस्सा नगरपालिका सम्पत्ति के किरायो से प्राप्त होता है। इसमें भूमि तथा भवनों, डाक बंगलों, विश्राम गृहों, सरायों आदि को सम्मिलित किया गया है। पजाब तथा हरियाणा में पिछले कुछ वर्षों से यह आय बहुत अधिक बढ़ी है।

(iii) ***दूसरे स्रोतों से राजस्व (Revenue from other Sources)*** – नगरपालिकाएँ करों के अतिरिक्त दण्ड तथा जुर्मानों के रूप में भी राजस्व एकत्रित करती हैं। नगरपालिकाओं को प्लांटों के विक्रय, पेड़ों तथा भूमि से हुई अन्य प्रकार की

उपज के विक्रय से भी काफी धन प्राप्त होता है। सन् 1984-85 में पंजाब की नगरपालिकाओं ने 4713 लाख रुपये दण्ड़ के रूप में तथा 10010 लाख रुपये भूमि की बिक्री की आय से प्राप्त किए। पंजाब व हरियाणा की कई नगरपालिकाओं की अपनी मार्किट तथा बूचड़खाने आय के साधन होते हैं। मार्किट में विक्रय के लिए लाई जानेवाली वस्तुओं पर शुल्क लगाया जाता है। शुल्क की राशि वस्तुओं प्रकृति तथा गुणवत्ता पर निर्भर करती है। बूचड़खानों की व्यवस्था नगरपालिका गुणवत्ता बनाए रखने तथा नगर में सफाई तथा स्वास्थ्य के उद्देश्य से करती है। इसलिए ही इनके प्रयोग पर शुल्क लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ नगरपालिकाएँ परिवार सेवाएँ, विद्युत आपूर्ति, दुग्ध संस्थान, सब्जी–मण्डियाँ आदि भी चलाती हैं।

(iv) ***अनुदान और कर्ज*** – सरकारी अनुदान भी नगरपालिका की वित्तीय स्थिति को ठोस करने में सहायक होता है। अनुदान एक प्रकार का वित्तीय उपादान होता है जो राज्य सरकार नगरपालिका द्वारा उपलब्ध किए जानेवाली विशेष सेवा के सम्बन्ध में सहायता के रूप में देती है। यह राशि नगरपालिका की कुल आय का 15 प्रतिशत होती है। पंजाब में आय का यह साधन महत्त्वहीन है क्योंकि अनुदान से प्राप्त राशि नगरपालिका की कुल आय का एक प्रतिशत होती है। परन्तु पंजाब सरकार जन–स्वास्थ्य, चिकित्सीय सहायता, जल–आपूर्ति आदि के सम्बन्ध में नगरपालिकाओं द्वारा किए जानेवाले व्यय में अपना हिस्सा डालती है। राज्य सरकारें विशेष योजनाओं के लिए भी अनुदान दे सकती हैं।

ऋण भी नगरपालिका की आय का महत्त्वपूर्ण साधन होते हैं। ऋण या तो किन्ही योजनाओं के लिए या उनसे सम्बद्ध आवश्यक बहुमूल्य उपकरणों के मूल्य पर आने वाले व्यय के सम्बन्ध में दिए जाते हैं। नगरपालिका द्वारा ऋण स्थानीय निकाय ऋण अधिनियम 1914 के अन्तर्गत लिए जाते हैं। ऋणों के लिए राज्य सरकार से पूर्व अनुमति लेनी आवश्यक होती है। पंजाब नगरपालिकाओं की कुल आय ऋणों का योगदान पिछले कुछ वर्षों में 3 प्रतिशत से 6 प्रतिशत तक रहा है जबकि हरियाणा में. यह दर 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक है।

नगरपालिका का अध्यक्ष

नगरपालिका में अध्यक्ष का पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वह नगरपालिका की कार्यपालिका का मुखिया होता है। वह नगरपालिका अधिनियम द्वारा सौंपे सभी अधिकारों का प्रयोग स्वयं करता है। वह नगर का प्रथम नागरिक होता है। कुछ राज्यों में नगरपालिका अध्यक्ष को चेयरमैन (Chairman) और नगर निगमों में उसे मेयर (Mayor) कहा जाता है।

नगरपालिका अध्यक्ष का चुनाव
(Election of President)

लगभग सभी राज्यों में नगरपालिका का अध्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से नगरपालिका के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से ही चुना जाता है। हरियाणा और पंजाब में नगरपालिका के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से नगरपालिका के सदस्यों द्वारा किया जाता है। नगरपालिका के सभी सदस्य चुनाव होने के एक महीने के भीतर ही नगरपालिका के अध्यक्ष का चुनाव करते हैं। यदि नगरपालिका के सदस्य अपने अध्यक्ष का चुनाव करने में असमर्थ रहते हैं तो राज्य सरकार अध्यक्ष का चुनाव अपनी देखरेख में करवाती है। 74वें संविधान संशोधन से पहले नगरपालिका के अध्यक्ष पद हेतु महिलाओं को व अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों को समुचित प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता था। परन्तु 74वें संविधान संशोधन के द्वारा नगरपालिकाओं के अध्यक्ष पद हेतु एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित रखे गए हैं और अनुसूचित जाति और जनजातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में नगरपालिका अध्यक्ष पद हेतु प्रतिनिधित्व दिया गया है।

अध्यक्ष की अवधि
(Tenure of the Chairman)

नगरपालिका के अध्यक्ष की अवधि सभी राज्यों में एक समान नहीं है। पंजाब में नगरपालिका के अध्यक्ष की अवधि नगरपालिका की अवधि के समानान्तर है। अर्थात् पंजाब में नगरपालिका के अध्यक्ष की अवधि पाँच वर्ष है। हरियाणा में नगरपालिका समिति अथवा नगर परिषद् के अध्यक्ष की अवधि पांच वर्ष है।

अध्यक्ष की पदच्युति
(Removal of President)

नगरपालिका के अध्यक्ष को निश्चित अवधि से पहले भी हटाया जा सकता है। अध्यक्ष को अपने पद का दुरुपयोग करने व कदाचार के आरोप में उसे पद से हटाया जा सकता है। हरियाणा तथा पंजाब में नगरपालिका के सदस्य दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास करके अध्यक्ष को हटा सकते हैं। राज्य सरकार भी अध्यक्ष को उसके द्वारा किए जानेवाले दुर्व्यवहार और कदाचार के आरोप पर पद से हटा सकती है।

अध्यक्ष पद हेतु योग्यताएँ
(Qualifications of President)

नगरपालिका के अध्यक्ष पद के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ होना अनिवार्य है।

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह नगरपालिका का सदस्य हो।
3. वह पागल न हो।
4. वह दिवालिया न हो।

वेतन
(Salary)

विभिन्न राज्य सरकारें अपनी नगरपालिका के अध्यक्षों की यात्रा–भत्तों के अलावा वित्तीय स्थिति के अनुसार 500 रुपये से 2000 रुपये तक के मध्य वेतन देती है। पंजाब भारत का पहला राज्य है जिसमें नगरपालिका अध्यक्ष को वेतन दिया जाता है। पंजाब में यह वेतन जनवरी 1973 से लागू है। हरियाणा में अध्यक्ष को 2000 रुपये मासिक वेतन और अन्य भत्ते मिलते हैं।

अध्यक्ष के कार्य और शक्तियाँ
(Powers and Functions of President)

नगरपालिका अध्यक्ष नगरपालिका का मुख्य कार्यपालक होता है। विभिन्न राज्यों में अध्यक्ष को विभिन्न तरह की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अध्यक्ष के कार्य व शक्तियाँ पूरे देश में एक समान नहीं है। हरियाणा राज्य नगरपालिका अधिनियम 1973 के द्वारा नगरपालिका अध्यक्ष को बहुत सी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कार्यकारी अधिकारी एवं समिति के सचिव के माध्यम से करता है। आमतौर पर उपर्युक्त शक्तियों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है–

(1) वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers)

(2) अधिशासी शक्तियाँ (Executive Powers)

(3) प्रशासनिक शक्तियाँ (Administrative Powers)

(4) वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)

(5) राजनीतिक शक्तियाँ (Political Powers)

(6) संकटकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers)

(7) विविध शक्तियाँ (Miscallaneous Powers)

(1) ***वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers)*** – राज्य सरकार ने अध्यक्ष को निम्नलिखित वैधानिक शक्तियाँ प्रदान की हैं–

1. वह नगरपालिका/परिषद् का अध्यक्ष होता है।
2. वह नगरपालिका/परिषद् की बैठक बुलाता है और उसकी अध्यक्षता करता है।
3. वह नगरपालिका/परिषद् की बैठकों में शान्ति व व्यवस्था बनाए रखता है।
4. नगरपालिका/परिषद् की बैठकों में रूकावट डाल रहे सदस्यों को बाहर जाने का आदेश दे सकता है।
5. वह नगरपालिका द्वारा पेश किए गए किसी भी बिल पर मतदान करवा सकता है।
6. मतदान में समान मत होने की स्थिति में वह अपने निर्णायक मत का इस्तेमाल करता है और परिणाम घोषित करता है।
7. वह आवश्यकतानुसार नगरपालिका की बैठक बुला सकता है।

(2) ***अधिशासी शक्तियाँ (Executive Powers)*** – कुछ राज्यों में कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति नहीं की जाती है अध्यक्ष ही कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करता है। नगरपालिका अध्यक्ष के पास निम्नलिखित कार्यपालिका शक्तियाँ हैं।

1. नगरपालिका का अध्यक्ष नगरपालिका द्वारा लिए गए निर्णयों और निर्देशों को लागू करवाता है।
2. वह नगरपालिका के निम्न कर्मचारियों को जो कि एक निश्चित वेतन पर काम करते हैं उन्हें नियुक्त व पदच्युत कर सकता है।
3. वह नगरपालिका द्वारा लिए गए निर्णयों की प्रतिलिपियाँ कार्यकारी अधिकारी के माध्यम से जिलाधीश को व राज्य सरकार को भेजता है।
4. वह नगरपालिका अध्यक्ष होने के कारण अन्य नगरपालिका अध्यक्षों व राज्य सरकार से व उसके अधिकारियों के साथ पत्र व्यवहार कर सकता है।
5. नगरपालिका द्वारा चलाए जा रहे विकास कार्यों की जाँच–पड़ताल वह स्वयं कर सकता है।

(3) ***प्रशासनिक शक्तियाँ (Administrative Powers)*** – नगरपालिका अध्यक्ष के पास नगर मुखिया होने के कारण कुछ प्रशासनिक शक्तियाँ भी हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है।

1. नगरपालिकाध्यक्ष कार्यकारी के माध्यम से नगरपालिका के सभी कर्मचारियों पर अपना नियन्त्रण रखता है।
2. कार्यकारी अधिकारी द्वारा नगरपालिका के किसी कर्मचारी के विरुद्ध की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरुद्ध अपील की सुनवाई करता है।
3. वह नगरपालिका के सदस्यों के कार्यों का निरीक्षण, पर्यवेक्षण व नियमन करता है।
4. नगरपालिका के प्रशासनिक ढाँचें को सुचारु प्रबन्ध के लिए नगरपालिका अध्यक्ष आवश्यक निर्देश और हिदायतें जारी कर सकता है।
5. वह कार्यकारी अधिकारी से नगरपालिका से सम्बन्धित कार्यों की रिपोर्ट व वक्तव्य मांग सकता है।
6. नगरपालिका नगर में चल रहे किसी भी अवैध निर्माण कार्य को बन्द करवा सकता है।
7. नगरपालिका अध्यक्ष नगरपालिका की सम्पूर्ण सम्पत्ति की जाँच–पड़ताल कर सकता है।

(4) ***वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)*** – नगरपालिका अध्यक्ष नगर का मुखिया होने के कारण नगरपालिका की वित्तीय शक्तियों का भी प्रयोग करता है–

1. नगरपालिका अध्यक्ष लेखाकार या सचिव की सहायता से नगरपालिका के लिए वार्षिक बजट तैयार करवाता

है तथा उसे नगरपालिका के समक्ष पेश करता है।

2. वह नगरपालिका के बजट की एक प्रतिलिपि कार्यकारी अधिकारी के माध्यम से जिलाधीश को भेजता है।
3. नगरपालिका की आय व व्यय पर पूरा नियन्त्रण रखता है।
4. नगरपालिका द्वारा लगाए जाने वाले नए करों को कार्यान्वित करना नगरपालिका अध्यक्ष का कार्य है।
5. वह कार्यकारी अधिकारी के माध्यम से नगर में होनेवाली कर वसूली पर निगरानी रखता है।
6. नगरपालिका द्वारा सार्वजनिक कल्याण हेतु धन का समुचित प्रयोग करवाने का दायित्व नगरपालिका अध्यक्ष का है।
7. वह कार्यकारी अधिकारी के माध्यम से नगरपालिका के हिसाब किताब की जाँच करता है।

(5) ***राजनीतिक शक्तियाँ (Political Powers)*** – नगरपालिकाध्यक्ष कुछ राजनीतिक शक्तियों का भी उपयोग करता है उनका वर्णन निम्नलिखित है--

1. नगरपालिकाध्यक्ष नगरपालिका में बहुमत दल का नेता होता है।
2. वह नगरपालिका द्वारा बनाई जानेवाली प्रत्येक नीति निर्माण में सक्रिय रूप से भाग लेता है।
3. वह नीति निर्धारण व उसके कार्यान्वयन में नगरपालिका/परिषद् का मार्गदर्शन भी करता है।
4. वह राजनीतिक दल का सक्रिय सदस्य होता है न कि उदासीन पदाधिकारी।
5. वह नगरपालिका में अपने दल का राजनीतिक नेतृत्व करता है।

(6) ***संकटकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers)*** – हरियाणा राज्य नगरपालिका अधिनियम 1973 तथा 1994 के द्वारा नगरपालिकाध्यक्ष को कुछ आपातकालीन शक्तियाँ भी सौंपी गई हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. आपातकाल में नगरपालिका का अध्यक्ष नगरपालिका की सभी शक्तियों का प्रयोग स्वयं कर सकता है।
2. नगरपालिका का अध्यक्ष परिस्थितिवश कोई भी निर्णय ले सकता है या उनके सम्बन्ध में आदेश जारी कर सकता है।
3. आपात्काल में अध्यक्ष नगरपालिका के कार्यों के लिए धन की व्यवस्था व मंजूरी देता है।
4. अध्यक्ष अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग नगरपालिका अधिनियम के अनुसार ही करता है।
5. आपात्काल में जारी किए गए आदेशों को नगरपालिका की आगामी बैठक में पेश करना आवश्यक है। अगर नगरपालिका उन आदेशों के पक्ष में हो तो वह जारी रहेंगे अन्यथा वह समाप्त हो जाएँगे।

(7) ***विविध शक्तियाँ (Miscallaneous Powers)*** – उपर्युक्त वर्णित कार्यों और शक्ति के अलावा नगरपालिका अध्यक्ष के पास कुछ विविध शक्तियाँ भी हैं उनका वर्णन इस प्रकार है–

1. नगरपालिकाध्यक्ष नगर का प्रथम नागरिक होता है। अतः बाहर से आने वाले महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों व अतिथियों का वह स्वागत करता है।
2. नगरपालिकाध्यक्ष नगरपालिका व सरकार के मध्य समन्वय स्थापित करता है।
3. वह अपने नगर में होनेवाली सार्वजनिक सभाओं व राष्ट्रीय समारोहों में भाग लेता है।
4. अपने नगरपालिकाओं के पिछले साल के कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट तैयार करके वह राज्य सरकार व जिलाधीश को भेज सकता है।
5. वह नगरपालिका क्षेत्र में आरम्भ होनेवाले किसी भी सार्वजनिक निर्माण कार्य की आधारशिला रख सकता है।

6. वह सरकार के समक्ष अपनी नगरपालिका के लोगों की उचित मांगों को पेश करता है।

7. वह नगरपालिका द्वारा किए जा रहे मुख्य कार्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

अध्यक्ष की स्थिति
(Position of President)

उपर्युक्त शक्तियाँ नगरपालिकाध्यक्ष की स्थिति को सुदृढ़ता प्रदान करती हैं। हरियाणा राज्य नगरपालिका अधिनियम 1973 द्वारा वर्णित नगरपालिकाध्यक्ष की शक्तियों का प्रयोग वह स्वयं करता है। परन्तु व्यवहार में वह अपने कार्यों व शक्तियों का प्रयोग स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं कर सकता। नगरपालिकाध्यक्ष के कार्यों व शक्तियों पर कई प्रतिबन्ध है। वह प्रतिबन्ध नगरपालिका, कार्यकारी अधिकारी, जिलाधीश व राज्य सरकार द्वारा लगाए जाते हैं। नगरपालिकाध्यक्ष को वही कार्य करने पड़ते हैं जिन्हें नगरपालिका के सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। इसलिए उसे अपनी शक्तियों के लिए नगरपालिका/परिषद् के सदस्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। उसका कार्यकाल नगरपालिका के बहुमत पर निर्भर करता है। फिर भी नगरपालिकाध्यक्ष की स्थिति काफी सुदृढ़ है क्योंकि नगरपालिकाध्यक्ष बहुमत दल का नेता होता है बहुमत दल द्वारा लिए गए निर्णय उसके निर्णय होते हैं। वह कार्यकारी अधिकारी द्वारा अधीनस्थ कर्मचारियों के विरुद्ध की गई कार्यवाही के विरुद्ध अपील सुनता है। वह राजनीतिक नेता और कार्य–पालिका/परिषद् का मुखिया होता है। कुछ राज्यों में नगरपालिकाध्यक्ष को नगर पिता भी कहा जाता है। वह नगरपालिका/परिषद् की बैठकों में भाग लेता है। किसी प्रस्ताव पर समान मत होने की स्थिति में वह नगरपालिका परिषद् की बैठकों में भाग लेता है। किसी प्रस्ताव पर समान मत होने की स्थिति में वह अपने निर्णायक मत का इस्तेमाल करता है। संकटकालीन शक्तियों का प्रावधान उसकी स्थिति को और अधिक सुदृढ़ बनाता है।

इसलिए नगरपालिकाध्यक्ष का पद बहुत ही सम्माननीय है। प्रत्येक/परिषद् का सदस्य नगरपालिका/परिषद् का अध्यक्ष बनने की आकांक्षा रखता है। वह नगर का मुखिया और प्रथम नागरिक होता है। यद्यपि उसका कार्यकाल नगरपालिका/परिषद् के बहुमत की इच्छा पर निर्भर करता है तो भी वह नगरपालिका में ईमानदारी व निष्ठा से कार्य करने का प्रयत्न करता है।

नगरपालिका की वित्तीय कठिनाइयाँ एवं सुझाव

नगरपालिका की वित्तीय कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं–

1. ***दोषपूर्ण बजट (Defective Budgeting)*** -- राज्य की प्रत्येक नगरपालिका अपने आगामी वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने से पूर्व बजट का निर्धारण करती है। बजट का यह कार्य उसके कार्यकारी अधिकारी की देख–रेख में सम्पन्न होता है जो कि अनुभवी नहीं होते। उन्हें नगरपालिका की प्रत्येक आर्थिक स्थिति का ठीक से ज्ञान नहीं होता है। आय एवं न्याय के मध्य इसमें संतुलन नही रखा जाता है। कभी–कभी व्यय आय से अधिक हो जाती है। जिसके कारण नगरपालिका की संस्थाओं को वित्तीय संकट का सामना करता पड़ता है। कभी–कभी नगरपालिका का बजट भी समय पर तैयार नहीं होता, जिसके कारण आवश्यक कार्यों को रोका नहीं जा सकता है और बिना किसी सुनियोजित कार्यक्रम के ही नगरपालिका में वित्तीय कार्य चलते रहते हैं इसके कारण भी नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति असन्तोषजनक हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि कार्य में अनुमान से अधिक खर्च हो जाता है। इससे वित्तीय स्थिति बिगड़ जाती है और नगरपालिका संस्थाओं को वित्तीय हानि उठानी पड़ती है।

2. ***निधियों के हस्तांतरण की दोषपूर्ण पद्धति (Defective System of Devolution of Funds)*** – राज्य के स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को अपने संरचनात्मक ढाँचे को उन्नत करने के लिए निधियों तक पहुँच के मामले में भी नुकसान उठाना पड़ता है। ये संस्थाएँ राज्य सरकारों का अंग होती हैं जिस कारण इन्हें राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अनुदानों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। राज्य सरकार स्थानीय सरकारों को अनुदान के रूप में वह शेष राशि देती है जो कि अन्य योजनाओं में आवंटित होने के बाद बच जाता है।

3. ***दोषपूर्ण राजस्व संग्रहण प्रणाली (Defective Revenue Collection System)*** – नगरपालिका की आय का स्रोत

उसके कार्यों की अपेक्षा कम है। नगरपालिका जो राजस्व एकत्र कर सकती है। वह भी प्रभावी ढंग से वसूल नहीं कर पाती। नगरपालिकाएँ चुंगीकर, टर्मिनल कर, गृह कर आदि का सही ढ़ंग से संग्रहण नहीं करती हैं, इसी कारण नगरपालिकाओं की जितनी आय होनी चाहिए नहीं हो पाती है। इससे नगरपालिका की आय कम हो जाती है और उससे वित्तीय स्थिति असन्तुलित हो जाती है।

साधारणतः राजस्व वसूल करनेवाले अधिकारी कर देने वालों के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करते हैं और कर वसूली सख्ती से नहीं करते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि शहर के प्रभावशाली व्यक्तियों के पास कई–कई साल का बकाया कर रह जाता है। इससे भी नगरपालिका की आय में कमी आती है। देहाती–शहरी आपसी सम्बन्धी समिति ने इस बारे में कहा है, "करों" की प्राप्ति पूर्ण रूप से न होने के कारण स्थानीय संस्थाओं के कर्मचारियों का वेतन बहुत कम होता है।

4. ***वित्तीय स्रोतों का पर्याप्त न होना (Insufficient Financial Resources)*** – राज्य सरकार स्थानीय संस्थाओं के लिए कोई अलग से करों की सूची संविधान में अंकित नहीं करती। नगरपालिका के आय के स्रोत सीमित हैं परन्तु उसके खर्चे अधिक हैं। कर लगाने सम्बन्धी शक्ति केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार दोनों को प्राप्त है। अधिक आयवाले कर केन्द्र व राज्य सरकारें लगाती हैं व एकत्र करती हैं इसलिए स्थानीय संस्थाएँ अधिक आयवाले कोई भी कर नहीं लगा सकती हैं। राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त वित्तीय सहायता पर्याप्त नहीं होती कि वह अपना खर्च समुचित ढंग से चला सकें। इस कारण भी इनकी वित्तीय दशा बहुत खराब हो जाती है।

5. ***अनुदान प्रणाली का दोषपूर्ण होना (Defective System of Grants)*** – नगरपालिकाओं की आय का एक मुख्य साधन राज्य सरकार द्वारा दी जानेवाला अनुदान राशि है। राज्य सरकार द्वारा दिए जानेवाले ये अनुदान अपर्याप्त, अनियमित, अव्यवस्थित, अनिश्चित एवं नगरपालिका संस्थाओं की आवश्यकताओं से बहुत कम होते हैं। राज्य सरकार द्वारा दिए जानेवाली अनुदान राशि बहुत दोषपूर्ण है। राज्य सरकारों द्वारा दी जानेवाली राशि उसकी इच्छा पर निर्भर करती है। सरकार अपनी अन्य परियोजनाओं पर खर्च करने के बाद जो कुछ धनराशि शेष बचती है वह स्थानीय संस्थाओं की अनुदान राशि के रूप में दे देती है।

6. ***लेखा परीक्षण की बाधक भूमिका है (Impedimentary Role of Audit)*** – राज्य की प्रत्येक नगरपालिका के हिसाब–किताब की जाँच के लिए सरकार लेखा–परीक्षकों को नियुक्त करती है। यह लेखा परीक्षा नगरपालिका के प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। परन्तु दुख का विषय है कि अधिकतर नगरपालिकाओं में यह ठीक ढ़ंग से कार्य नहीं करती हैं। लेखा परीक्षण द्वारा नगरपालिका की वित्तीय व्यवस्था में कमियों को उजागर करने के बावजूद उन पर कोई प्रभावशाली कार्यवाही नहीं की जाती है। प्रायः देखा जाता है कि नगरपालिका स्वयं भी राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित लेखा नियमों का पालन नहीं करती हैं। जिनके परिणामस्वरूप इन स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को असन्तोषजनक वित्तीय व्यवस्था का सामना करना पड़ता है।

7. ***कर न लगाने की भावना (Unwillingness to Impose Taxes)*** – स्थानीय स्वशासन की शहरी संस्थाओं की कर लगाने सम्बन्धी प्रणाली भी दोषपूर्ण है। प्रायः देखा जाता है कि नगरपालिका अपनी वित्तीय स्थिति संकट में होते हुए भी कई आवश्यक व महत्त्वपूर्ण कर नहीं लगाती है। यह कर लगाने में हिचकिचाहट महसूस करती है। कई बार नगरपालिकाएँ कुछ ऐसे कर लगाने के प्रस्ताव पारित कर देती हैं जो कि केवल प्रभावशाली व्यक्तियों के ऊपर ही लागू होते हैं। प्रभावशाली व्यक्तियों का गुट प्रायः ऐसे प्रस्तावों का विरोध करता है और उन्हें रद्द करवाने के लिए अपने प्रभाव का इस्तेमाल करता है। इससे भी नगरपालिकाओं की आय कम हो जाती है और उनकी वित्तीय स्थिति असन्तोषजनक हो जाती है।

8. ***जनसंख्या में वृद्धि (Increasing Population)*** – नगरपालिकाओं में आय कम होने और वित्तीय संकट का एक अन्य कारण जनसंख्या में हो रही वृद्धि है। यह जनसंख्या वृद्धि स्थानीय प्रशासन की शहरी संस्थाओं पर अधिक वित्तीय दबाव डालती हैं। नगरपालिकाएँ अपनी योजनाएँ निर्धारित जनसंख्या के लगभग अनुरूप बनाती हैं। परन्तु जनसंख्या

वृद्धि के कारण वह योजनाएं सफल नहीं हो पाती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण नगरपालिकाएँ लोगों के कल्याण की योजनाएँ अधिक नहीं बना पाती हैं। वित्तीय संकट के कारण यह कल्याणकारी योजनाएँ नगरपालिकाओं के लिए सिरदर्द बन जाती हैं।

9. ***गरीबी (Poverty)*** – नगरपालिकाओं की कम आय का तो एक मुख्य कारण नगरपालिकाओं में पाई जानेवाली गरीबी है। भारत की अधिकांश जनसंख्या गरीब है और 35 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। गरीब व्यक्तियों में कर देने की क्षमता बहुत कम होती है। भारत में प्रति व्यक्ति औसत आय प्रतिवर्ष अन्य देशों के मुकाबले बहुत कम है। केन्द्र और राज्य सरकारें अपनी वार्षिक बजट के द्वारा इन पर अधिक कर लगा देते हैं जिस कारण नगरपालिकाएँ कुछ अन्य कर लगाती हैं तो जनसंख्या का एक बड़ा भाग हल्ला–गुल्ला मचाने लगता है। इसलिए देश की बढ़ती हुई गरीबी भी नगरपालिकाओं के वित्त पर बुरा प्रभाव डालती है।

10. ***कुशल कर्मचारियों का अभाव (Lack of Trained Staff)*** – नगरपालिका की वित्तीय समस्याओं का एक अन्य कारण नगरपालिकाओं में कुशल मेहनती कर्मचारियों का अभाव है। इन कर्मचारियों को नगरपालिका संस्थाओं के कार्यों का समुचित प्रशिक्षण नहीं होता है। प्रशिक्षण के अभाव में यह कर्मचारी अपने कार्यों में अनियमितताएँ बरतते हैं। इससे प्रशासन में भ्रष्टाचार फैलता है। इसके कारण नगरपालिकाओं द्वारा लगाए गए करों को एकत्र करने में परेशानी होती है और करों की चोरी बढ़ जाती है। करों की चोरी होने के कारण नगरपालिकाओं की आय में कमी होती है। जिस कारण भी इन्हें वित्तीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए दिए गए सुझाव (Suggestions for Improving the Financial Condition of Municipalities)

भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के राजस्व की हालत व उनके वित्तीय साधन अत्यन्त खराब हैं। देश के सभी साधनों का प्रभाव स्थानीय संस्थाओं पर पड़ता है। वित्तीय क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन की स्थिति काफी सोचनीय है इन स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की आय के साधन इतने सीमित हैं कि ये अपनी विकासशील नीतियों को बिना राज्य सरकार की सहायता के लागू नहीं कर सकती हैं। इसलिए आज इस बात पर बल दिया जाता है कि नगरपालिकाओं की दयनीय स्थिति में सुधार किया जाए ताकि यह स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के द्वारा कार्य प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकें। केन्द्र व राज्य सरकारों ने समय–समय पर स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में सुधार के लिए कई जाँच समितियों व आयोगों का गठन किया है। इसके द्वारा दिए गए सुझावों व सिफारिशों के आधार पर स्थानीय निकायों की वित्तीय समस्याओं को हल करने के निम्नलिखित उपाय खोजे गए हैं–

1. ***सन्तुलित बजट का निर्माण (To Prepare Balanced Budget)*** – नगरपालिकाओं की वित्तीय दशा में सुधार का एक मुख्य साधन सन्तुलित बजट का निर्माण है। सन्तुलित बजट से नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार आता है। आय में बचत होने के कारण बचत की रकम को नगरपालिका अपने विकास कार्यों पर खर्च कर सकती है। सन्तुलित बजट कर दाताओं में नगरपालिकाओं के प्रति विश्वास उत्पन्न कर देता है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में वित्त का स्थायित्व अनिवार्य है। बजट को तैयार करते समय पिछले वित्तीय वर्ष की कमियों को ध्यान में रखना अनिवार्य है। अतः बजट को तैयार करते समय इसके वैज्ञानिक पक्ष को ध्यान में रखना अनिवार्य है। बजट को तैयार करते समय आय और व्यय को बढ़ा–चढ़ाकर नहीं दिखाना चाहिए बल्कि यथार्थ स्थिति को ध्यान में रखते हुए ही बजट का निर्माण किया जाना चाहिए।

2. ***मौजूदा साधनों का उचित प्रयोग (Proper use of the Existing Means)*** – नगरपालिकाओं की आय में वृद्धि व वित्तीय व्यवस्था में सुधार का एक अन्य उपाय नगरपालिकाओं द्वारा मौजूदा साधन का उचित प्रयोग है। प्रायः देखा जाता है कि नगरपालिकाएँ उपलब्ध साधनों का सही ढंग से प्रयोग नहीं करती हैं। जिसके कारण उन्हें वित्तीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यदि ये संस्थाएं अपने मौजूदा साधनों का उपयोग नहीं कर पाती हैं तो उन्हें सरकार से किसी

भी तरह की वित्तीय सहायता लेने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। मौजूदा संसाधनों का उपयोग करने से इनकी आय में वृद्धि होगी और अपनी वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए इन्हें राज्य सरकार पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा।

3. ***वित्त आयोग की नियुक्ति (Appointment of Finance Commission)*** – राज्य सरकार को अपने राज्य की नगरपालिकाओं में आय के विभाजन के सम्बन्ध में विचार करने के वित्त आयोग का हर पाँचवें वर्ष गठन करना चाहिए। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के लिए गठित वित्त आयोग की सिफारिशों को स्थगित या रद्द करने का अधिकार राज्य सरकार को नहीं होना चाहिए। स्थानीय संस्थाओं की केन्द्रीय परिषद् की बैठकों में लगातार नगरपालिका संस्थाओं के लिए वित्त आयोग की स्थापना की मांग की गई जिसके परिणामस्वरूप सर्वप्रथम महाराष्ट्र में इसके बाद उड़ीसा आदि राज्यों में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के लिए वित्त आयोग की स्थापना की गई है।

4. ***अनुदान सम्बन्धी कार्य (Functions Regarding Grant)*** – नगरपालिकाएँ अपने हालात को सुधारने के लिए प्रायः दिए जानेवाले अनुदान पर ही निर्भर करती है। अनुदान देने की प्रणाली को भी सुधारने की जरूरत है। अनुदान देते समय नगरपालिका की आय की जांच की जानी चाहिए अनुदान कम राशिवाली नगरपालिका को अधिक दी जानी चाहिए अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन अनुदानों की व्यवस्था को सक्रिय और सुव्यवस्थित बनाया जाना चाहिए। अनुदान समय पर व आवश्यक मात्रा में मिलने चाहिए जिससे नगरपालिकाओं के कार्य रूके नहीं और उनकी आय के बढ़ोत्तरी होती रहे।

5. ***अनुभवी कर्मियों की भर्ती (Recruitment of Able Staff)*** – नगरपालिकाओं की आय में वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि नगरपालिका कर्मचारी योग्य व प्रशिक्षित होने चाहिए। उन्हें नगरपालिका के करों का ईमानदारी से सग्रहण करना चाहिए। नगरपालिका के बढ़ते हुए कार्य को देखते हुए पर्याप्त कर्मचारियों का होना आवश्यक है। जिसके कारण काम ठीक प्रकार से सम्पन्न हो सके और स्थानीय संस्थाओं की आय में वृद्धि हो सके।

6. ***लोगों को भुगतान सम्बन्धी शिक्षा देना (Educate People About Paying Taxes)*** – नगरपालिकाओं को अपने क्षेत्र में रहनेवाले नागरिकों के अन्दर ईमानदारी से कर अदा करने की भावनाएँ जागृत करना जरूरी है। इसके लिए नगरपालिकाओं को जनजागृति अभियान आदि चलाना आवश्यक है। उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहिए कि कर देना देशभक्ति का कार्य है। कर चुकता करने से देश का, उनका, स्वयं का हित होगा। इस ढ़ंग से लोगो में ईमानदारी से कर अदा करने की भावना जागृत होगी और नगरपालिकाओं की आय में भी वृद्धि होगी।

7. ***नगरपालिकाओं के लिए नगर वित्त निगम की स्थापना (Establishment Municipal Finance Corporation for Municipalities)*** – ग्रामीण–नगरीय समिति (Rural-urban Relationship Committees) ने सिफारिश दी थी कि प्रत्येक State में नगरपालिकाओं के उद्यमों की पूंजीगत जरूरतों को पूरा करने के लिए एक नगरपालिका का वित्त निगम (Muncipal Finance Corporation) स्थापित किया जाए। इस समिति की राय थी कि ये निगम नगरपालिकाओं को परिवहन, बिजली, बाजार होटल, दुग्ध–पूर्ति आदि उद्यमों को चलाने के लिए पूंजीगत जरूरतों के पूरा करने के लिए ऋण दे सकें। यह नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

अध्याय-4

भारत में नगरीय सेवी वर्ग प्रशासनः प्रकार, भर्ती एवम् प्रशिक्षण

(Municipal Personnel Administration in India: Kinds, Recruitment and Training)

आधुनिक युग में लोक प्रशासन का महत्त्व सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में अत्याधिक बढ़ गया है। आधुनिक राज्य आज मानव जीवन के लगभग हर क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है। इसकी व्यापकता एवम् इसके महत्त्व को देखते हुए विचारकों ने आधुनिक राज्य को प्रशासनिक राज्य की संज्ञा दे दी। राज्य का विस्तार अनेक स्तरों पर प्रभावी रहता है। लोकतांत्रिक मूल्यों की तथा इस प्रणाली को व्यवहारिकता प्रदान करने हेतु इसे केन्द्र से लेकर स्थानीय निकायों तथा प्रभावी बनाने की परिकल्पना को साकार रूप देना होता है। लोक प्रशासन की कुशलता एवम् गुणवत्ता बहुत सीमा तक उसके सेवी वर्ग प्रशासन की कुशलता एवम् गुणवत्ता पर निर्भर करती है। सेवी वर्ग प्रशासन की आवश्यकता आज अनेक देशों में महसूस की जा रही है क्योंकि कुशल सेवी वर्ग प्रशासन के माध्यम से ही प्रशासन के अन्य पहलुओं में कुशलता एवम् गुणवत्ता लाना संभव है। सेवी वर्ग प्रशासन के अंतर्गत हम अनेक पहलुओं का अध्ययन करते हैं। जिसमें मूलतः भरती प्रणाली, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन, सेवा शर्तें इत्यादि। इस अध्याय में हम मुख्यतः सेवी वर्ग प्रशासन के विभिन्न पहलुओं जैसे भर्ती की प्रणाली एवम् प्रशिक्षण व्यवस्था पर विशेष रूप से विवेचन करेंगे।

नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन

सेवी वर्ग प्रशासन लोक प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। जब हम सेवी वर्ग प्रशासन को नगरीय इकाइयों से जोड़ते हैं तो उसे हम नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन की संज्ञा देते हैं। इसमें हम उन्हीं सिद्धान्तों के परिपालन की अपेक्षा करते हैं जो राज्य एवम् केन्द्र सरकार के स्तर पर मान्य होती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय संविधान मूल रूप से दो स्तरीय शासन व्यवस्था का अभिलेख करता है जो केन्द्र एवम् राज्यों से सम्बन्धित है, और नगरीय इकाइयों के सम्बन्ध में अधिकार राज्य सरकारों में निहित करता है। इसका तात्पर्य हम यह समझते हैं कि भारत में सेवी वर्ग प्रशासन से सम्बन्धित नियमों एवम् अधिनियमों का निर्माण एवम् कार्यान्वयन राज्य सरकारों द्वारा होता है। परन्तु नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन में राज्य सरकार ऐसे नियमों एवम् मूल्यों का निर्धारण करती है जो मूल रूप से सामान्य सेवी वर्ग प्रशासन के सिद्धान्तों के अनुरूप होता है।

आधुनिक युग में नगरीयकरण काफी तेजी से बढ़ा है। इस प्रक्रिया से भारत भी अछूता नहीं रह गया है। पिछले कुछ दशकों में भारत के अनेक नगरों की जनसंख्या काफी बढ़ी है। जिसमें छोटे बड़े सभी प्रकार के नगर देखे जा सकते हैं। इनका प्रभाव नगरीय सेवाओं पर पड़ा। इसके फलस्वरूप सेवी वर्ग प्रशासन का महत्त्व और भी बढ़ा क्योंकि इन सेवाओं के कुशल प्रशासन के लिए एक कुशल नगरीय सेवा वर्ग प्रशासन आवश्यक मापदण्ड बन गया। इस कारण अनेक राज्यों में सेवी वर्ग प्रशासन की गुणवत्ता एवम् कुशलता पर विशेष अभिरुचि व्यक्त की गई। नगरीय स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति आमतौर से कमजोर रही है। इस कारण इसका प्रभाव सेवी वर्ग प्रशासन पर भी पड़ा क्योंकि अच्छे सेवी वर्ग प्रशासन के लिए शिक्षित एवम् योग्य कर्मचारी वर्ग का होना आवश्यक है योग्य एवम् कुशल कर्मचारी वर्ग के लिए अच्छे वेतनमान भी आवश्यक हैं। अच्छे वेतनमान का तात्पर्य है अधिक व्यय जो नगरनिकाय नहीं सहन कर सकते, इस कारण सेवी वर्ग प्रशासन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। साथ ही यह भी जानते हैं कि कुशल नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन नहीं दे सकते हैं। इस कारण नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन किस प्रकार का हो यह एक विश्लेषण का विषय बन जाता है।

आरम्भ में नगरीय इकाइयों का सेवी वर्ग प्रशासन पर पूरा अधिकार एवम् नियन्त्रण होता था। इस व्यवस्था के अंतर्गत कर्मचारी नगर निकाय विशेष की सेवा में पूरा काल निर्वाह करते थे। नगरीय निकाय कर्मचारियों के वेतन, भत्ते, सेवा शर्तें आदि स्वयं निर्धारित

करती थी। परन्तु कालान्तर में इस व्यवस्था में अनेक कमियाँ देखी गईं। उदाहरण के तौर पर कर्मचारी केवल एक ही नगर निकाय की सेवा में पूरे काल सेवारत रहता था जिस कारण सेवी वर्ग प्रशासन की दृष्टि से उसमें अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती थीं। उसमें उसके वेतन की सीमाएँ थी तथा उसका कार्यक्षेत्र भी बहुत सीमित रहता था। पदोन्नति के बहुत कम अवसर उपलब्ध रहते थे। इससे कर्मचारियों के मनोबल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। इन सबका सम्मलित प्रभाव नगर के प्रशासन पर एवम् नगरीय सेवाओं पर पड़ने लगा। सेवाओं की कुशलता बहुत घट गई तथा अनेक राज्य सरकारों के लिए यह चिन्ता का विषय बनने लगा। इसलिए इस व्यवस्था में परिवर्तन की मांग की जाने लगी।

सन् 1966 में ग्रामीण–नगरीय सम्बन्धों से सम्बद्ध समिति ने इस सम्बन्ध में विचार किया एवम् संस्तुति दी। उक्त समिति ने स्वायत्त संस्थाओं में प्रशासन की व्यवस्था में संनिहित बुराइयों को ध्यान में रखकर सुझाव दिए। जिनमें से कुछ निम्न हैं–

1. नगरपालिकाओं के जन् स्वास्थ्य, इंजीनियरिंग तथा मेडिकल सेवाएँ बहुत ज्यादा नहीं होने से इन सेवाओं के लिए कम्बाइन्ड इंटीग्रेटेड सर्विस (Combined Integrated Services) प्रस्तावित की है। लेखा विभाग की सेवाओं के लिए पृथक् स्वतंत्र सेवा का सुझाव दिया है।
2. राजस्व एवम् कर निर्धारण अधिकारियों के कार्य–कलाप विशेष ज्ञान पर आधारित है जो कि शासन के विभागों से कुछ भिन्न है। इस कारण एक पृथक् यूनिफाईड कैडर (Unified Cadre) की आवश्यकता प्रतिपादित की गई है।
3. अन्य सेवाओं की भर्ती सम्बन्धित नियमों द्वारा निर्मित नगरपालिका के चयन समितियों को यह कार्य देने का सुझाव है।

यदि हम उक्त समिति की सिफारिशों पर गौर करें तो यह पता चलता है कि सेवी वर्ग प्रशासन केन्द्रीकरण की ओर बढ़ रहा है। सेवी वर्ग प्रशासन में मूलरूप से भर्ती की प्रणाली को लेकर इसके प्रकार का निर्धारण करते हैं इसलिए आइए अब भरती की प्रणाली का विश्लेषण करें जिससे नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन का स्वरूप भी स्पष्ट रूप से विश्लेषित होता है।

सेवी वर्ग प्रशासन में भर्ती प्रणाली का सबसे अधिक महत्त्व है क्योंकि इसी के आधार पर सेवी वर्ग प्रशासन की कुशलता एवम् गुणवत्ता निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में चयनपद्धति का विशेष महत्त्व हो जाता है क्योंकि एक भी गलत चयन पूरे प्रशासन के लिए दुष्कर सिद्ध हो सकता है। इसी कारण सेवी वर्ग प्रशासन में भी भर्ती प्रणाली का विशेष महत्त्व माना जाता है। इसी के माध्यम से योग्य एवम् कुशल कर्मचारियों का चयन निश्चित किया जाता है। यह बात ध्यान देने की है कि नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन में तथा भर्ती प्रक्रिया में वही सिद्धांत माना है जो लोक सेवी वर्ग प्रशासन के उच्चस्तर पर अपनाये जाते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि स्थानीय प्रशासन राज्य सूची का विषय है इस कारण स्थानीय निकायों में सम्बन्धित नियमों एवम् अधि नियमों का प्रतिपादन राज्य सरकारों द्वारा होता है। इसके फलस्वरूप भारत में विभिन्न राज्यों में विभिनन सेवी वर्ग प्रशासन की प्रक्रिया प्रचलित है। अनेक राज्यों में इस सम्बन्ध में सेवी वर्ग प्रशासन को सुधारने सम्बन्धी नियम बनाए। उदाहरण के तौर पर बिहार में राज्य शासन को अधिकार है कि वह विभिन्न वर्ग के कर्मचारियों की संख्या, वेतनमान आदि बनाए तथा नगरपालिका उसमें राज्य शासन की स्वीकृति के बिना हेरफेर नहीं कर सकती। नगरपालिका अधिकारी, स्वास्थ्य अधिकारी, एकाउन्टेन्ट आदि की नियुक्ति राज्य शासन स्वयं करता है। पंजाब में कार्यपालन सचिव व स्वास्थ्य अधिकारी राज्य शासन की स्वीकृति से नियुक्त होते हैं। विशेष कर्मचारी राज्य शासन द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार नगरपालिका के लिए राज्य स्तर पर तीन विशेष सेवाएँ अर्थात् राज्य नगरपालिका सेवा कार्यपालन, राज्य नगर सेवा पालिका स्वास्थ्य एवम् राज्य नगरपालिका सेवा इंजीनियरिंग गठित की गई है। इसके अतिरिक्त कतिपय विशेष पदों के लिए जिसमें राजस्व पदाधिकारी, लेखा पदाधिकारी, स्वच्छता निरीक्षक ओवरसियर, लेखपाल आदि शामिल हैं, की नियुक्ति शासन द्वारा की जाती है। अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए जिला चयन समिति का गठन किया गया है, जिसके अन्तर्गत जिला कलेक्टर, चेयरमैन घोषित कर जिले के कार्यपालक सचिव को पदेन सचिव (सदस्य) रखा गया है।

उत्तर प्रदेश में भी अनेक सेवाएँ राज्य शासन द्वारा संचालित की जाती हैं। सन् 1966 में नगरीय सेवाओं का केन्द्रीयकरण किया गया। इसमें अन्तर्गत प्रमुख सेवाओं का राज्य द्वारा केन्द्रीकरण कर दिया गया। इसका तात्पर्य यह है कि नगरनिकायों के कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानान्तरण आदि राज्य सरकार द्वारा नियन्त्रित एवम् निर्देशित होता है।

ऊपर वर्णित विभिन्न राज्यों में व्यवस्थाओं को देखने से पता चलता है कि धीरे–धीरे हम केन्द्रीयकरण की ओर बढ़ रहे हैं। भर्ती की प्रणाली में मूल रूप से दो तरह की व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं। जिन्हें हम इंटीग्रेटेड तथा यूनिफाईड (Intregrated and Unified System)

पद्धति की संज्ञा दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त भर्ती की एक व्यवस्था और भी है जिसे हम इंडीविजूअल परसोनैल सिस्टम कह सकते हैं। आईए अब इन तीनों व्यवस्थाओं की विशेषताओं का संक्षिप्त विश्लेषण करें।

1. एकीकृत सेवीवर्ग प्रणाली

Integrated Personnel System

यह एक ऐसी प्रणाली है जिसके अंतर्गत सेवाएँ नियन्त्रित की जाती है चाहे वह किसी भी स्तर से सम्बन्ध रखती हो। उदाहरण के तौर पर स्वास्थ्य सेवाएँ, इंजीनियरिंग सेवाएँ आदि। भारत के नगर निकायों में यह प्रणाली भी प्रचलित है जिसके अंतर्गत नगर निकाय इन सेवाओं में रत अधिकारियों की सेवाओं का लाभ उठाते हैं। इस भर्ती प्रणाली की यह विशेषता है कि इसके अन्तर्गत नियुक्तियाँ निर्धारित चयन प्रक्रिया के माध्यम से की जाती है। इसमें विशिष्ट सेवाएँ होती है और इनका चयन भी इसी आधार पर किया जाता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि इस व्यवस्था में नगर निकाय विशेष में चयन न होकर सेवा विशेष में चयन होता है। इसी कारण हम इसे एकीकृत सेवी वर्ग प्रणाली (Integrated Personnel System) कहते हैं।

एक बार इस विशिष्ट सेवा में चयन हो जाने के पश्चात् अधिकारियों की नियुक्ति विभिन्न स्तरों पर की जाती है। नगर निकाय भी इन अधिकारियों को अपनी सेवा में ले लेते हैं। परन्तु विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इन अधिकारियों पर सीधा नियंत्रण स्थानीय निकायों का नहीं हो पाता। यह अवश्य है कि उनका वेतन भत्ते आदि नगरपालिका, नगर महापालिका आदि के कोष से होता है। व्यवहारिक रूप से इस सेवा के अंतर्गत अधिकारी नगर निकाय की सेवा में रहते हैं तथा दिन प्रतिदिन के कार्य को भी सम्पन्न करते हैं। परन्तु उनका आधारभूत नियंत्रण उनके पैतृक सेवा से (Parental Cadre) ही रहता है। यद्यपि कुछ ऐसे अधिकारी हो सकते हैं जो स्थानीय निकाय की सेवा को स्वीकार कर उसी में अंतिम रूप से रूक जाते हैं। परन्तु ऐसे कर्मचारियों/अधिकारियों की संख्या बहुत सीमित रहती है। अधिकांश अधिकारी नगर निकाय की सेवा में कुछ समय रहने के पश्चात् अपनी सेवा में वापस चले जाते हैं।

इस एकीकृत सेवी वर्ग प्रशासन की अपनी अच्छाइयाँ एवम् कमियाँ हैं। एक तो इसके माध्यम से स्थानीय निकायों को उच्च स्तर का तकनीकी प्रशासन एवम् सुविधा उपलब्ध हो जाती है जो अन्यथा नगर निकायों को स्वयं अर्जित करने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ सकता है, क्योंकि उस स्तर की चयन प्रक्रिया स्थानीय निकायों के स्तर पर कठिनाई से ही उपलब्ध हो पाएगी। अतः इस प्रणाली के माध्यम से उनको एक उच्च स्तरीय तकनीकी सुविधा उपलब्ध हो जाती है। साथ ही इस व्यवस्था में अनेक कमियाँ भी हैं। उदाहरण के तौर पर जैसा हम ऊपर देख चुके हैं इसके अधिकारी तकनीकी सेवा से सम्बन्धित होते हैं। इस कारण नगर निकायों का उन पर पूरा सार्थक नियन्त्रण नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त बहुधा यह अधिकारी कुछ समय के लिए नगर निकायों की सेवा में आते हैं और फिर अपनी पैतृक सेवा में वापस चले जाते हैं। इस कारण उनका पूरा लाभ नगर निकायों को नहीं मिलता क्योंकि उनकी मानसिकता एवम् भावनाएँ विभिन्न कारकों से अन्यथा प्रेरित होती हैं। साथ ही यह अधिकारी वर्ग अल्पकाल के लिए ही नगर निकायों की सेवा में रहते हैं अतः कोई लगाव अनुभव नहीं कर पाते। इस कारण कोई विशेष लाभ नगर निकायों को नहीं मिल पाता है। फिर भी कुल मिलाकर यह ऐसी सेवा है जिसे नगर निकाय नकार नहीं सकते हैं।

2. संगठित सेवीवर्ग प्रणाली

Unified Personnel System

नगर प्रशासन दिन प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। इसका विकास अनेक क्षेत्रों में पिछले कुछ दशकों में तीव्रता से बढ़ा है। परन्तु नगरीय सेवाएँ अनेक समस्याओं से ग्रसित रही हैं। नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन अनेक कारणों से प्रभावित रहा है। इसके वेतनमान, पदोन्नति के अवसर आदि इतने सीमित थे कि उनका प्रभाव कर्मचारियों के मनोबल पर पड़ा जिससे उनकी कुशलता एवम् गुणवत्ता भी प्रभावित हुई। यहाँ तक कि अनेक नगर निकाय अपने आधारभूत सेवाओं को भी चलाने में कठिनाई का सामना कर रहे थे। इन तमाम समस्याओं से सार्थक ढंग से निपटने के लिए राज्य सरकारों का हस्तक्षेप हुआ। इस हस्तक्षेप को उचित बताते हुए कहा गया कि इससे नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन में सुधार होगा। इस व्यवस्था के अंतर्गत राज्य सरकारों में नगर निकायों में कार्यरत अनेक सेवाओं का केन्द्रीकरण किया गया। इस केन्द्रीकरण का तात्पर्य यह है कि नगर निकायों में भर्ती, पदोन्नति, तबादले तथा अन्य सेवा शर्तें यह सभी राज्य सरकार द्वारा निर्धारित एवम् निर्देशित की जाएँगी। इस व्यवस्था से अन्य प्रकार की सेवा वर्ग प्रशासन की व्यवस्था में आई कमियाँ दूर करने की बात कही गई। इस नीति के तहत अनेक राज्यों ने नियम एवम् अधिनियम पारित कर सेवाओं का

केन्द्रीकरण किया। उदाहरण के तौर पर उत्तर प्रदेश में जुलाई 1966 में केन्द्रीकरण से सम्बन्धित नियमों का निर्माण किया गया। इसके अंतर्गत 19 प्रकार की नगरीय सेवाएँ अधीनस्थ कर ली गई। फलस्वरूप इन 19 प्रकार की सेवाओं से सम्बन्धित भर्ती की प्रक्रिया राज्य सरकार ने अपने हाथ में ले ली। इसके साथ ही इन सेवाओं में कार्यरत् कर्मचारियों के तबादले सम्बन्धित नीति एवम् नियम राज्य सरकार के अधीन हो गए। साथ ही इन सेवाओं के कार्यरत् अधिकारी एवम् कर्मचारियों के पदोन्नति सम्बन्धी नियम राज्य सरकार ही बनाएगी। इस प्रकार संगठित सेवी वर्ग पद्धति (Unified Personnel System) की मूल भावना केन्द्रीकरण की ओर इंगित करती है क्योंकि अधिकांश शक्तियाँ एवम् अधिकार राज्य सरकार ने अपने हाथों में केन्द्रित कर रखा है। सेवी वर्ग प्रशासन के अनेक पहलू राज्य सरकार के आदेशों से ही प्रचलित होते हैं। यह व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं से भिन्न कही जा सकती है।

किसी भी प्रणाली की भांति संगठित सेवी वर्ग प्रणाली (Unified Personnel System) की अपने अच्छाईयाँ तथा कमियाँ हैं। सामान्य तौर से यह माना जा सकता है कि नगरीय संस्थाओं में काम करनेवाले अनेक अधिकारियों एवम् कर्मचारियों के लिए प्रगति के नये अवसर उपलब्ध हुए। इस व्यवस्था के अन्तर्गत यह भी कहा गया कि अधिकारियों एवम् कर्मचारियों के लिए पदोन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ परन्तु इस व्यवस्था में एक कमी भी दिखाई देने लगी जिसके अंतर्गत कर्मचारियों का नगरीय निकायों के प्रति लगाव एवम् अपनापन क्षीण हो गया क्योंकि इस व्यवस्था के अंतर्गत अधिकारीगण किसी नगर निकाय विशेष से सम्बद्ध न रहकर पूरे प्रदेश की नगर निकायों से जुड़े। इस प्रकार नगरीय प्रशासन का सेवी वर्ग प्रशासन भी नौकरशाही से जुड़ा और इस प्रकार नौकरशाही की कमियाँ एवम् बुराईयाँ नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन में भी आ गयी। इस प्रकार जहाँ एक ओर नगरीय संस्थाओं में सेवा एवम् अधिकारियों को सेवा के अधिक अवसर मिले, उनका पदोन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ वहीं दूसरी ओर केन्द्रीकरण बढ़ा। नगरीय प्रशासन नौकरशाही की आम बुराईयों से भी अछूता नहीं रह गया। इस प्रकार यह कहना कठिन होगा कि Unified Personnel System अन्य सेवी वर्ग पद्धतियों से अच्छा है यद्यपि भिन्न अवश्य है।

3. वैयक्तिक नगरीय सेवीवर्ग व्यवस्था

Individual Personnel System

ऊपर वर्णित सेवी वर्ग प्रशासन की भर्ती प्रणाली सम्बन्धित दो व्यवस्थाओं के अतिरिक्त एक तीसरी व्यवस्था भी प्रचलित रही है जिस हम वैयक्तिक नगरीय सेवा वर्ग व्यवस्था या Individual Municipal Personnel System कह सकते हैं। इसके अंतर्गत नगरीय इकाइयां को यह अधिकार रहता है कि वह अपने अधिकारियों एवम् कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति सेवा शर्तें आदि सम्बन्धी नियम बना सकते हैं, तथा उन पर अपना पूरा नियन्त्रण रखते हैं। इस प्रकार इस व्यवस्था के अंतर्गत नगर निकायों का अपने अधिकारियों एवम् कर्मचारियों पर सेवा सम्बन्धी पूर्ण नियन्त्रण रहता है। साथ ही इस व्यवस्था के अंतर्गत सेवारत कर्मचारी आमतौर से एक ही नगर निकाय की सेवा में रह पाते हैं क्योंकि स्थानान्तरण की व्यवस्था इस प्रकार की सेवा वर्ग प्रशासन में आमतौर से नहीं रहती है। अतः जो कर्मचारी इस नगर निकाय की सेवा में आता है वह उसकी पूर्ण सेवा कर वहीं से सेवा निवृत्त हो जाता है।

इस प्रकार के नगरीय भर्ती प्रणाली की अच्छाई यह कही जा सकती है कि इसके अंतर्गत कार्यरत् अधिकारियों एवम् कर्मचारियों को अत्याधिक अनुभव हो जाता है क्योंकि वे एक लम्बे समय तक नगर निकाय की सेवा में रहते हैं। इसका लाभ यह भी होता है कि इन कर्मचारियों का नगर की समस्याओं के प्रति तथा नगरवासियों के प्रति अच्छी समझ एवम् जानकारी होती है। प्रशासन में मानवीय मूल्यों की अधिक परिपालन होने की सम्भावना होती है जिससे नगरवासियों की समस्याओं का समाधान करने में सहायता मिलती है। एक लम्बे समय तक नगर में सेवा करने के कारण उनका ज्ञान भी पूर्ण एवम् परिपक्व हो जाता है। इन सबका सम्मिलित प्रभाव यह होता है कि नगर प्रशासन में कुशलता बनी रहती है तथा प्रशासन एवम् नागरिकों के बीच समस्याएँ कम उत्पन्न होती हैं। बहुधा इसी कारण यह व्यवस्था एक लम्बे समय तक न केवल भारत में बल्कि विश्व के अनेक विकसित देशों में जैसे अमरीका, इंग्लैण्ड, जापान में भी प्रचलित रही।

परन्तु इस व्यवस्था पर कालान्तर में अनेक कारणों से प्रहार हुए और इसमें अनेक बुराइयाँ बताकर इसे चुनौती दी गई। मुख्यत इसके विरोध में यह कहा जा सकता है कि इस व्यवस्था के अंतर्गत नगर निकायों में सेवारत् कर्मचारियों एवम् अधिकारियों की सेवा शर्तें अनेक दृष्टि से उपयुक्त नहीं। साथ ही इन व्यवस्था में पदोन्नति के अवसर लगभग नहीं के बराबर रहते हैं। इस कारण अधिकारियों एवम् कर्मचारियों का मनोबल प्रभावित होता है। जिसका प्रभाव उनकी कार्यकुशलता पर भी पड़ता है। इस प्रकार एक तरफ तो कर्मचारी वर्ग संतुष्ट नहीं हो पाता तथा उसका मनोबल गिरता है वहीं दूसरी ओर नगरपालिकाओं को कुशल प्रशासन नहीं मिल पाता। यह भी कहा जा सकता है कि जब कर्मचारी वर्ग एक ही स्थान पर लम्बे समय तक सेवा में रहते हैं तो उनमें अनेक

प्रकार की बुराईयां भी आ जाती हैं एवम् स्वार्थपरता बढ़ जाती है। प्रशासन कुशल न होने से नगरीय सेवाएँ भी प्रभावित होती हैं। जिससे नागरिक असंतोष बढ़ता है। इन्हीं सब कमियों के कारण भारत के अनेक राज्यों में इस व्यवस्था के विरोध में आम राय बनायी गई तथा इसे समाप्त करने की बात कही गई।

आज की प्रचलित व्यवस्था में नगरीय सेवा वर्ग प्रशासन की भर्ती प्रणाली का अपना महत्त्व है। अनेक राज्यों में जिस प्रकार की भर्ती प्रणाली अपनायी गयी है उसके अधीन अनेक वर्गों के अधिकारी एवम् कर्मचारी चाहे वे तकनीकी सेवा के हों, अथवा सामान्य प्रशासनिक सेवा से सम्बन्धित हों, लम्बी अवधि के सेवाकाल से सम्बन्धित हैं। इस कारण भर्ती की प्रणाली एवम् प्रक्रिया का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। परन्तु नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन की भर्ती व्यवस्था आज भी अनेक समस्याओं से जूझ रही हैं। अनेक राज्यों में लोक सेवा आयोग इस भर्ती प्रक्रिया से सीधे जुड़ा है जिस कारण भर्ती की प्रक्रिया विभागीय प्रशासन के दोषों से जुड़ जाती है। अनेक वर्षों तक भर्ती Adhoc तरीके से की जाती रही है जिसका दुष्प्रभाव नगरीय प्रशासन एवम् सेवी वर्ग प्रशासन पर पड़ा। जहाँ एक तरफ नगर प्रशासन की समस्याएँ जटिल से जटिलतम् होती जा रही हैं वही दूसरी तरफ राज्य सरकारें इन इकाइयों के प्रति उदासीनता का रूख अपनाए हुए हैं। परिणाम स्वरूप नगर से सम्बन्धित सेवाएँ दुष्व्यवस्थित हो रही हैं। उनका प्रबन्ध कुशलतापूर्वक नहीं हो पा रहा है जिसके कारण इन सेवाओं से नागरिक या तो वंचित रहता है या फिर यह सेवाएँ ठीक से उन्हें मिल नहीं पातीं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन की भर्ती प्रणाली को उच्च प्राथमिकता मिले जिससे नगरीय प्रशासन कुशल हो सकें एवम् नागरिकों को सुलभ हो सकें।

नगरीय सेवावर्ग प्रशासन में प्रशिक्षण व्यवस्था

सेवी वर्ग प्रशासन में भर्ती के पश्चात् प्रशिक्षण का सबसे अधिक महत्त्व कहा जा सकता है। एक कुशल प्रशिक्षण व्यवस्था सेवी वर्ग प्रशासन का अभिन्न अंग माना जाता है। क्योंकि इस प्रशिक्षण व्यवस्था के माध्यम से ही नगर निकायों में सेवारत् अधिकारियों एवम् कर्मचारियों की कार्यकुशलता एवम् उनकी उपयोगिता बनाई रखी जा सकती है। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि सेवी वर्ग में केवल कुशल एवम् योग्य कर्मचारियों की भर्ती की जाए बल्कि यह भी सुनिश्चित करना है कि उनकी क्षमता एवम् उनकी उपयोगिता संगठन के लिए बराबर बनी रहे। यह हम केवल एक कुशल प्रशिक्षण व्यवस्था के माध्यम से ही सुनिश्चित कर सकते हैं। यह बात संसार के अनेक देशों में सिद्ध हो चुकी है कि वैज्ञानिक अनुसंधान एवम् प्रशिक्षण के माध्यम से अनेक नगरीय समस्याओं का समाधान हुआ है। उदाहरण के तौर पर अमरीका में National Municipal League तथा International City Management Associations. ने नगरीय शासन से सम्बन्धित शोध एवम् प्रशिक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन संगठनों के माध्यम से अमरीका में अनेक कारगर नगरीय प्रणालियाँ सुझाई गई। इंग्लैंड में National Association of Local Govt. Offices, Oxford तथा Manchester विश्वविद्यालय ने नगर निकायों में कार्यरत् कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था सुनिश्चित की है। जापान में कई दशक पूर्व से ही प्रशिक्षण के लिए अनेक केन्द्रों की स्थापना की गई जिसके अंतर्गत नगर निकायों में सेवारत् कर्मचारी प्रशिक्षित किए जाते हैं।

ऊपर वर्णित प्रशिक्षण की व्यवस्था से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक युग में नगरीय इकाइयों में सेवारत् अधिकारियों एवम् कर्मचारियों की प्रशिक्षण व्यवस्था विश्व में अपना स्थान एवम् महत्त्व स्थापित कर चुकी है। भारत में नगरीय निकायों के कर्मचारियों की प्रशिक्षण व्यवस्था अभी उतनी सुदृढ़ नहीं हो पाई है। सन् 1963 में विशेष रूप से इस प्रशिक्षण व्यवस्था पर एक समिति अपनी संस्तुति प्रस्तुत करती है जिससे नगरीय निकायों में प्रशिक्षण के प्रति एक नयी जागरुकता उत्पन्न होती है। इस समिति ने सिफारिश की कि नगर निकायों में कार्यरत कर्मचारियों के लिए केन्द्र तथा राज्यों के स्तर पर स्थाई प्रशिक्षण संस्थान खोले जायें जो इन कर्मचारियों के प्रशिक्षण सम्बन्धी व्यवस्था सुनिश्चित करें। इसके पश्चात् सन् 1966 में रूरल अरबन रिलेशनशिप कमेटी ने प्रशिक्षण को बहुत ही महत्त्वपूर्ण मानते हुए इस बात की सिफारिश की कि भारत सरकार तथा राज्य सरकारें इस सम्बन्ध में तुरन्त आवश्यक कदम उठायें। इसके फलस्वरूप भारत में चार प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना हुई जो लखनऊ, हैदराबाद, कलकत्ता तथा बम्बई में स्थापित किए गए और केन्द्र के स्तर पर दिल्ली में एक पाँचवें केन्द्र की स्थापना हुई। कलकत्ता केन्द्र अब बन्द कर दिया गया है। इस प्रकार देश के नगर निकायों में कार्यरत् कर्मचारियों के लिए स्थायी संस्थागत प्रशिक्षण की व्यवस्था सन् 1968 से आरम्भ हुई जो किसी–किसी रूप में अभी भी चल रही है।

प्रशिक्षण के विभिन्न प्रकार

प्रशिक्षण मुख्य रूप से हम दो प्रकार का कह सकते हैं। एक तो वह जो सेवा में आने से पूर्व होता है (Pre Entry) और दूसरा वह

जो सेवा में आने के पश्चात् दिया जाता है जिसे हम (Post Entry Training) कहते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विवेचना में यह तथ्य उजागर किया गया कि विकासशील देशों में नगरीय निकायों में ऐसे लोगों को नियुक्त किया गया है जिनके पास किसी भी प्रकार का प्रशिक्षण अनुभव नियुक्ति के समय नहीं था। साथ ही यह भी तथ्य सिद्ध पाया गया कि स्थानीय शासन में अनेक कार्य ऐसे हैं जिसमें विशिष्ट योग्यता एवम् अनुभव की आवश्यकता होती है क्योंकि स्थानीय शासन की अपनी विशिष्टता होती है और समस्याएँ होती हैं जिसके लिए बाहर प्रशिक्षण व्यवस्था का अभाव रहता है। ऐसी स्थिति में प्रशिक्षण का महत्त्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि सेवा के हर स्तर पर प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की जाती है। नगरीय सेवाएँ एक विशिष्ट प्रकार की सेवाएँ होती हैं जो केवल उचित रूप से प्रशिक्षित सेवी वर्ग ही निष्पादित कर सकता है। वह प्रबन्ध से सम्बन्धित हो या तकनीकी विषय से या प्रशासन से सभी प्रशिक्षित सेवी वर्ग की अपेक्षा रखते हैं। भारत में सेवा से पूर्व प्रशिक्षण की व्यवस्था का अभाव कहा जा सकता है। इस कारण सेवा के पश्चात् प्रशिक्षण अथवा सेवारत प्रशिक्षण की विशेष भूमिका हो जाती है। सेवारत प्रशिक्षण के लिए अनेक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई जिसके अंतर्गत देश के विभिन्न नगर निकायों में सेवारत कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए सुविधा उपलब्ध कराई गई।

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं नगर निकायों में अनेक तकनीकी सेवाओं से सम्बद्ध अधिकारी एवम् कर्मचारी कार्यरत् होते हैं। इसके साथ ही अनेक विशिष्ट सेवाओं से सम्बन्धित भी कर्मचारी सेवारत होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न प्रकार की सेवाओं में कार्यरत् कर्मचारियों को उनके कार्यों के अनुरूप ही प्रशिक्षण देना तर्कसंगत है। उदाहरण के तौरपर नगरीय कर प्रणाली, स्वास्थ्य, प्रशासन, सामान्य प्रशासन आदि विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण के द्वारा ही सम्भव है क्योंकि इनकी आवश्यकताएँ भिन्न हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षण संस्थान कई प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन समय–समय पर करते रहते हैं। इनमें से कुछ लम्बी अवधि के होते हैं जो चार सप्ताह से लेकर छः सप्ताह की अवधि तक चलते हैं तथा कुछ छोटी अवधि के कार्यक्रम होते हैं जो लगभग एक सप्ताह के रखे जाते हैं। इस प्रकार कर्मचारियों की सेवा को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षण की आवश्यकता एवम् उसका उद्देश्य निर्धारित करना होता है और इसी कार्यक्रम की अवधि भी निर्धारित होती है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रशिक्षण का काल प्रशिक्षण की आवश्यकता पर निर्भर करता है जो कभी लम्बी या छोटी अवधि का हो सकता है।

ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम जो किसी विशेष विषय एवम् समस्या पर आधारित होते हैं उन्हें कम अवधि का रखना व्यवहारिक समझा जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी कार्य विशेष के सम्बन्ध में कोई प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित होता है तो इसे कम अवधि का ही रखना व्यवहारिक होता है। परन्तु यदि कोई प्रशिक्षण कार्यक्रम सामान्य एवम् विशेष विषयों को मिलाकर बनता है तो उसकी अवधि लम्बी हो जाती है क्योंकि इसमें विषय का विस्तार अधिक होता है जो कम अवधि में पूरा कर पाना कठिन होता है। इसलिए ऐसे कार्यक्रमों को लम्बी अवधि का बनाना ही व्यवहारिक होता है।

प्रशिक्षण का विषय एवम् कार्यकाल आदि बहुत ही सोच समझकर निर्धारित करना होता है। प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाने से पहले यह आवश्यक होता है कि उन क्षेत्रों का पता लगाया जाए जहाँ प्रशिक्षण की कमी महसूस की जा रही है और जहाँ इसकी बहुत आवश्यकता है। इस तरह की क्रिया प्रशिक्षण कार्यक्रमों की उपयोगिता बढ़ाता है और इसे नगर निकाय एवम् कर्मचारीगण गम्भीरतापूर्वक स्वीकार करते हैं। परन्तु यदि कोई कार्यक्रम आवश्यकता को ध्यान में रखकर नहीं बनाया गया तो उसकी उपयोगिता पर संदेह हो जाता है और ऐसी स्थिति में नगर निकाय एवम् प्रशिक्षार्थी इस पूरे कार्यक्रम को गम्भीरता से नहीं लेते हैं। इसलिए प्रशिक्षण से सम्बन्धित संस्थाएँ इस बात का अध्ययन करती हैं कि वह कौन से क्षेत्र हैं जहाँ प्रशिक्षण की आवश्यकता है जिसकी उपयोगिता संदेहात्मक नहीं है और जिसे सेवी वर्ग सुगमता से ग्रहण कर सकते हैं। यह प्रक्रिया ऐसी है जो प्रशिक्षण की नीति, कार्यक्रम आदि सभी को तर्कसंगत, उपयोगी एवम् ग्राह्य बनाती है। इन्हीं सब पर प्रशिक्षण का कार्यकाल विशेष रुचि आदि पूरी तरह निर्भर होती है।

प्रशिक्षण से सम्बन्धित ऊपर वर्णन किए गए प्रशिक्षण के विभिन्न प्रकार का हमने अध्ययन किया। आइए प्रशिक्षण के सम्बन्ध में जो अनेक समस्याएं हैं उनकी चर्चा करें।

प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्याएँ

प्रशिक्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह होता है कि उसको कर्मचारियों एवम् अधिकारियों के पदोन्नति तथा सेवा योजना के विकास से जोड़ा जाना चाहिए। प्रशिक्षण का वास्तविक लाभ कर्मचारियों को दिलाने के लिए इस भावना का विकसित होना आवश्यक है कि प्रशिक्षण उनकी सेवा के लिए तथा सेवा के विकास के लिए आवश्यक है। प्रशिक्षण की उपयोगिता मूल रूप से कर्मचारियों के वैचारिक ग्राह्यता पर निर्भर रहती है। कोई भी प्रशिक्षण कार्यक्रम सफल नहीं हो सकते जब तक कर्मचारी उसकी उपयोगिता से

पूरी तरह संतुष्ट न हो। अतः इसके लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम को नगरीय सेवा में पदोन्नति के कार्यक्रम से जोड़ना आवश्यक है परन्तु सामान्यतः यह देखा गया है कि प्रशिक्षण के पश्चात् कर्मचारियों को पदोन्नति से सम्बन्धित कोई विशेष लाभ नहीं मिलता है। क्योंकि भारत में अभी भी नगरीय सेवा का नियोजन अनेक कमियों से ग्रस्त है। इस कारण विभिन्न राज्यों में प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलाए जाते हैं लेकिन प्रशिक्षण के बाद कर्मचारियों को अपनी सेवा में इस प्रशिक्षण के कारण पदोन्नति में विशेष सहायता नहीं मिलती। इस कारण कर्मचारीगण प्रशिक्षण का पूरा लाभ नगर निकायों को नहीं मिल पाता। आवश्यकता इस बात की है कि प्रशिक्षण को कर्मचारियों के सेवा योजना से सीधे तौर से जोड़ देना चाहिए। इस प्रशिक्षण की उपादेयता एवम् प्रशिक्षार्थी का मनोबल दोनो बढ़ेंगे जिसका सम्मिलित लाभ नगरीय निकायों को मिलेगा।

यह भी देखा गया है कि प्रशिक्षण को बहुत सैद्धान्ति (Theoretical) बनाने से प्रशिक्षण की व्यवहारिकता एवम् उसकी उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। अनेक लोगों ने इस तरह की आलोचना देश में चलाए जा रहे प्रशिक्षण कार्यक्रम के सम्बन्ध में की है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रशिक्षण का कार्यक्रम निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान कम रखा गया कि प्रशिक्षण व्यवहारिकता के नजदीक हो जिससे कर्मचारियों की कार्य संचालन में कुशलता बढ़े। अतः नगरीय प्रशिक्षण के संस्थान प्रशिक्षण के कार्यक्रमों का निर्धारण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि प्रशिक्षण के कार्यक्रम से व्यवहारिक ज्ञान उपलब्ध हो जिससे कर्मचारियों की कार्य क्षमता बढ़े जो उनकी उपयोगिता भी बढ़ाए।

जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं कि प्रशिक्षण को सेवा नियोजन से जोड़ना आवश्यक है। यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि जिन कर्मचारियों को जिस क्षेत्र में प्रशिक्षण दिया जा रहा है उनकी नियुक्ति एवम् पदोन्नति उसी क्षेत्र विशेष में की जानी चाहिए। बहुधा ऐसा देखा गया है कि प्रशिक्षण किसी क्षेत्र का होता है तथा प्रशिक्षण के बाद उनकी नियुक्ति किसी अन्य क्षेत्र में कर दी जाती है। ऐसा करने पर प्रशिक्षण का लाभ न तो नगर निकाय को मिलता है और न ही कर्मचारी को। साथ ही इससे पूरे प्रशिक्षण कार्यक्रम पर एक चिन्ह सा लग जाता है। अतः प्रशिक्षण संस्थानों को शासन से इस सम्बन्ध में पूरा तालमेल रखना चाहिए जिससे प्रशिक्षण का लाभ नगर निकायों को पूर्ण रूप से मिल सके क्योंकि प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर धन व्यय होता है जो कि उचित ढंग से खर्च करना चाहिए वरना यह व्यर्थ हो जाता है।

कभी–कभी यह भी देखने में आता है कि ऐसे कर्मचारी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नामित कर दिए जाते हैं जिनको प्रशिक्षण की या तो आवश्यकता नहीं होती या वह नगर निकायों में ठीक से काम नहीं कर रहे होते हैं। प्रशिक्षण का कार्यक्रम मूल रूप से उसकी आवश्यकता पर निर्भर होता है। परन्तु ऐसे लोग यदि नामित हो जाते हैं तो उसे प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में उनकी उदासीनता रहती है और वे कार्यक्रमों में न तो पूरा सहयोग दे पाते हैं और न ही उसका लाभ उनको मिलता है। ऐसी स्थिति में प्रशिक्षण का कार्यक्रम उपयोगी नहीं रह जाता। अतः इस समस्या को ध्यान में रखते हुए संस्थाओं को यह चाहिए कि वे प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में उसके स्वरूप को देखते हुए केवल ऐसे कर्मचारियों का नामांकन करें जिनसे यह अपेक्षा हो कि वास्तव में प्रशिक्षण से नगर निकायों को लाभ पहुँचेगा। इससे लोगों की प्रतिबद्धता प्रशिक्षण के प्रति बढ़ेगी एवम् प्रशिक्षण कार्यक्रम उपयोगी एवम् सफल हो सकेंगे। अन्यथा प्रशिक्षण पर प्रश्न चिन्ह लग जाएगा।

प्रशिक्षण कार्यक्रमों में कर्मचारियों की रुचि जगाने के लिए कई प्रकार के प्रलोभन दिए जा सकते हैं जिनमें से पदोन्नति एक है। जहाँ पदोन्नति सम्भव नहीं है ऐसी अवस्था में वित्तीय प्रयोजन की बात भी हो सकती है। यदि कर्मचारी यह समझता है कि प्रशिक्षण के बाद उसे कुछ वित्तीय लाभ होने की सम्भावना है तो ऐसी स्थिति में यह प्रशिक्षण में अपनी रुचि दिखा सकता है। इस प्रकार प्रशिक्षण की रुचि पैदा करने के लिए अनेक प्रकार के कार्यक्रम हो सकते हैं जिनके माध्यम से हम इस उद्देश्य की प्राप्ति कर सकते हैं। इसके लिए उचित पदोन्नति की व्यवस्था, वित्तीय सहायता आदि ऐसे कार्यक्रम हैं जिनपर नगर निकाय, संस्थान एवम् राज्य सरकारें विचार कर सकती हैं।

पिछले कुछ दशकों में प्रशिक्षण के जो कार्यक्रम देश में चलाए जा रहे हैं उनका केवल आंशिक लाभ ही देखने को मिलता है। क्योंकि नगर निकायों की कुशलता में गिरावट आई है। सेवाओं का रख–रखाव भी उचित स्तर का नहीं रह गया है तथा इसमें अनेक कमियाँ देखने में आती हैं।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन से आप क्या समझते हैं? इसके कितने प्रकार हैं?
2. नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन में भर्ती की व्याख्या कीजिए।
3. नगरीय सेवी वर्ग प्रशासन में आप प्रशिक्षण से क्या समझते हैं? इसके प्रकार तथा समस्याओं का वर्णन कीजिए।

अध्याय-5

नगरपालिकाओं पर राज्य का नियन्त्रण

(State Control over Municipal Bodies)

विश्व के लगभग सभी देशों में आजकल स्थानीय स्वशासन की पद्धति प्रचलित है। यह स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ अपना कोई पृथक् अस्तित्व नहीं रखती है बल्कि यह केन्द्र अथवा राज्य के नियन्त्रण में कार्य करती है। भारतवर्ष में स्थानीय निकायों पर राज्यों का जो नियंत्रण है वह विस्तृत अर्थ में तीन रूपों में देखने को मिलता है:–

(1) वैधानिक (Legislative)

(2) प्रशासनिक (Administartive)

(3) वित्तिय नियंत्रण (Financial Control)

(4) न्यायिक (Judicial)

राज्य विधानसभाएँ उनसे सम्बन्धित नियमों को बनाकर, उसमें सुधार करके और उन्हें समाप्त करके उन पर नियन्त्रण रखती है। इन नियमों की व्याख्या करके तथा इन नियमों की वैधता निश्चित करके न्यायपालिका इन पर नियन्त्रण रखती है। राज्य सरकार द्वारा स्थानीय प्रशासन पर नियन्त्रण की व्याख्या निम्न प्रकार से की जाती है।

वैधानिक नियन्त्रण
(Legislative Control)

स्थानीय सरकारों के सम्बन्ध में उपनियम बनाने की पूर्ण शक्ति राज्यों की विधानसभाओं के पास होती है। अधिक स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जहाँ तक स्थानीय प्रशासन का संबंध है विभिन्न स्थानीय संस्थाओं की शक्तियों और संरचना के संबंध में नियम राज्य सरकारें बनाती है। भारत के विभिन्न प्रान्तों की प्रान्तीय सभाओं को स्थानीय संस्थाओं को स्थापित करने का अधिकार दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं पर वैधानिक नियन्त्रण की बुनियादी आवश्यकता है और यह दीर्घकालीन प्रभाव रखती है। आम तौर पर राज्य विधानसभाएँ स्थानीय संस्थाओं पर निम्नलिखित तरीके से नियन्त्रण रखती हैं:–

(i) **कानून बनाकर (Enacting Legislation)** – यह सत्य है कि म्युनिसिपल संस्थाओं का अस्तित्व राज्य सरकारों की उस इच्छा पर निर्भर करता है जो विधानसभा के लिखित कानूनों में स्पष्ट होती है। प्रान्तीय विधान, प्रान्तीय सरकारों को ऐसी सामान्य शक्तियाँ प्रदान करती है ताकि ऐसे नियम एवं विनियम बनाए जा सकें, जिनसे स्थानीय नागरिक संस्थाओं को नियमित किया जा सके और उन पर नियन्त्रण रखा जा सके।

(ii) **विधान में संशोधन करने की शक्ति (Power to Amend Statute)** – राज्य सरकारें नगरपालिका निकायों की शक्ति, कार्यों और कार्यक्षेत्र को बढ़ा भी सकती है और सीमित भी कर सकती हैं। यदि राज्य विधानसभा का सत्र न चल रहा हो तो सम्बन्धित राज्य का राज्यपाल एक अध्यादेश द्वारा ऐसा कर सकता है। प्रत्येक राज्य में राज्यसभाओं ने काफी मात्रा में सुधार सम्बन्धी कानून पास किए हैं।

(iii) **स्थानीय निकायों की कार्यप्रणाली पर चर्चा तथा समितियां नियुक्त करके (By Debating the Functioning of Local Bodies and Appointing Committees)** – शहरी स्थानीय निकायों की कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में किसी भी विषय पर राज्य विधानसभा में चर्चा की जा सकती है। स्थानीय सरकारों के आय व्यय के ऊपर विधानसभा में चर्चा की जाती है। विधानसभा नगरपालिका निकायों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकती है, चुनाव, प्रशासकों की नियुक्तियों तथा नगर निगम के सामान्य प्रशासन के संबंध में प्रश्न कर सकती है। इसी प्रकार विधानसभा तथा मन्त्रिमण्डल स्थानीय सरकार से सम्बन्धित किसी भी विषय पर समितियाँ नियुक्त कर सकती है।

(iv) **राज्य सरकार द्वारा नियम बनाने की शक्ति पर नियन्त्रण (State Government's Control over Rule Making Power *of the Municipal Body*)** – सामान्य स्थिति में राज्य विधानसभा द्वारा राज्य सरकारों को नियम बनाने के अधिकार दिए जाते हैं। यह शक्ति प्राय नियमों को अस्वीकार करने या उनका अनुमोदन करने के रूप में होती है। ऐसे नियमों को राज्य की विधानसभा के सामने नियम बनाए जाने के कम से कम 14 दिन के भीतर प्रस्तुत करना होता है।

(v) **सरकार द्वारा जारी किए गए आदेशों का अनुमोदन करके (By Approving Orders Issued by the Government)** – नगरपालिका सम्बन्धी कुछ नियम ऐसे हैं जो राज्य सरकारों की कुछ शक्तियों के प्रयोग को नियन्त्रित करते हैं। उदाहरण स्वरूप यदि राज्य सरकार महापालिका के स्थगन (Supression) अथवा नगरपालिका संस्था के विघटन के संबंध में कोई आज्ञा जारी करती है, तब उक्त नियम की प्रतिलिपि राज्य विधानसभा के सम्मुख विचारार्थ रखनी होती है।

प्रशासनिक नियन्त्रण
(Administrative Control)

प्रशासनिक नियन्त्रण में राज्य सरकार की वे शक्तियाँ तथा साधन आते हैं जिनकी सहायता से नियन्त्रक एजेंसियाँ स्थानीय सरकार सम्बन्धी संस्थाओं के प्रतिदिन के प्रशासन एवं नीतियों को नियन्त्रण में रखती है। प्रशासनिक नियन्त्रण के कुछ प्रमुख साँझे प्रावधान हैं जिनकी सहायता से स्थानीय संस्थाओं पर नियन्त्रण किया जाता है –

(i) **नगरपालिका निकायों का स्थगन तथा विघटन (Suppression and dissolution of Municipal Bodies)** – सभी राज्यों में स्थानीय निकायों को अपना सामान्य कार्यकाल पूरा करने से पूर्व ही स्थगन अथवा विघटन के माध्यम से उन पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखने की वैधानिक शक्ति राज्य सरकारों के पास है।

ऐसे गम्भीर पग उठाने की आवश्यकता उस समय होती है जब नगरपालिका निकाय द्वारा कोई गम्भीर गलती हो गई हो, सत्ता का दुरुपयोग किया गया हो अथवा वह कार्य संचालन में असमर्थ प्रमाणित हो गई हो। विघटन के परिणामस्वरूप तत्काल पुनः चुनाव के लिए आदेश दे दिए जाते हैं जबकि स्थगन की स्थिति में नगरपालिका/नगर निगम का प्रशासन राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक प्रशासक को सौंप दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप पंजाब में नगरपालिका समिति का स्थगन तब होता है:–

(क) जब समिति निर्धारित नियमों के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो जाती है।

(ख) जब यह समिति अपने कर्त्तव्य का सम्पादन करने में निरन्तर गलतियाँ करती जाती है तथा

(ग) जब यह अपनी शक्ति का दुरुपयोग अथवा अतिक्रमण करती है।

(ii) **सदस्यों का निष्कासन अथवा निलम्बन (Suspension/Removal of Members)** – प्रशासनिक नियन्त्रण का यह एक महत्त्वपूर्ण साधन है। सभी राज्यों के नियन्त्रक नियमों में इस प्रकार के नियन्त्रण का प्रावधान है। परन्तु सभी राज्यों में सदस्यों के निष्कासन/निलम्बन सम्बन्धी निर्देश देने की सामर्थ्य रखनेवाले अधिकारी, निष्कासन/निलम्बन के लिए कारण तथा निष्कासन/निलम्बन की विधि भिन्न–भिन्न है। स्थानीय संस्थाओं में सदस्यों के निष्कासन की शक्ति का नियन्त्रण सत्ता के पास होने का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करना इन संस्थाओं सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन करता है। स्थानीय निकायों के किसी पदाधिकारी अथवा सामान्य सदस्य को निष्कासित करने के सर्व–सामान्य आधार ये हो सकते हैं:–

(क) नियन्त्रक नियमों और उपनियमों के प्रावधानों का जान–बूझ कर उल्लंघन करता है।

(ख) उन्हें दी गई शक्तियों का दुरुपयोग अथवा अतिक्रमण करता है।

(ग) जान–बूझ कर किए गए दुर्व्यवहार, कर्त्तव्य–पालन न करने का अथवा कर्त्तव्य–पालन करने में बार–बार असफल होने का दोषी पाया जाता है।

(घ) बैठकों में निरन्तर अनुपस्थित रहता है।

(ङ) चुनाव सम्बन्धी अपराध अथवा नैतिक अधमता का अपराधी घोषित किया गया है, इत्यादि।

(iii) **नियम, उपनियम और विनियम बनाने की शक्ति (Power to Make Rules and Frame Bye-laws and Regulations)** – इस देश की नगरपालिकाओं सम्बन्धी विभिन्न नियमों के आधार पर राज्य सरकारों को नियम निर्माण सम्बन्धी भारी शक्तियाँ दी गई हैं। नगरपालिका सम्बन्धी विधान उपनियमों, नियमों और विनियमों से भरे पड़े हैं। स्थानीय निकायों को स्वतन्त्रता है कि वे सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुरूप नियम बना सकते हैं। परन्तु इनके लागू होने से पूर्व राज्य सरकार द्वारा इनकी स्वीकृति आवश्यक है।

(iv) **निरीक्षण और दौरे (Inspection and Tours)** – निगरानी और नियन्त्रण का एक सर्वाधिक प्रचलित साधन आवर्ती (Perodic) निरीक्षण और दौरे हैं। इनका प्रमुख लक्ष्य यह देखना होता है कि जो नियम, उपनियम और विनियम प्रचलित हैं उनका सन्तोषजनक ढंग से पालन किया जाता है अथवा नहीं। यह कार्य उनके दस्तावेजों, नगरपालिका निकायों की कार्यवाहियों, उनकी अचल सम्पत्ति तथा कोई अन्य सूचना प्राप्त करके इस विधि द्वारा नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। कुछ राज्यों में स्थानीय निकायों को पूर्ण विकसित निदेशालय स्थापित किए गए हैं। इन संस्थाओं का निरीक्षण इस संबंध में सरकार द्वारा नियुक्त किए गए अधिकारी द्वारा किया जाता है। शेष राज्यों में नगरीय स्थानीय निकायों का निदेशक इस कार्य का सम्पादन करता है।

(v) **वार्षिक विवरणी तथा अन्य सूचनाएँ (Annual Returns and Other Information)** – राज्य सरकार प्रायः विवरणियों तथा प्रस्तावों की माँग करती है। इनमें से कुछ आवर्ती होती हैं। स्थानीय निकाय उन्हें भेजने के लिए बाध्य हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी रिपोर्टें भी होती हैं जिनका सम्बन्ध अनुदान और ऋणों के उपयोग से होता है। इनके आधार पर स्थानीय निकायों को अनुदान और ऋण आदि उपलब्ध होते हैं। इनमें से कुछ विवरणियां विभिन्न आँकड़े और अन्य महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए सामान्य रूप में प्रायः भेजी जाती हैं। आज कल भेजी जानेवाली विवरणियो की संख्या काफी बढ़ गई है।

(vi) **अधिकारियों की नियुक्ति और कार्यपालिका अधिकारियों की सेवा-शर्तें निश्चित करने की शक्ति (Appointment of Officers and Power to Determine Service Conditions of Municipal Officers)** – लगभग सभी उच्च और मध्यस्तरीय नियुक्तियाँ सरकार द्वारा की जाती हैं। प्रत्येक प्रान्त में इस नियुक्ति की प्रथा का भेद अवश्य हैं, परन्तु सभी प्रान्तीय सरकारों के पास नियुक्ति की शक्ति है। उत्तर प्रदेश की नगरपालिकाओं और नगर निगमों में उत्तर प्रदश महापालिका अधिनियम 1959 के अनुसार महापालिका को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने कार्यक्रमों के सन्दर्भ में एक या अधिक पद पैदा कर सकती है। ये पद उपनगर अधिकारी, सहायक नगर अधिकारी तथा ऐसे अन्य अधिकारियों, कार्यकर्ताओं एवं अन्य सेवकों के स्थान उत्पन्न कर सकती है जो प्रशासन कार्य को सफलतापूर्वक चलाने में सहायक हों। इसी प्रकार राज्य सरकार नगरपालिका के अधिकारियों की सेवा शर्तें निश्चित करके नगर निगमों/परिषदों के भीतरी प्रशासन एवं प्रभावात्मक ढंग से हस्तक्षेप करती हैं।

(vii) **निर्देशन के लिए आदेश (To Issue Orders for Guidance)** – राज्य सरकारों को यह अधिकार प्राप्त है कि वह समय–समय पर समरूपता तथा निर्देशन के लिए आदेश देने के भी अधिकारी हैं।

वित्तीय नियन्त्रण
(Financial Control)

वित्तीय नियन्त्रण और परिनिरीक्षण स्थानीय निकायों पर नियन्त्रण रखने का एक बहुत ही प्रभावशाली साधन है। लगभग सारे देश में इस प्रकार के नियन्त्रण की समरूपता है। वित्तीय नियन्त्रण और परिनिरीक्षण का सम्बन्ध वित्तीय शक्ति, नगरपालिका निधि और व्यय को नियमित करने, कराधान, बजट के हिसाब–किताब और जाँच–पड़ताल तथा ऋणों से है। वे वित्तीय साधन जिनके आधार पर राज्यों का स्थानीय नगर निकायों पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है] नीचे दिए गए हैं:–

(i) **नगरपालिका कोष और व्यय पर नियन्त्रण (Control over Municipal Funds and Expenditure)** – यह राज्य सरकारों का कर्त्तव्य है कि वे नगरपालिका कोष के उपयोग के संबंध में और कुछ धनराशि तथा योजनाएँ बनाने और

उन पर व्यय का अनुमान लगाने को नियमन करने के लिए कुछ नियम बनाएँ। संघीय संस्था होने के कारण कुछ प्राथमिकताओं का पालन करते हुए निश्चित क्षेत्र के अन्दर कार्य करना होता है। इसके अतिरिक्त यह कोई भी वैध व्यय कर सकती है, परन्तु इसके लिए राज्य सरकार की पूर्व अनुमति लेनी होती है। इसी प्रकार कुछ विधानों के अनुसार राज्य सरकार ऐसे अधिकारियों को नियुक्त करती है जिनके आदेशों से नगरपालिका के लिए धन राशि नगरपालिका कोष से निकलवाई जा सकती है।

(ii) **कराधान सम्बन्धी नियम और अधिनियम बनाने की राज्य सरकारों की शक्ति (Power of State Government to Make Rules and Regulations)** – नगरपालिका द्वारा लगाए जानेवाले करों का निश्चय राज्य सरकारें करती हैं। उदाहरणस्वरूप उत्तर प्रदेश में उत्तर प्रदेश *महापालिका अधिनियम 1959* की धारा 172 के अधीन सरकार से अनुमति लेकर नगरपालिकाओं द्वारा कर लगाए जा सकते हैं। कर लगाने सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान केवल उन करों के सम्बन्ध में है जिनका उल्लेख उक्त धारा में किया गया है। राज्य सरकारें महापालिका कराधान सम्बन्धी अध्याय (विभाग) में दिए गए प्रावधानों के संबंध में भी नियम बना सकती है।

(iii) **स्थानीय निकायों की ऋण प्राप्त करने की शक्ति सरकार के नियन्त्रण में (Borrowing Powers of Local Bodies are subject to Government Control)** – विभिन्न राज्यों में नगर निगमों/परिषद् को कोई धन राशि प्राप्त करने के लिए जिसकी नियम में दिए गए किसी काम को पूरा करने के लिए आवश्यकता हो, किसी ऋण के भुगतान के लिए, ऋण लेने पुनः ऋण लेने तथा ऋण पत्र (debentures) जारी करने के लिए सरकार की पूर्व आज्ञा जरूरी है। ऋण चाहे सरकारी हो अथवा गैर सरकारी, ऋण लेते समय सरकार की पूर्वाज्ञा की आवश्यकता है।

(iv) **अनुदान (Grants-in-Aid)** – भारत में नगरपालिका निकायों पर वित्तीय नियन्त्रण रखने के लिए अनुदान एक महत्त्वपूर्ण शस्त्र है। जैसा कि हम अच्छी प्रकार जानते हैं कि नगरपालिकाओं की वित्तीय दशा सामान्यतया अच्छी नहीं। इसका कारण यह है कि अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए तथा विकास कार्य करने के लिए उनके पास उपलब्ध धनराशि बहुत ही कम है। वास्तव में उन्हें राज्य सरकार के अनुदान पर निर्भर करना पड़ता है। इस प्रकार नगरपालिका निकायों/परिषदों पर नियन्त्रण बनाए रखने के लिए अनुदान एक महत्त्वपूर्ण शस्त्र प्रमाणित होते हैं। राज्य सरकारों को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वे अनुदानों को रोक सकती है, इस तथ्य की जाँच कर सकती है, अनुदानों का समुचित उपयोग हुआ है अथवा नहीं वे इस बात की भी पड़ताल कर सकते हैं कि सदस्यों अथवा अधिकारियों ने इस अनुदान का निपुणता से तथा मितव्ययिता से उपयोग किया है अथवा नहीं।

(v) **बजट (आय व्यय) के माध्यम से नियन्त्रण (Control through Budget)** – प्रत्येक नगर निगम/परिषद् को वार्षिक आय–व्यय तैयार करना होता है। उदाहरणस्वरूप पंजाब, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में आय–व्यय अनुमान के लिए सरकार की स्वीकृति आवश्यक है। इस सन्दर्भ में सरकारी नियन्त्रण बड़ा कड़ा है। आय–व्यय प्रस्तावों को सरकार कम अधिक या परिवर्तित कर सकती है।

(vi) ***लेखा-जाँच द्वारा नियन्त्रण (Control through Audit)*** – नगरपालिका निकायों के वित्त पर नियन्त्रण रखने का भी यह एक महत्त्वपूर्ण साधन है। लेखा–जाँच के माध्यम से नियन्त्रण रखने का मुख्य लक्ष्य यह जानना है कि सार्वजनिक निकायों द्वारा सार्वजनिक धन का उपयोग ठीक ढंग से किया गया है अथवा नहीं। उसे यह भी देखना है कि आय–व्यय में दी गई मदों पर तथा अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही धन–राशि का व्यय किया गया है।

इस प्रकार उपरलिखित विवरण से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि स्थानीय निकायों द्वारा वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकारों पर अत्यधिक निर्भर रहना पड़ता है जिससे उन पर सरकार का अत्यधिक नियन्त्रण हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप इन संस्थाओं की स्वायत्तता कम होती जा रही है।

न्यायिक नियन्त्रण
(Judicial Control)

अन्य व्यावसायिक संस्थाओं की तरह नगरपालिका निकायों पर मुकद्दमें होते भी हैं और वे मुकद्दमें करते भी हैं परन्तु उनके वैधानिक

कर्त्तव्य होने के कारण उन्हें कानून कार्यों से कुछ सीमा तक छूट भी है। यह छूट अन्य व्यावसायिक संस्थाओं को नहीं। नगरपालिका निकायों पर न्यायालयों का नियन्त्रण प्रमुखतया तीन प्रकार का है:–

(i) न्यायालय नियमों और विधियों की व्याख्या करता है और कानून का स्पष्टीकरण करता है।

(ii) न्यायालय नगरपालिका अधिकारियों को कानून–विरुद्ध काम करने से रोकता है; तथा

(iii) न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त है कि वह नगरपालिका नियमाधीन नगरपालिका कार्यों और प्रशासन के संबंध में अपीलें सुनें। प्रायः निम्नलिखित अवसरों पर न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता रहती है :–

(क) जब किसी कानून की व्याख्या अथवा नगरपालिका के किसी कार्य का न्यायिक औचित्य विचाराधीन हो;

(ख) जब नगरपालिका अधिकारी अपने कर्त्तव्यों का उल्लंघन करते हों;

(ग) जब नगरपालिका अधिकारी न्यायालयों के अपीलीय क्षेत्र के अधीन काम कर रहे हों;

(घ) जब नगरपालिका अधिकारी नागरिकों के प्रति अन्याय करने के अथवा नागरिक के साथ व्यक्तिगत रूप में व्यवहार करते हुए शर्तों को भंग करने के अपराधी हों।

जिलाधीश द्वारा नियन्त्रण
(Control by Deputy Commissioner)

जिले का जिलाधीश स्थानीय सरकार व राज्य सरकार का महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है। पूरे जिले का प्रशासन जिलाधीश के इर्द–गिर्द ही घूमता है। वह नगरपालिका की अचल सम्पत्ति, उसकी किसी परियोजना का निरीक्षण कर सकता है। नगरपालिकाएँ अपने कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट जिलाधीश के माध्यम से ही राज्य सरकार को भेजती हैं। अचल सम्पत्ति सम्बन्धी नगरपालिका कोई भी निर्णय जिलाधीश की पूर्व सहमति से नहीं ले सकती है। आपातकालीन स्थिति के समय वह नगरपालिका के किसी भी कार्य को स्वय ही सम्पन्न करवा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)– इन सभी बातों से पता चलता है कि शहरी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं पर राज्य सरकार का काफी नियन्त्रण तथा प्रभाव है। वे सरकार की इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं कर सकती है। अंग्रेजों के समय तो नगरपालिकाओं पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण रहता था, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यह नियन्त्रण बहुत कम कर दिया गया है। यह आशा की जाती है कि सरकार इन संस्थाओं को अधीनस्थ सरकारी अंग न मानकर प्रशासन के मामले में उनमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए बल्कि उनका पथ प्रदर्शन करना चाहिए। यदि नगरपालिकाओं को अच्छी प्रकार से शासन चलाने तथा उन्हें स्वायत्त शासन की संस्था के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से सरकारी नियन्त्रण के अधिकारों का प्रयोग किया जाए तो यह बड़ी लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. नगरपालिकाओं पर राज्य सरकार किस प्रकार नियन्त्रण रखती है ?
2. नगरपालिकाओं पर राज्य सरकार द्वारा वैधानिक तथा प्रशासनिक नियन्त्रण की व्याख्या कीजिए।

अध्याय-6

राज्य विभाग और नगरपालिका निकायों का निदेशालय तथा शहरी विकास मन्त्रालय

(State Department and Directorate of Urban

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अपनाया गया है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए स्थानीय स्तर पर भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की गई है। सरकार की सफलता उसके बढ़िया और सुचारु स्थानीय–शासन पर निर्भर करती है। भारत में स्थानीय स्वशासन का विकास 1882 में लॉर्ड रिपन के कार्यकाल में आरम्भ हुआ। परन्तु आरम्भ में इसे कोई महत्त्व नहीं दिया गया था। परन्तु मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड की सिफारिशों के आधार पर 16 मई, 1918 को ब्रिटिश सरकार ने भारत में स्थानीय शासन विभाग की स्थापना करने की घोषणा कर दी। इस घोषणा के अन्तर्गत शीघ्र ही भारत के सभी राज्यों में स्थानीय शासन विभाग की स्थापना कर दी गई।

26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू किया गया और स्थानीय संस्थाओं से सम्बन्धित विषय, राज्य–सूची में शामिल किया गया। धारा 246 द्वारा राज्य सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह स्थानीय शासन की संस्थाओं के विषय में कोई भी कानून बना सकती है। इस संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ राज्यों ने अलग से स्थानीय शासन विभाग की स्थापना की और कुछ राज्यों ने स्थानीय शासन विभाग को किसी अन्य विभाग के साथ मिला दिया है। उदाहरणस्वरूप महाराष्ट्र राज्य में स्थानीय शासन विभाग को नगर विकास, जन स्वास्थ्य एवं आवास को एक ही विभाग में शामिल किया गया है। आन्ध्र प्रदेश में भी स्थानीय शासन विभाग जन स्वास्थ्य, आवास एवं स्थानीय शासन का एक ही विभाग है। परन्तु हरियाणा, पंजाब, राजस्थान आदि राज्यों में स्थानीय शासन के लिए एक पृथक् विभाग की व्यवस्था की गई है। राज्य का स्थानीय शासन का विभाग मुख्यतः नगरपालिकाओं के लिए और सामान्यतः स्थानीय शासन की सभी निकायों के लिए निर्देशन तथा आज्ञाएँ जारी करके नियन्त्रण रखता है।

संगठन (Organisation) – जिन राज्यों में स्थानीय शासन विभाग की अलग से व्यवस्था की गई है उन राज्यों में सरकार नगरपालिकाओं के कार्यों पर नियन्त्रण रखने के लिए निम्न प्रशासनिक ढाँचा अपनाती है–

उपर्युक्त संगठनात्मक ढाँचा स्थानीय शासन विभाग का है। यह ढाँचा नगरपालिकाओं के कार्यों पर प्रत्येक पक्ष से निगरानी करता है। नगरीय प्रशासन की स्थानीय निकायों पर प्रशासनिक नियन्त्रण राज्य सरकार के माध्यम से रखा जाता है। इस पर निदेशालय व जिलाधीश अपना नियन्त्रण रखते हैं। विस्तार से स्थानीय शासन विभाग का वर्णन निम्नलिखित है–

1. **स्थानीय शासन मंत्री (Local Government Minister)** - भारत में लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अपनाया गया है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रत्येक विभाग की व्यवस्था किसी न किसी मंत्री के अधीन अवश्य की जाती है। इस विभाग का राजनीतिक प्रमुख एक मंत्री होता है। भारत के सभी राज्यों में स्थानीय शासन से सम्बन्धित पृथक् विभाग की व्यवस्था न होने के कारण इस विभाग को कुछ अन्य विभागों के साथ मिला भी दिया जाता है। परन्तु हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार आदि में इसे स्वतंत्र विभाग का दर्जा दिया गया है जो स्थानीय शासन के मामलों के प्रति उत्तरदायी हैं। मंत्री अपने विभाग के सम्बन्ध में कोई भी सूचना सचिव से प्राप्त कर सकता है।

2. **सचिव (Secretary)** - प्रत्येक विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष एक सचिव होता है। सचिव के पद पर प्रायः सरकार भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के वरिष्ठ अधिकारियों को ही नियुक्त करती है। स्थानीय शासन के प्रत्येक प्रशासकीय कार्य के लिए सचिव उत्तरदायी है। सभी प्रशासकीय कार्य जो कि स्थानीय शासन विभाग से सम्बन्धित हैं, सचिव के नाम से जारी किए जाते हैं। कार्यों की अधिकता होने के कारण वह अपने कार्यों को अपने अधीनस्थ सचिव को सौंप सकता है।

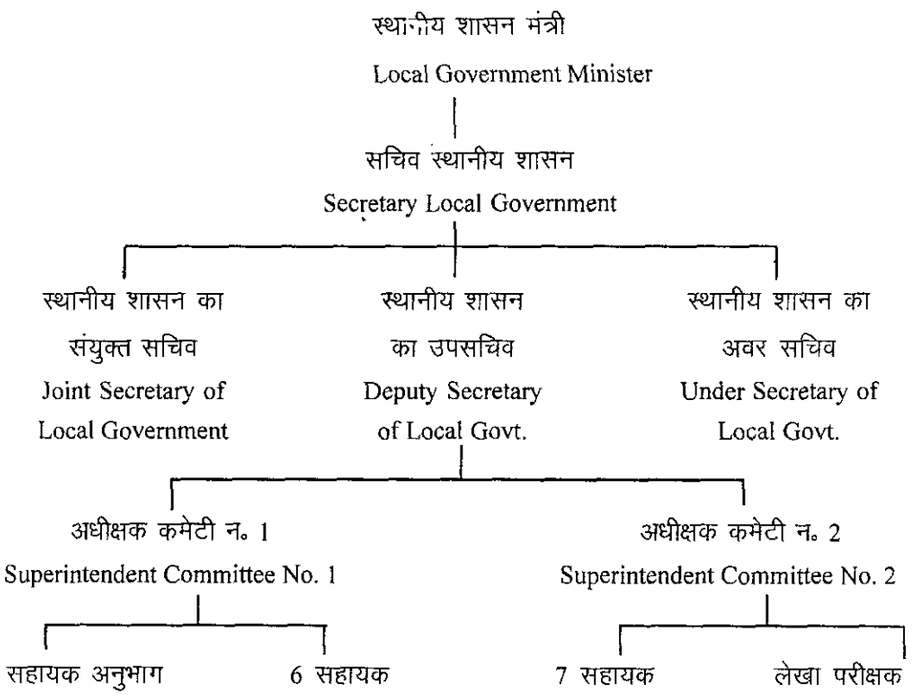

3. **संयुक्त सचिव (Joint Secretary)**- कार्यों की अधिकता होने के कारण विभागीय सचिव अपने कार्यों को अपने अधीनस्थ सचिव को सौंप सकता है जिसे संयुक्त सचिव (Joint Secretary) कहा जाता है। इस पद पर भी वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। यह अपने विभागों के सभी प्रशासकीय कार्यों को सम्पन्न करता है।

4. **उप-सचिव (Deputy Secretary)** - उप–सचिव की नियुक्ति संयुक्त सचिव के कार्यों में मदद करने के लिए की जाती है। पंजाब सरकार में स्थानीय शासन विभाग में उप–सचिव के पद की व्यवस्था की गई है। यह अधिकारी अपने विभाग के कार्यों के अतिरिक्त स्थानीय शासन के संयुक्त निदेशक के कार्यों की भी देख–रेख करता है। यह अधिकारी अपने कार्य वरिष्ठ अधिकारियों से प्राप्त शक्तियों के द्वारा करता है।

5. **अवर-सचिव (Under Secretary)** - यह अधिकारी सचिवालय अधिकारियों में से नियुक्त किए जाते हैं। अपने कार्यों को निपटाने के लिए शक्तियाँ यह सचिव स्थानीय शासन से प्राप्त करते हैं। यह सचिवालय का अधिकारी होने के नाते सरकारी कार्यों की भी देखभाल करता है। यह भारत सरकार के साथ पत्रव्यवहार करता है।

6. **अन्य अधिकारी (Others Official)** - उपर्युक्त वर्णित, मंत्री सचिव, संयुक्त सचिव, उप–सचिव, अवर–सचिव के अतिरिक्त स्थानीय शासन में कुछ अन्य अधिकारी भी होते हैं, इनमें 2 अधीक्षक, 14 सहायक, 5 टंकक (Steno), एक आँकड़ा सहायक, एक जूनियर ऑडिटर और 8 लिपिक होते हैं। इनके कार्य निश्चित होते हैं। यह अधिकारी स्थानीय शासन विभाग के स्थायी अंग हैं।

राज्य स्थानीय शासन विभाग के कार्य
(Functions of the State Department)

प्रत्येक राज्य सरकार अपने स्थानीय शासन सम्बन्धी कार्य अपने स्थानीय शासन विभाग के माध्यम से ही पूरी करती है। हरियाणा राज्य का स्थानीय शासन विभाग नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित कार्य करता है–

1. **नगरपालिकाओं को प्रशासन सम्बन्धी निर्देश देना**- स्थानीय शासन विभाग को नगरपालिकाओं के प्रशासन में एकरूपता, कार्यकुशलता लाने के लिए निर्देश देने की शक्ति प्राप्त है। राज्य सरकार समय–समय पर विभाग के माध्यम से इस तरह के आदेश जारी करती रहती है।

2. **नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में नियम, उपनियम और विनियम बनाने की शक्ति-** स्थानीय शासन विभाग के पास नगरपालिकाओं के लिए नियम, विनियम और उपनियम बनाने का अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा स्थानीय शासन विभाग के पास नगरपालिका की संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्तावों में संशोधन करने की शक्ति भी है।

3. **वार्डों की सीमा निर्धारण की शक्ति-** नगरपालिका समितियों व परिषद् के पास वार्डों का पुनर्गठन करने की शक्ति है परन्तु वह इस मामले में राज्य के स्थानीय शासन विभाग द्वारा निर्धारित सीमा व निर्देशन से ही कार्य करती है। हरियाणा में अगस्त, 1994 में वार्डों का पुनर्गठन किया गया था।

4. **सदस्यों की संख्या निर्धारित करना-** राज्य के स्थानीय शासन विभाग के पास नगरपालिका के सदस्यों की संख्या निर्धारित करने की शक्ति होती है। अगस्त, 1994 में हरियाणा के स्थानीय शासन विभाग ने नगरपालिकाओं के सदस्यों का पुनः निर्धारण किया। इस कानून के द्वारा 10,000 से कम जनसंख्यावाले नगर से 11 सदस्य, 20,000 से कम जनसंख्यावाले नगर से 13 सदस्य व एक लाख से पाँच लाख के मध्य की जनसंख्यावाली नगरपालिका से 31 सदस्यों के चुने जाने का प्रावधान किया गया है।

5. **नगरपालिकाओं के सदस्यों का निलम्बन और निष्कासन-** स्थानीय शासन विभाग को नगरपालिकाओं के सदस्यों के निलम्बन और पदच्युति का अधिकार प्राप्त है। विभाग ऐसे सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकता है जो कि नगरपालिकाओं की बैठकों में निरन्तर अनुपस्थित रहता हो या अपनी शक्तियों और पद का दुरुपयोग करता हो। सदस्य को हटाते समय विभाग नगरपालिका के प्रधान व संस्था से उचित परामर्श ले सकती है।

6. **अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का निलम्बन और निष्कासन**– वैसे तो नगरपालिका के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष को नगरपालिका के सदस्यों द्वारा हटाया जाता है, परन्तु विशेष परिस्थितियों में स्थानीय शासन विभाग भी नगरपालिकाध्यक्ष व उपाध्यक्ष को हटा सकता है। यह नगरपालिकाध्यक्ष या उपाध्यक्ष को अपने पद के दुरुपयोग व कदाचार के आरोप में अपने पद से निलम्बित और निष्कासित कर सकता है।

7. **नगरपालिकाओं के स्थायी सदस्यों का निलम्बन** – राज्य का स्थानीय शासन विभाग नगरपालिकाओं में कार्यरत सरकारी कर्मचारियों द्वारा उनके पद का दुरुपयोग करने पर उन्हें निलम्बित कर सकता है।

8. **नगरपालिकाओं के कार्यों सम्बन्धी रिपोर्ट प्राप्त करने का अधिकार** – नगरपालिकाएं अपने कार्यों व उपलब्धियों की वार्षिक रिपोर्ट स्थानीय शासन विभाग के पास भेजती हैं। इन रिपोर्टों के अतिरिक्त राज्य का स्थानीय शासन विभाग नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में और भी कई तरह की रिपोर्टें प्राप्त कर सकता है।

9. **नगरपालिकाओं के कार्यों की जाँच करना** – राज्य स्थानीय शासन विभाग के पास नगरपालिकाओं के कार्यों की जाँच–पड़ताल करने का भी अधिकार है। विभाग नगरपालिकाओं के कार्यों की जाँच पड़ताल के लिए कोई भी समिति गठित कर सकता है जो कि राज्य की सभी नगरपालिकाओं या कुछ नगरपालिकाओं के कार्यों की जांच–पड़ताल करती है।

10. **नगरपालिकाओं के वित्त पर नियन्त्रण-** राज्य स्थानीय शासन विभाग, नगरपालिकाओं की फिजूलखर्ची व वित्त पर नियन्त्रण रखता है। वह नगरपालिकाओं द्वारा किसी परियोजना या विकास कार्यों पर खर्च की गई धन–राशि की जांच आदि कर सकता है।

11. **नगरपालिकाओं के कार्यकाल को निर्धारित करना** – राज्य स्थानीय शासन विभाग अपने राज्य की नगरपालिकाओं की अवधि निर्धारित करता है। 74वें संशोधन से पूर्व सभी राज्यों के स्थानीय शासन विभाग अपने–अपने राज्य के नगरपालिकाओं के कार्यकाल अलग–अलग निर्धारित कर सकते थे, परन्तु वर्तमान समय में 74वां संवैधानिक संशोधन पास होने के बाद सभी राज्यों में नगरपालिकाओं के लिए पाँच वर्ष का कार्यकाल निर्धारित कर दिया गया है।

12. **नगरपालिकाओं को भंग करने की शक्ति** – 74वें संवैधानिक संशोधन द्वारा नगरपालिकाओं की अवधि यद्यपि पाँच वर्ष निश्चित कर दी गई है, परन्तु यदि नगरपालिकाएँ अपने कार्यों से विमुख होकर अनियमितताएँ करती हैं तो राज्य स्थानीय शासन विभाग की सिफारिश पर राज्य सरकार नगरपालिकाओं को समय से पूर्व भी भंग कर सकती है। मार्च, 1994 में हरियाणा सरकार ने अपने राज्य की सभी नगरपालिकाओं को भंग कर दिया था।

नगरपालिका निकायों का निदेशालय
(Directorate of Municipal Bodies)

भारत में स्वतन्त्रता से पूर्व ही स्थानीय निकायों के लिए अलग से विभाग और निदेशालय की आवश्यकता का अनुभव किया गया था। स्थानीय शासन को राज्य में सन्तोषजनक राज्य चलाने का आधार माना जाता है। भारत में स्थानीय स्वशासन का विभाग 1882 से आरम्भ हुआ और 16 मई, 1918 में भारत सरकार द्वारा एक प्रस्ताव पास किया गया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में स्थानीय शासन विभाग और निदेशालय की स्थापना के लिए प्रस्ताव स्वीकार किया गया। 1938 में गठित स्थानीय स्व–शासन समिति न जॉच के दौरान पाया कि जिलाधीश व खण्ड–आयुक्त के पास कार्य की अधिकता होने के कारण वह कम से कम रुचि ले रहे हैं। अतः समिति ने सिफारिश की कि स्थानीय निकायों के निरीक्षण, परीक्षण और निर्देशन के लिए ऐसी संस्था की आवश्यकता है जो जिलाधीश और खण्ड–आयुक्त के अधीन नहीं दी जा सकती है इसलिए स्थानीय निकायों के लिए निदेशालय स्थापित करने की सिफारिश की गई। 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान के लागू होने पर संविधान के अनुसार स्थानीय संस्थाओं की देखभाल का कार्य स्थानीय शासन विभाग को सौंप दिया गया। अब भारत के प्रत्येक राज्य का स्थानीय शासन विभाग है और उसका संगठन भी काफी उपयुक्त है

भारतीय प्रशासन के विभिन्न विभागों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया गया है– सचिवालय व निदेशालय। राज्य सचिवालय नीतियाँ बनाता है और निदेशालय नीतियाँ कार्यान्वित करता है। प्रत्येक राज्य में कृषि, उद्योग, शिक्षा आदि विभागो क निदेशालय हैं, जैसे कि कृषि निदेशालय, शिक्षा निदेशालय आदि।

प्रत्येक राज्य का स्थानीय स्वशासन भी संविधान के अनुसार दो भागों में बॉटा गया है– शहरी व ग्रामीण। शहरी स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था हेतु सचिवालय स्तर पर स्थानीय स्व–शासन विभाग व निदेशालय के रूप में स्थानीय संस्थाओं का निदेशालय स्थापित किया गया है। ग्रामीण स्थानीय स्वशासन के विकास हेतु पंचायती राज और सामुदायिक विकास विभाग स्थापित किए गए हैं। इन संस्थाओं की स्थापना की दिशा में सर्वप्रथम प्रयास संयुक्त पंजाब में किया गया। धीरे–धीरे भारत के प्रत्येक राज्य में इसकी स्थापना की दिशा में प्रयास हुए। 73वें व 74वें संवैधानिक संशोधनों द्वारा स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में विभाग व निदेशालय की व्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान की गई है।

नगरपालिका निकाय निदेशालय का संगठन (Organisation of Directorate of Municipal Bodies)- स्थानीय निकायों के निदेशालय का संगठन प्रत्येक राज्य में लगभग एक जैसा ही है। इसका मुखिया निदेशक (Director) कहलाता है। स्थानीय निकाय निदेशालय 'बी' श्रेणी का कार्यालय होता है। इसका कार्यभार राज्य के वरिष्ठ I.A.S अधिकारी के अन्तर्गत चलता है। यह पूर्णकालिक अधिकारी होता है जिस पर उसके निदेशालय के अतिरिक्त अन्य कोई उत्तरदायित्व नहीं डाला जा सकता है। इसके कार्यभार को देखते हुए राज्य सरकार अतिरिक्त निदेशक भी नियुक्त कर सकती है। निदेशालय में एक लेखाधिकारी भी होता है जो कि राज्य लेखा–सेवा का सदस्य होता है। इसका मुख्य कार्य निदेशालय की वित्त सम्बन्धी व्यवस्था को देखना है। नगरपालिका निकाय निदेशालय के अन्य अधिकारियों में कानून अधिकारी, सहायक चुनाव निदेशक, आग बुझानेवाले विभाग का अधिकारी, प्रशासन कार्यकारी अधिकारी, नगरपालिका का डॉक्टर व इंजीनियर भी शामिल है। निदेशालय का संगठन काफी उचित है। इसका मुख्य संचालक निदेशक ही होता है। कुछ प्रादेशिक उप–निदेशक भी प्रशासकीय कार्यों में निदेशक की मदद करते हैं। प्रत्येक राज्य में इन निदेशकों की संख्या अलग–अलग है।

निदेशालय तथा अधीनस्थ कार्यालयों के कार्य (Functions of the Directorate and its Subordinate Officers)- विभिन्न जॉच एवं स्वशासन समितियाँ नगर प्रशासन निदेशालय की शक्तियों और कार्यों के सम्बन्ध में विचार प्रकट करती थीं। नगरपालिकाओं पर राज्य सरकार की नियन्त्रण शक्ति का व्यवहार में उपयोग स्थानीय निकायों का निदेशालय ही करता है। निदेशालय तथा क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा स्थानीय समस्याओं का योजनाबद्ध तरीके से समाधान करने के लिए प्रयास आरम्भ कर दिए हैं और विभाग नगरपालिकाओं की विभिन्न समितियों की आय और व्यय पर भी निगरानी रखता है। विकास विभाग द्वारा पेश की गई योजनाओं का इसके द्वारा बारीकी से अध्ययन किया जाता है उसके बाद ही निदेशालय या सरकार उस पर अपनी स्वीकृति देती है। निदेशालय की शक्तियों और उसके कार्यों की रूप–रेखा निम्न प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है–

1. राज्य निदेशालय राज्य की समस्त शहरी स्व–शासन से सम्बन्धित संस्थाओं के पथ–प्रदर्शन, पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी है। यह स्थानीय निकायों के कार्यकलाप की जॉच–पड़ताल करता है और राज्य सरकार को नगरीय शासन की

विकास नीतियों के सम्बन्ध में सलाह देता है।

2. शहरी स्व–शासन संस्थाओं का गठन यद्यपि राज्य सरकार द्वारा पारित अधिनियम के अनुसार होता है फिर भी निदेशालय कुछ विशेष परिस्थितियों में इन संस्थाओं के सदस्यों को अपराध प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 118 के अन्तर्गत हटाने का अधिकार प्राप्त है।

3. निदेशालय के पास नगरपालिकाओं के कर्मचारियों के स्थानान्तरण की शक्ति भी है। नगरपालिकाओं के रिक्त पदों की पूर्ति के लिए भर्ती की स्वीकृति निदेशक ही देता है। नगरपालिका कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की शक्ति भी निदेशालय के पास है।

4. शहरी, स्थानीय संस्थाओं के वित्त पर भी निदेशालय का नियन्त्रण होता है। निदेशालय अनेक प्रकार के व्ययों की स्वीकृति प्रदान करता है जैसे कि शहरी स्थानीय संस्थाओं के कर्मचारियों के यात्रा खर्च व अन्य खर्च आदि।

5. राज्य का जन–स्वास्थ्य विभाग जल–आपूर्ति व सीवरेज सुविधा से तालमेल रखने का काम करता है। इसके साथ ही कुछ राज्यों में स्वायत्त जल–आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड की भी स्थापना की गई है ताकि वह इन कार्यों की देखभाल स्वतंत्र रूप से कर सके।

6. राज्य के राजस्व की वृद्धि के लिए निदेशालय के उच्च अधिकारी चुंगियों आदि का अचानक दौरा व निरीक्षण करते हैं। राजस्व चोरी रोकने के लिए यह प्रभावी कदम उठाते हैं ताकि राज्य व शहरी प्रशासन की आय में वृद्धि हो।

7. निदेशालय अग्निशमन सेवाओं सम्बन्धी उपकरणों की खरीद, उनकी देखभाल, अग्निशमन स्टेशन स्थापित करने और तकनीकी मामलों में सरकार को परामर्श देने का कार्य करता है ताकि शहरी प्रशासन की अग्निशमन सेवाओं की पूर्ति की जा सके।

8. निदेशालय शहरी स्थानीय स्वशासन के कर्मचारियों के लिए पेंशन तथा अंशदायी भविष्य निधि की व्यवस्था करता है।

9. निदेशालय राज्य की समस्त नगरपालिकाओं को नगरों की सफाई, गन्दे पानी के निकास के प्रबन्ध और नगरों के सौन्दर्यीकरण के आदेश भी देता है और नगरों के विकास की योजनाएँ भी बनाता है। इनके द्वारा नगरों की पर्याप्त उन्नति हुई है।

10. निदेशालय द्वारा समय–समय पर स्थानीय संस्थाओं का निरीक्षण किया जाता है। इसके द्वारा स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के कार्यों की कुशलता, कमियों, रिकार्ड्स आदि के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

11. शहरी स्थानीय शासन की संस्थाओं पर राज्य सरकार का वित्तीय नियन्त्रण निदेशालय के माध्यम से ही होता है। निश्चित राशि के ठेकों पर प्रायः निदेशक का नियन्त्रण स्थापित किया गया है।

12. स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के राजस्व में वृद्धि करने के लिए योजनाएँ निदेशालय द्वारा बनाई जाती हैं।

13. निदेशालय के द्वारा ही नगरपालिकाओं व नगर निगमों के चुनावों के लिए मतदाता सूचियाँ तैयार करवाई जाती हैं। नगरपालिका के कर्मचारी घर–घर जाकर जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े एकत्र करते हैं और उनके नाम नगरपालिका रजिस्टर में अंकित करते हैं।

14. राज्य सरकार निदेशालय के माध्यम से अपनी वैधानिक शक्तियों का प्रयोग शहरी स्वशासन की संस्थाओं के लिए करती है। राज्य विधानसभा शहरी प्रशासन की किसी भी धारा को खत्म या उसमें संशोधन कर सकती है। सरकार निदेशालयों के द्वारा नगरपालिकाओं और नगर–निगमों की प्रत्येक कार्यवाही पर नियन्त्रण रखती है।

15. प्रान्तीय स्थानीय शासन पर सरकार कई तरह से प्रशासकीय नियन्त्रण स्थापित करती है। इनमें कानून–निर्माण की शक्ति, सदस्यों पर विशेषाधिकार, स्थानीय प्रशासन के कर्मचारियों की मुअत्तली का अधिकार, निरीक्षण का अधिकार आदि द्वारा यह नगरपालिकाओं के कार्यों पर उचित प्रशासकीय नियन्त्रण रखती है।

निष्कर्ष (Conclusion)– निदेशालय की उपयुक्त शक्तियों और कार्यों से स्पष्ट है कि स्थानीय निकायों के निदेशालय की भूमिका पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। निदेशालय एक तरफ नगरीय स्व–शासन की संस्थाओं के साथ जुड़ा होता है तो दूसरी तरफ राज्य सरकार के उस विभाग से जो कि स्थानीय नगरीय प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। राज्य निदेशालय का मुख्य कार्य प्रशासकीय है। निदेशालय

द्वारा राज्य की समस्त नगरपालिकाओं के कार्यों का नियन्त्रण किया जाता है। राज्य में निदेशक को लगभग संयुक्त सचिव तथा सयुक्त निदेशक को उप–सचिव के समान शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। चूँकि नगरीय स्थानीय संस्थाएँ विभिन्न प्रकार के तकनीकी और समाज–सेवा का कार्य भी करती हैं, अतः निदेशालय का सम्बन्ध विभिन्न तकनीकी और समाज–सेवा विभागों से भी जुड़ जाता है। प्रत्येक राज्य के जिले के सामान्य प्रशासन पर नियन्त्रण का अधिकार जिलाधीश को प्राप्त है जबकि शहरी सस्थाओं के विशिष्ट प्रशासन पर नियन्त्रण का अधिकार केवल निदेशालय को ही प्राप्त है। निदेशालय की अध्यक्षता करनेवाला अधिकारी तकनीकी रूप से 'विशेषज्ञ' व्यक्ति होता है। अतः निदेशालय की कार्य–कुशलता और सफलता काफी हद तक निदेशक पर भी निर्भर करती है।

शहरी विकास मंत्रालय
(Ministry of Urban Development)

आज संसार के लगभग सभी देशों में स्थानीय प्रशासन को स्थापित किया गया है। परन्तु इन स्थानीय स्वशासन की संस्थाओ को ज्यादा स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गई हैं। स्थानीय स्तर पर स्व–शासन संस्थाएँ राज्य सरकार की देन हैं। इसलिए इन्हें अपने विकास के लिए राज्य सरकारों पर निर्भर रहना पड़ता है।

भारत में स्थानीय शासन का आरम्भ 1882 में हुआ परन्तु इसका तेजी से विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ है। स्वतंत्रता की प्राप्ति और जन–कल्याण राज्य की अवधारणा को स्वीकार करने के परिणामस्वरूप देश के सम्मुख नवीन चुनौतियों का तथा परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले लक्ष्यों का सामना करना पड़ा। 1948 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री की अध्यक्षता में स्थानीय स्वशासी सस्थाओं के प्रान्तीय मंत्रियों की एक बैठक हुई जिसमें भारतीय प्रजातन्त्र की सफलता के लिए स्थानीय स्तर पर स्वशासी संस्थाएँ स्थापित करने पर विचार हुआ। संविधान की धारा 246 में राज्य–विधान सभाओं को यह शक्ति दी गई है कि वे स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में किसी भी विषय पर कानून बना सकती है।

भारत में शहरी स्व–शासन संस्थाओं के सन्दर्भ में केन्द्रीय सरकार की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। शहरी स्थानीय प्रशासन के साथ केन्द्रीय स्तर पर सामान्यतः दो संस्थाओं (i) स्वास्थ्य, परिवार कल्याण तथा शहरी विकास मंत्रालय, (ii) स्थानीय स्व–शासन की केन्द्रीय परिषद् का वर्णन किया गया है। केन्द्रीय सरकार की इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका है ताकि यह प्रभावात्मक ढंग से सफल हो सके और शहरी प्रशासन को सही मार्ग–दर्शन एवं प्रेरणा मिल सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्थानीय शासन राज्य द्वारा नियन्त्रित होते हुए भी अपना अलग अस्तित्व स्थापित कर चुका है और यह देश की उत्तरदायी शासन प्रणाली का महत्त्वपूर्ण अंग है। इस अध्याय में शहरी स्थानीय प्रशासन से सम्बन्धित दो केन्द्रीय स्तरीय संस्थाओं (i) स्वास्थ्य परिवार कल्याण तथा नगरीय विकास मंत्रालय व (ii) स्थानीय स्व–शासन की केन्द्रीय परिषद् की चर्चा की गई है।

शहरीकरण, शहरी विकास एवं स्थानीय सरकार के विषय भूतकाल से ही कुछ विभागों के अधीन रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद बढ़ते हुए शहरीकरण और इससे पैदा चुनौतियों का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने एक मंत्रीमंडलीय मंत्री अथवा राज्य–मन्त्री की अध्यक्षता में 1985 में एक पृथक् शहरी विकास मंत्रालय की स्थापना की।

संरचना (Organization)– शहरी विकास मंत्रालय का एक सचिवालय होता है जिसमें चार कार्यालय तथा दो संलग्न उप–कार्यालय होते हैं। इसका प्रशासकीय एवं कार्यकारी अध्यक्ष भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Administrative Services) का एक वरिष्ठ (Senior) अधिकारी होता है। इस अधिकारी की सहायता के लिए दो अतिरिक्त सचिव एवं चार संयुक्त सचिव होते हैं। इनके अतिरिक्त, प्रमुख अभियन्ता, अधीक्षक, अभियन्ता, अवर सचिव, विभाग अधिकारी व अधीनस्थ कर्मचारी भी होते हैं। फरवरी 1969 में इसका पुनर्गठन किया गया और इसके अन्तर्गत तीन विभागों, (i) स्वास्थ्य विभाग, (ii) परिवार–कल्याण विभाग, (iii) उद्योग, आवास और शहरी विकास विभाग अंकित किए गए। पहले दो विभागों के लिए यह नीति निर्माण और तीसरे विभाग के लिए यह विकास कार्यक्रम बनवाता है और उन्हें लागू करता है।

शहरी विकास मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार:

Attached and Subordinate offices, Public Sector Undertakings & Satutory Bodies of the Ministry of Urban Affairs & Employment

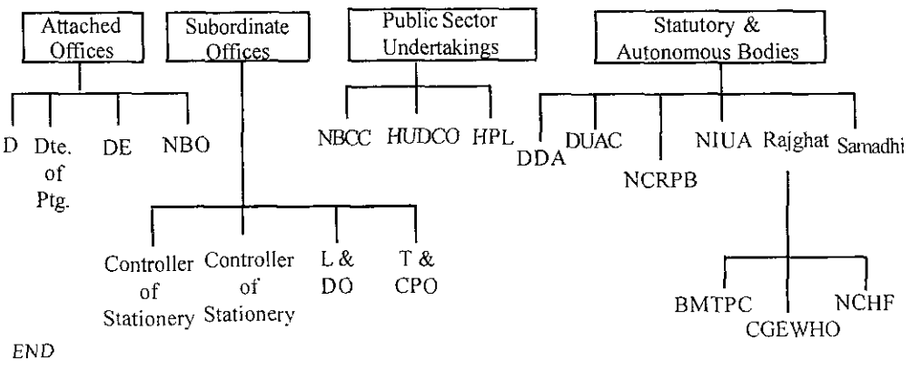

END

1. BMTPC – Building Materials and Technology Promoton Council
2. CGEWHO – Central Government Employees Welfare Housing Organization
3. CPWD–Central Public Works Department
4. DDA–Delhi Development Authority
5. DE – Directorate of Estates
6. Dte of Ptg. – Directorate of Printing
7. DUAC – Delhi Urban Art Commission
8. HPL – Hindustan Prefab Ltd.
9. HUDCO – Housing & Urban Development Corporation Ltd.
10. L&DO – Land & Development Office
11. NBCC – National Buildings Construction Corporation Ltd.
12. NCHF – National Co-operative Housing Federation of India
13. NBO – National Buildings Organization
14. NCRPB – National Capital Region Planning Board
15. NIUA – National Institute of Urban Affairs
16. T & CPO – Town & Country Planning Organization

मंत्रालय के प्रमुख कार्य (Major Functions of the Ministry)- मंत्रालय की नीति निर्माण एवं इसके क्रियान्वयन हेतु निम्नलिखित विषय आबंटित किए गए हैं–

1. शहरी आवास नीति और कार्यक्रम का निश्चय करना, योजनाबद्ध परियोजनाओं के क्रियान्वयन का पुनर्निरीक्षण करना। कम लागत के भवन निर्माण की तकनीक सम्बन्धी आँकड़ों को इकट्ठा करना और उसका विश्लेषण एवं विकास के लिए तकनीकी सहायता प्राप्त करना।
2. अचल सम्पत्ति अधिग्रहण नियम 1952 के अधीन प्रशासनिक कार्य करना।
3. यह केन्द्र सरकार को राज्यों की स्थानीय संस्थाओं को दी जानेवाली वित्तीय सहायता का सुझाव देती है ताकि वे स्थानीय संस्थाएँ अपने क्षेत्र का समुचित विकास कर सकें।
4. वह सम्पूर्ण केन्द्रीय सम्पत्ति जो रेलवे, सुरक्षा व आण्विक ऊर्जा विभाग की सम्पत्ति नहीं है और इसमें शामिल नहीं होती (i) जिसके निर्माण में नागरिक उद्योग के बजट से आर्थिक सहायता नहीं दी गई हो, (ii) ऐसे भवन, जिनका नियन्त्रण अधिकारी उनके निर्माण के समान अथवा तत्पश्चात् स्थायी रूप से उद्योग, आवास तथा नगरीय विकास मंत्रालय को सौंपा गया हो।
5. यह स्थानीय संस्थाओं को विभिन्न कार्यों के लिए दी गई सहायता के कार्यों का निरीक्षण करता है।
6. सरकारी सम्पदाओं जिनमें मंत्रालय के नियंत्रणाधीन सरकारी छात्रावास सम्मिलित हैं, का प्रबन्ध करती है। महानगरों में कार्यालयों की स्थापना अथवा उन्हें हटाना।

7. शहरों और कस्बों की योजना, कलकत्ता महानगरीय विकास योजना संस्थान सम्बन्धी मामले।
8. दिल्ली होटल या आवास नियन्त्रण अधिनियम, 1945 का प्रशासन।
9. दिल्ली किराया नियन्त्रण नियम 1958।
10. दिल्ली विकास नियम 1957 का प्रशासकीय कार्य।
11. शहरी विकास जिसमें गंदी बस्तियों एवं झुग्गी झोंपड़ियों को समाप्त करने की योजना सम्मिलित है। इस क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं तकनीकी सहायता।
12. शहरी व ग्रामीण योजना, महानगरीय क्षेत्रों के विकास एवं नियोजन से सम्बन्धित मामले।
13. स्थानीय सरकार, अर्थात् नगर–निगमों की शक्तियों एवं संरचना, नगरपालिकाएँ, स्थानीय स्वशासन प्रशासन।
14. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के विकास व नियोजन से सम्बन्धित सभी मामलों राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र नियोजन बोर्ड अधिनियम, 1985 का प्रशासन।
15. शहरी परिवहन प्रणालियों का नियोजन एवं समन्वय।
16. शहरी भूमि (परिसीमन एवं नियमन) नियम 1976 को लागू करने के लिए सभी राज्यों में तालमेल स्थापित करना।
17. स्वच्छ जल की आपूर्ति, मल एवं गन्दे पानी की निकासी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और तकनीक प्राप्त करना।
18. कला एवं सांस्कृतिक धरोहर हेतु भारतीय राष्ट्रीय न्याय से सम्बन्धित मामले।
19. शहरी पुनर्वास केन्द्रों का प्रबन्ध।
20. भारत सरकार की ओर से लेखन सामग्री एवं प्रकाशन जिसमें सरकारी प्रकाशन सम्मिलित हो।
21. केन्द्रीय लोकनिर्माण संगठन का प्रबन्ध।
22. स्वतंत्रता सेनानियों के सम्मान हेतु राष्ट्रीय स्मारकों का निर्माण।
23. विभिन्न प्रकार के वृक्ष–रोपण कार्य करना।
24. विज्ञान भवन में आवास आबंटन का कार्य देखना।

संलग्न कार्यालय (Attached Offices)– शहरी विकास मंत्रालय के प्रशासकीय नियंत्रण के अधीन प्रमुख संलग्न कार्यालयों का वर्णन निम्नलिखित है–

1. केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग, प्रकाशन निदेशालय, सम्पदा कार्यालय, राष्ट्रीय भवन संगठन।
2. लेखन सामग्री नियंत्रक, भूमि एवं विकास कार्यालय।
3. दिल्ली विकास प्राधिकरण, दिल्ली शहरी कला आयोग। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र नियोजन बोर्ड।
4. केन्द्रीय जन–स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय अभियांत्रिकी संगठन।
5. आवास एवं शहरी विकास निगम।
6. राष्ट्रीय भवन निर्माण निगम।
7. हिन्दुस्तान प्रीफैब लिमिटेड।
8. राष्ट्रीय शहरी मामलों से सम्बन्धित संस्थान की स्थापना।

अधीनस्थ कार्यालय (Subordinate Offices) – संलग्न कार्यालयों के अतिरिक्त मंत्रालय के कुछ अधीनस्थ कार्यालय भी हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. **शहरी भूमि और विकास कार्यालय (Urban Land and Development Office)**– राजधानी की नाजुल (Nozul) भूमि का प्रशासन अक्टूबर 1950 में उद्योग, आवास और आपूर्ति मंत्रालय के अधीन कर दिया गया था। इसका कार्य दिल्ली की पुनर्वास बस्तियों में सम्पत्ति को पट्टे पर देना है, अपने नियन्त्रण की भूमि पर अवैध अधिकार को समाप्त करना, पट्टे पर दी गई भूमि का लाभ और किराया प्राप्त करना, पट्टे की निर्धारित शर्तों के अनुसार भवन–निर्माण का निरीक्षण करना और कार्य कुशलता का प्रमाण–पत्र देना।

2. **करबों और नगर विकास से सम्बन्धित संस्थान**– यह संस्थान केन्द्र व राज्य सरकारों को इन मामलों के सम्बन्ध में सहायता व सलाह प्रदान करता है जो कि क्षेत्रीय और नगरीय योजना से सम्बन्धित हों। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में तथा दक्षिण पूर्वी संसाधन क्षेत्र के लिए यह संस्थान विकास योजनाएँ तैयार करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)–शहरी स्थानीय स्वशासन के क्षेत्रों तथा निकायों का विकास कार्य सम्बन्धित राज्य सरकार के नियन्त्रणाधीन स्थानीय प्रशासन का विषय है। परन्तु इसमें केन्द्रीय सरकार शहरी स्थानीय स्व–शासन की संस्थाओं और विकास कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है। केन्द्रीय सरकार स्थानीय स्वशासन के विकास की विभिन्न योजनाओं की सफलता के लिए अनुदान राशि प्रदान करती है फिर भी यह राशि पर्याप्त नहीं है। केन्द्र सरकार ने शहरी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को अधिक शक्तियाँ व स्वायत्तता प्रदान करने के लिए दिसम्बर 1992 में 74वाँ संवैधानिक संशोधन पास किया जो कि नगरपालिकाओं से सम्बन्धित है। इस अधिनियम द्वारा वर्तमान नगरीय स्थानीय सरकारों की संरचना एवं उनके संगठन के दोषों, न्यूनताओं एवं असमानताओं को दूर करने एवं उन्हें सशक्त बनाने का प्रयास किया गया है। 74वें संशोधन द्वारा स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई। इस संशोधन अधिनियम के द्वारा शहरी स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित शक्तियों को कार्य स्वायत्तता प्रदान की गई है। वह अपने क्षेत्रों का विकास कार्यक्रम खुद बनाएगी और उनका संचालन भी वह स्वयं करेगी। अतः देश में अब स्थानीय संस्थाओं को काफी हद तक स्वतन्त्रता दे दी गई है।

स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद्
(Central Council of Local Self-Government)

शहरी क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं में सुधार लानेवाली देश की सबसे महत्त्वपूर्ण निकाय स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् है। देश में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की प्रगति का समय–समय पर पुनरवलोकन (Review) करने, उसकी समस्याओं को जानने, उनको दूर करने के लिए उपाय ढूँढ़ने तथा विभिन्न राज्यों के साथ केन्द्रीय सम्पर्क तथा समन्वय को कायम रखने के लिए उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए केन्द्रीय सरकार एक स्थायी निकाय स्थापित करना चाहती थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अगस्त 1948 में स्वास्थ्य मन्त्रालय ने पहली बार केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री की अध्यक्षता में राज्यों के स्थानीय स्वशासन के मंत्रियों का सम्मेलन शिमला में बुलाया जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारतवर्ष में उत्तरदायी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना व उनसे सम्बन्धित सभी समस्याओं का सामना ढूँढ़ना था। इस सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया गया कि राज्यों में स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में समन्वय सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय स्वशासन मंत्रियों का वर्ष में एक बार सम्मेलन आयोजित किया जाना चाहिए। यद्यपि इन परिषद् की स्थापना के लिए सम्मेलन 1948 में हुआ परन्तु इसके गठन सम्बन्धी राष्ट्रपति का अध्यादेश 1954 में जारी किया गया। केन्द्रीय सरकार ने सन् 1955 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री की अध्यक्षता में स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् की स्थापना की। यह परिषद् एक स्थायी निकाय है। इस समय केन्द्रीय स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन मंत्री इस परिषद् का अध्यक्ष होता है और सभी राज्यों के स्थानीय शासन के मंत्रीगण इसके सदस्य होते हैं। परन्तु जब कभी इसकी बैठक होती है तो केन्द्रीय स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन मन्त्रालय के उच्च अधिकारियों तथा राज्यों के स्थानीय शासन विभाग के सचिवों को भी इसमें भाग लेने के लिए बुलाया जाता है। प्रायः वर्ष में एक बार इस परिषद् की नई दिल्ली अथवा किसी राज्य की राजधानी में एक बैठक अवश्य होती है।

रचना
(Composition)

स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् का गठन 1964 में जारी राष्ट्रपति के अध्यादेश द्वारा हुआ। इसका अध्यक्ष पहले केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री होता था परन्तु अब यह परिषद् केन्द्रीय नगरीय या शहरी विकास मंत्री की अध्यक्षता में कार्य करती है। भारत के सभी राज्यों

व केन्द्र शासित प्रदेशों के स्थानीय स्व–शासन मंत्री इस परिषद् के सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त परिषद् में ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधि भी शामिल किए जाते हैं। परिषद् में विशेषज्ञों एवं तकनीकी परामर्शदाताओं को भी बैठकों में शामिल किया जाता है परन्तु उन्हें परिषद् की कार्यवाही में मताधिकार नहीं दिया गया है। परिषद् की वर्ष में एक बार बैठक होना अनिवार्य है। प्रारम्भ में इसके पास शहरी व ग्रामीण दोनों ही प्रकार की सरकारों की समस्याओं के बारे में विचार करने की शक्ति थी परन्तु 1958 में इसको केवल शहरी स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित विभाग ही सौंपा गया है। यह परिषद् एक सलाहकारी संस्था है।

कार्य
(Functions)

स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् निम्नलिखित कार्य करती है–

1. स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित केन्द्रीय सरकार परिषद् एक सलाहकारी संस्था है जोकि केन्द्र व राज्य सरकारों को स्थापित शासन के विषयों पर सलाह देता है।
2. यह परिषद् स्थानीय सरकार के सम्बन्धित मामलों पर विधि निर्माण हेतु प्रस्ताव भेजती है।
3. यह स्थानीय स्वशासन विभिन्न अवस्थाओं के विषयों की नीति को निर्धारित करती है तथा इसकी रूपरेखा बनाकर उसे लागू करने के लिए सिफारिश करती है।
4. केन्द्रीय सरकार परिषद्, सम्पूर्ण भारत वर्ष के लिए एक सामान्य कार्यक्रम तैयार करती है।
5. यह परिषद् सारे देश के सामूहिक विकास के लिए स्वरूप निर्धारित करती है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी विभिन्न कार्यक्षेत्रों के नियम के लिए वैधानिक सुझाव देती है।
6. स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी विषयों के क्षेत्र में सभी प्रकार के सम्भावित सहयोग का पता लगाती है और सांझे कार्यक्रम (common programme of action) को तैयार करती है।
7. केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों की स्थानीय संस्थाओं को दी जानेवाली वित्तीय सहायता के बँटवारे के विषय में सुझाव देती है।
8. केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों की स्थानीय संस्थाओं को दी गई वित्तीय स्थानीय संस्थाओं द्वारा की जा रही कार्यवाहियों का समय–समय पर पुनरवलोकन (review) करती है।
9. स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी मामलों में विस्तृत आधार पर सहयोग की भावनाओं की भी जाँच करती है।
10. स्थानीय स्वशासन के सभी पक्षों से सम्बन्ध रखनेवाली सभी क्रियाकलापों पर विचार करती है और उनसे सम्बन्धित विस्तृत रूपरेखा की सिफारिश करती है।
11. यह शहरी, स्थानीय सरकारों की समस्याओं की जाँच हेतु समितियाँ भी नियुक्त करती है।
12. परिषद् अपनी वार्षिक बैठकों में स्थानीय संस्थाओं के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास करती है और पूर्व प्रस्तावों के क्रियान्वयन की भी समीक्षा करती है।

सितम्बर 1974 में भूतपूर्व केन्द्रीय आवास व निर्माण मंत्री श्री भोला पासवान शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न बैठक में स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् से सम्बन्धित निम्न विषयों पर सुझाव दिए गए–

(i) परिषद् द्वारा शहरी आवास निगम से ऋण की राशि न मिलने के कारणों पर विचार व सुझाव तथा ऋण की राशि प्राप्त करने के लिए स्थानीय संस्थाओं को अपनी संपदा को बंधक रखने का सुझाव दिया गया।

(ii) पंचवर्षीय योजनाओं में स्थानीय स्वशासन के विकास के लिए निर्धारित राशि के अलावा शहरी विकास पर अधिक

ध्यान देने पर बल देने का सुझाव दिया गया।

(iii) शहरी नागरिकों में अपने शहर की सफाई की भावना विकसित करने पर बल।

(iv) परिषद् द्वारा राज्य सरकारों को नगरपालिकाओं की आमदनी के साधन बढ़ाने का सुझाव देना।

वास्तव में स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित केन्द्रीय परिषद् का गठन शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों को स्थानीय संस्थाओं के विषय में सलाह देने के लिए किया गया था, परन्तु वर्तमान समय में इसने अपना कार्यक्षेत्र केवल शहरी स्थानीय शासन की संस्थाओं तक ही सीमित रखा हुआ है। इसको चाहिए कि ग्रामीण स्थानीय शासन की संस्थाओं को भी अपने क्षेत्राधिकार में ले ले क्योंकि यह संस्थाएँ हमारे स्थानीय शासन का महत्त्वपूर्ण अंग हैं और इनके विकास के लिए अभी बहुत कुछ सुधार करने की आवश्यकता है।

इस परिषद् ने देश की शहरी क्षेत्रों की स्थानीय शासन की संस्थाओं में सुधार करने के लिए दो महत्त्वपूर्ण समितियाँ नियुक्त की थीं ये समितियाँ हैं–

1. शहरी स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय स्रोतों को बढ़ाने के लिए समिति, 1963 (The Committee on Augmentation of Urban Local Bodies, 1963)
2. म्युनिसिपल कर्मचारियों की सेवा शर्तों सम्बन्धी समिति, 1965-68 (The Committee on Service Conditions of Muncipal Employees, 1965-68)

शहरी स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय स्रोतों को बढ़ाने के लिए समिति ने अपनी रिपोर्ट में भारत की नगरपालिकाओं की शोचनीय वित्तीय स्थिति का वर्णन किया और नगर–पालिका की आय के स्रोतों में वृद्धि करने के लिए बहुत-से सुझाव दिए। इसने नगरपालिकाओं को सुझाव दिया कि उन्हें स्थानीय कर लगाने की जो शक्ति दी गई है उसका पूर्ण रूप से तथा सही प्रयोग करना चाहिए करों की वसूली पूरी तरह से की जाए तथा नगरपालिकाओं को ऐसे कार्यों में भी अपनी कुछ पूँजी लगानी चाहिए जिससे उनका अधिक आय हो सके। इस समिति ने शहरी विकास के कार्यों को विधिवत् करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक सार्वजनिक शहरी विकास बोर्ड (Statutory Urban Development Board) की स्थापना करने के लिए सुझाव दिया। इस समिति ने विचार प्रकट किया कि शहरी विकास बोर्ड, शहरी विकास की योजनाओं को नगरपालिकाओं की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह लागू कर सकेगा। इसकी वित्तीय स्थिति भी मजबूत होगी। इसे सरकारी तथा गैर–सरकारी स्रोतों से लम्बी अवधि के लिए ऋण इत्यादि प्राप्त करने की अधिक सुविधाएँ प्राप्त होंगी।

म्युनिसिपल कर्मचारियों की सेवा शर्तों सम्बन्धी समिति को स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् द्वारा सन् 1965 में नियुक्त किया गया था। इसे म्युनिसिपल कर्मचारियों की सेवा शर्तों में सुधार करने के लिए सुझाव देने का कार्य सौंपा गया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट सन् 1968 में प्रस्तुत की जिसमें म्युनिसिपल कर्मचारियों की सेवा शर्तों को बेहतर बनाने के लिए कई सुझाव दिए गए। इसने म्युनिसिपल कर्मचारियों के वेतनमानों को सुधारने तथा सेवा के अन्य लाभों को प्राप्त किए जाने के लिए सिफारिश की थी। परन्तु इसकी मुख्य सिफारिश म्युनिसिपल सेवाओं का प्रान्तीयकरण करने के विषय में थी। इस समिति ने अपने सर्वेक्षण का यही निष्कर्ष निकाला, "प्रत्येक राज्य में म्यूनिसिपल कर्मचारियों का एक राज्यव्यापी केडर (Statewide Cadre) बनाया जाना अति आवश्यक है।" इस समिति के सुझावों को लागू करने के लिए सरकार द्वारा उत्साहजनक कदम उठाए गए हैं और म्युनिसिपल कर्मचारियों के सेवा शर्तों में सुधार करने का प्रयास किया गया है। सितम्बर 1974 में स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् का सम्मेलन चण्डीगढ़ में हुआ था। इस सम्मेलन में इस परिषद् ने शहरी क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर विचार–विमर्श किया। इस परिषद् ने यह स्वीकार किया कि चाहे पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में शहरी स्थानीय शासन के विकास के लिए 250 करोड़ रुपये की राशि रखी गई है, परन्तु फिर भी यह अपर्याप्त है। शहरी विकास की ओर अधिक सतर्कता से ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया गया। वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिए परिषद् ने बहुत-से सुझाव दिए। कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार है, राज्य सरकारों को नए साधन जुटाने का सुझाव दिया जिससे नगरपालिकाओं की आय के साधनों में वृद्धि हो सके। शहरी गृह निर्माण विकास निगम से नगरपालिकाओं को ऋण प्राप्त करने की सुविधाओं में वृद्धि की जाए तथा इस सम्बन्ध में नई

विधि का निर्माण किया जाए। परिषद् ने सुझाव दिया कि लोगों की नगरीय भावना (Civic Sense) को पैदा करने के लिए सारे देश में एक अभियान चलाया जाए इसके फलस्वरूप लोगों को अपने घरों, गलियों तथा शहरों को साफ-सुथरा रखने की आदत डाली जा सकेगी।

इस प्रकार स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् शहरी क्षेत्रों के विकास के लिए बहुमूल्य सुझाव देने वाली उच्च स्तरीय सलाहकार संस्था है। यदि इसके द्वारा दिए गए सुझावों को व्यवहार में पूरी तरह लागू कर दिया जाए तो हमार स्थानीय शासन की संस्थाओं की दशा में उत्साहजनक सुधार हो सकेंगे। इसके फलस्वरूप स्थानीय शासन की संस्थाएँ नागरिकों को जीवन की बुनियादी सुविधाएँ अधिक अच्छी तरह प्रदान कर सकेंगी तथा स्थानीय क्षेत्रों के विकास के लिए अधिक सार्थकता एवं विश्वास के साथ प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगी।

स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय-परिषद्
(Central Councial of Local Self-Government)

एक परामर्शदात्री संस्था है जिसका कार्य केन्द्र और राज्य सरकारों को स्थानीय स्वशासन के विकास हेतु सलाह देना है। इस परिषद् की प्रतिवर्ष दिल्ली या इसके क्षेत्रीय कार्यालयों में इसकी बैठकें होती हैं। जहाँ पर शहरी विकास और स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों पर विचार किया जाता है। वह स्थानीय सरकार के कार्यों का पुनरवलोकन भी करती हैं और उनका मार्ग–दर्शन भी करती है। इस परिषद् का मुख्य कार्य केवल केन्द्र व राज्य सरकार को स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में सलाह देना है। अतः केन्द्रीय परिषद् केवल एक मात्र परामर्शदात्री संस्था है।

अध्याय-7
नगर निगम
(Municipal Corporation)

नगर–निगम नगरीय स्थानीय शासन का शीर्षस्थ निकाय है। भारत में नगरीय स्थानीय शासन का संगठन ग्रामीण स्थानीय शासन की भाँति सोपानात्मक नहीं है। नगर निगम संस्था के रूप में अधिक सम्माननीय है तथा अन्य नगर निकायों की तुलना में अधिक स्वायत्तता का उपभोग करता है। महानगरों एवं बड़े नगरो में स्थानीय प्रशासन हेतु नगर निगम स्थापित किये जाते हैं। 74 वें संविधान संशोधन में व्यवस्था है कि किसी बड़े नगरीय क्षेत्र के लिए एक नगरपालिका निगम गठित होगा।

भारत में सर्वप्रथम नगर निगम की स्थापना ब्रिटिश शासनकाल में मद्रास में ब्रिटिश बादशाह जेम्स-II के आदेशानुसार बनाई गई। स्वतंत्रता के पश्चात सर्वप्रथम 1951 में कलकत्ता में नगर निगम स्थापित किया गया था। बैंगलोर, हैदराबाद, मुम्बई, पूना, अहमदाबाद, नगपुर, शोलापुर, कोल्हापुर, कानपुर, आगरा, इलाहबाद, बड़ौदा, सूरत, कलकत्ता, वाराणसी, लखनऊ, चेन्नई, मदुरई, त्रिवेन्द्रम, कोचीन, वारंगल, काझीकोड़, पटना, ग्वालियर, इन्दौर, उज्जैन, दिल्ली, जयपुर, जोधपुर, कोटा आदि नगरों में नगर निगम स्थापित किये गये हैं।

नगर निगम तथा नगर परिषद् में अन्तर

1. **गठन हेतु अधिनियम का अन्तर**–नगर निगम की स्थापना राज्य विधानांग द्वारा पारित विशेष संविधी के अन्तर्गत की जाती है। इस प्रकार का विधान किसी एक विशेष निगम के लिए अथवा राज्य के सभी निगमों के लिए पारित किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में राजस्थान अपवाद है जहाँ राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959 में संशोधन करके ही जयपुर, जोधपुर व कोटा में नगर निगम स्थापित कर दिये गये।

2. **स्थापना क्षेत्र का अन्तर**– नगरीय शासन की निगम पद्धति बड़े नगरों के लिए है जहाँ नागरिक समस्याएँ अधिक जटिल होती है। नगरपरिषदों का गठन महानगरों से छोटे नगरों में किया जाता है।

3. **स्थापना हेतु मापदण्डों का अन्तर**– नगर निगम ऐसे नगरों में स्थापित किये जाते है जिनकी जनसंख्या कम से कम 5 लाख हो जबकि नगर परिषद या नगरपालिका 8 हजार की जनसंख्या पर भी स्थापित किये जा सकते हैं। वित्तीय दृष्टि से भी माना जाता है कि नगर निगम की स्थापना हेतु वार्षिक आय कम से कम 1 करोड़ रूपया होनी चाहिए जबकि नगर परिषद या नगरपालिकाओं की स्थापना हेतु कोई वित्तीय मापदण्ड निर्धारित नहीं किया जाता है।

4. **अध्यक्ष के कार्यकाल का अन्तर** – नगरपरिषदों के अध्यक्ष/सभापति का कार्यकाल नगरपरिषद के कार्यकाल के समान ही 5 वर्ष निर्धारित किया गया है जबकि निगम के सन्दर्भ में यह स्थिति नहीं है। विभिन्न नगर निगमों के अध्यक्षों का कार्यकाल भिन्न–भिन्न है। उदाहरणार्थ पुणे में एक वर्ष व राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, कोटा में 5 वर्ष है।

5. **कार्यकारी निकाय की स्थिति में अन्तर**– निगम में निगम के कार्यों हेतु नीति निर्धारक निकाय एवं कार्यकारी निकाय में पृथक्करण होता है जबकि नगरपरिषद् में नहीं। नगर निगम में नीति निर्धारण के लिए विचार विमर्शकारी निकाय के रूप में निगम की परिषद् मेयर या महापौर की अध्यक्षता में कार्य करती है, नीतियों की क्रियान्विति आयुक्त की अध्यक्षता में कार्यकारी निकाय द्वारा किया जाता है, जिस पर मेयर व परिषद् का कोई नियंत्रण नहीं होता। जबकि नगरपरिषदें अपने अध्यक्ष/ सभापत्ति के नेतृत्व में न केवल नीति निर्धारण का कार्य करती हैं अपितु नीतियों की क्रियान्विति करनेवाले कार्यकारी निकाय आयुक्त/ कार्यकारी अधिकारी पर पूर्ण नियंत्रण रखती हैं।

निगम की मुख्य विशेषताएँ

1. राज्यों में निगम राज्य विधानमंडलों के औपचारिक अधिनियम द्वारा तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों में संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित किए जाते हैं।

2. नगर निगम को चार्टर के रूप में स्थानीय जनता पर शासन करने का अधिकार होता है।

3. नगर निगम एक निगमित निकाय (Corporate Body)– होता है। जिसका अर्थ है–

   (i) उसे शाश्वत उत्तराधिकार प्राप्त है,

   (ii) उसकी एक सामान्य मोहर होती है,

   (iii) वह अपने नाम से न्यायालय में वाद ला सकता है,

   (iv) उसके विरुद्ध वाद लाया जा सकता है।

4. नगर निगम को अपने कार्यों को सम्पन्न करने हेतु स्वायत्तता प्राप्त होती है।

5. नगर निगम में विचार विमर्शकारी निकाय का कार्यकारी निकाय पर नियंत्रण नहीं होता। दोनों निकायों में पृथक्करण होता है।

निगम का कार्यकाल (Duration of Corporation) - नगर–निगम का कार्यकाल, सिवाय भंग होने की अवस्था में, पॉच वर्ष हाता है। यदि किसी कारणवश निगम को भंग कर दिया जाता है तो अगली चुनी गई नगर–निगम शेष बचे समय के लिए कार्य करेगी। निगम को भंग करने से पूर्व उसे अपने विचार व्यक्त करने का पूरा अवसर दिया जाता हैं। हरियाणा में न्यायालय में चल रहे एक मुकदमे के कारण फरीदाबाद नगर–निगम का कार्यकाल पाँच वर्ष से अधिक समय तक चला क्योंकि निगम का कार्यकाल 15 जनवरी, 2000 को समाप्त होने तक निगम का चुनाव न हो सका।

सदस्यों की अयोग्यताएँ (Disqualification of the Members) - नगर–निगम का सदस्य बनने के लिए नगरीय क्षेत्र के वार्ड में पंजीकृत मतदाता होने के अतिरिक्त 25 वर्ष की उम्र होना आवश्यक है। अधिनियम के अनुच्छेद 8 के अनुसार सदस्य बनने के लिए निम्नलिखित कारणों को अयोग्यता माना गया है–

(1) राज्य विधानमण्डल के निर्वाचन के उद्देश्य से मानी गई अयोग्यता।

(2) विकृत चित्त।

(3) दिवालिया।

(4) विदेशी नागरिकता।

(5) हरियाणा नगर–निगम अधिनियम, 1994 की धारा 22 के अन्तर्गत परिभाषित भ्रष्ट विधि।

(6) भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 171–E या 171–F या अधिनियम, 1994 की धारा 30 या 31 के अनुसार कोई अपराधिक मुकदमा।

(7) अनैतिक आचार के कारण दोष–सिद्धि या हिरासत।

(8) निगम के अन्तर्गत किसी भी लाभ के पद पर होना।

(9) सरकार के अन्तर्गत किसी भी लाभ के पद पर होना।

(10) निगम से लाईसेन्सशुदा वास्तुविद् (Architect) ड्राफ्टसमैन, इंजीनियर, पैमाइश करनेवाला (Surveyor) पलम्बर या नगर योजनाकार।

(11) निगम के किसी कार्य या संविदा से लाभ प्राप्तकर्ता।

(12) निगम के द्वारा संचालित किसी फर्म या व्यवसाय का हिस्सेदार।

(13) सरकार, निगम या स्थानीय सत्ता के अधीन किसी सेवा से पदच्युति

(14) निगम को देय किसी फीस या जुर्माने को अदा करने में असफल होने पर।

(15) दो से अधिक जीवित बच्चों का माँ–बाप होने पर।

यद्यपि यह शर्त उन माता–पिताओं पर नहीं लागू होती जिनके पास 31 मई 1995 तक या इससे पहले दो जीवित बच्चे हों।

निगम में आरक्षित सीट
(Reserved Seats in the Corporation)

निगम अधिनियम की धारा 11 के अनुसार निम्नलिखित वर्गों के लिए सीटों का आरक्षण किया गया है –

नगरीय क्षेत्र की कुल जनसंख्या और अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के मध्य अनुपात के अनुसार सीटें आरक्षित की जाती हैं। इनका कुल जनसंख्या में तथा कुल सीटों में एक समान अनुपात होना चाहिए। केन्द्रीय शासित क्षेत्र में नगर–निगम स्थापित करने के लिए तथा संसद तथा राज्यों में नगर–निगम गठित करने के लिए राज्य विधानमण्डल द्वारा विशेष अधिनियम पारित करने पड़ते हैं। भारत में सबसे पहले मद्रास में नगर–निगम गठित किया गया। प्रत्येक नगर–निगम के लिए एक विशेष अधिनियम पारित किया गया है। उदाहरण के लिए दिल्ली में, दिल्ली नगर–निगम अधिनियम 1957, मुम्बई में मुम्बई नगरनिगम अधिनियम, 1888 पंजाब में पंजाब नगर–निगम अधिनियम, 1976 तथा हरियाणा में हरियाणा नगर–निगम अधिनियम, 1994 लागू है। हरियाणा में सिर्फ फरीदाबाद में नगर–निगम गठित किया गया है। हरियाणा सरकार ने 2002 राज्य में छः नगर–निगम बनाने की घोषणा की है जिनमें रोहतक, हिसार, पानीपत, अम्बाला, गुड़गांव तथा यमुनानगर है।

हरियाणा में नगर-निगम की व्यवस्था
(Establishment of Municipal Corporation in Haryana)

हरियाणा में नगर–निगम की व्यवस्था इस प्रकार की गई है–

1. नगर-निगम की स्थापना (Establishment of Municipal Corporation) - किसी भी नगरीय क्षेत्र में नगर–निगम स्थापित करने का अधिकार राज्य की विधानपालिका को होता है। हरियाणा में इस प्रकार का कानून हरियाणा नगर–निगम अधिनियम, 1994 (Haryana Municipal Corporation Act, 1994) विधानमंडल ने 31 मई, 1994 को पारित किया और इसके अनुसार फरीदाबाद में नगर–निगम गठित किया गया। राज्य सरकार अधिसूचना जारी करके इस अधिनियम में अन्य नगरीय क्षेत्रों को भी शामिल कर सकती है। यह निगम एक सतत् उत्तराधिकार प्राप्त निकाय (Body of Perpetual Succession) है जिसको एक सामान्य मुहर (Common Seal), सम्पत्ति तथा स्वयं के नाम से दावा करने या अभियोग चलाने की शक्ति प्राप्त है।

रचना (Composition) - फरीदाबाद काम्पलैक्स (Faridabad Complex) में निम्नलिखित नगरपालिकाएँ व राजस्व सम्पदाएँ सम्मिलित हैं–

(i) फरीदाबाद नगरीय जिला (Municipality of Faridabad Township)

(ii) प्राचीन फरीदाबाद नगरपालिका (Municipality of Faridabad Old)

(iii) बल्लभगढ़ नगरपालिका (Municipality of Ballabgarh)

(iv) बल्लभगढ़ में सम्मिलित न की गई राजस्व सम्पदा (Revenue Estate of Ballabgarh not included in the Municipality of Ballabgarh)

फरीदाबाद काम्पलैक्स को 38 सभा–क्षेत्रों में बाँटा गया है और प्रत्येक सभा–क्षेत्र को वार्डों में बाँटा गया है। प्रत्येक वार्ड की जनसंख्या 25,000 होती है। यद्यपि ग्रामीण वार्डों की जनसंख्या 25,000 से कम हो सकती है। इन वार्डों के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित सदस्य मनोनीत (Nominated) किए जाते हैं–

(क) तीन व्यक्ति, जिन्हें नगरीय प्रशासन के अनुभव का विशेष ज्ञान प्राप्त हो।

(ख) नगर–निगम के नगरीय क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करनेवाले लोकसभा तथा विधानसभा के सदस्य।

(ग) राज्यसभा के सदस्य जिनका नगरीय क्षेत्र में मतदाता के रूप में पंजीकरण है।

उपरोक्त मनोनीत सदस्यों में से (क) वर्ग के सदस्यों को नगर–निगम की बैठकों में मताधिकार से तथा (ख) व (ग) वर्ग के सदस्यों

को मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर या उप–मेयर के चुनाव तथा हटाने की प्रक्रिया में मताधिकार से वंचित रखा गया है।

(1) उपरोक्त सीटों में से एक तिहाई सीटें अनुसूचित जातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित की जाएँगी।

(2) प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा भरी गई कुल सीटों में से एक–तिहाई सीटें (अनुसूचित जातियों के महिलाओं के लिए आरक्षित सीटें समेत) महिलाओं के लिए आरक्षित की जाएँगी। इन सीटों का बँटवारा भिन्न–भिन्न वार्डों में लाटरी के द्वारा किया जाएगा।

(3) दो सीटें पिछड़ी जातियों के लिए, जिन वार्डों में इन जातियों की अधिकतम संख्या है, आरक्षित की जाएँगी।

(4) मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर तथा उप–मेयर के पदों का आरक्षण सामान्य वर्ग, अनुसूचित जातियों, पिछड़ी जातियों तथा महिलाओं के लिए क्रमवार (By Rotation) में लाटरी पद्धति के अनुसार किया जाएगा।

नगर-निगम की समितियाँ
(Committees of a Municipal Corporation)

नगर–निगम की निम्नलिखित समितियाँ होती हैं, जिन्हें विशेष कार्य सौंपा जाता है–

(i) जल–आपूर्ति समिति (Water Supply Committee)

(ii) सीवरेज समिति (Sewerage Disposal Committee)

(iii) भवन कर अनुमान समिति (House Tax Assessment Committee)

(iv) वित्त समिति (Finance Committee)

(v) संविदा समिति (Contract Committee)

(vi) स्थायी समिति (Standing Committee)

उपरोक्त समितियों के अतिरिक्त महानगर क्षेत्र के विकास के लिए एक महानगर नियोजन समिति (Metropolitan Planning Committee) का गठन भी किया जाता है। जिसमें से कम–से–कम दो–तिहाई सदस्य निगम, नगरपालिकाओं तथा पंचायतों के अध्यक्षों में से चुने जाते हैं। इसके अलावा भारत सरकार, राज्य सरकार व अन्य संस्था के प्रतिनिधियों को भी इस समिति में प्रतिनिधित्व दिया जाता है। यह समिति नगर–निगम, नगरपालिका तथा पंचायतों के मध्य सामान्य योजनाओं के निर्माण व समन्वय का कार्य करती है।

निगम की बैठकें (Meetings of the Corporation) - निगम अपने कार्य का संचालन करने के लिए प्रतिमाह एक बैठक का आयोजन करता है। निगम की प्रथम बैठक मण्डल–आयुक्त द्वारा बुलाई जाती है जिसमें मेयर का चुनाव किया जाता है। ऐसी बैठक की अध्यक्षता मण्डल–आयुक्त द्वारा नियुक्त सदस्य के द्वारा की जाती है। यदि मेयर के उम्मीदवारों के मध्य बराबर–बराबर के मत पड़ते हैं तो अध्यक्ष अतिरिक्त मत के द्वारा निर्णय करता है।

इन बैठकों की अध्यक्षता (सिवाय मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर या उप–मेयर के निर्वाचन सम्बन्धी बैठक) मेयर, उसकी अनुपस्थिति म उप–मेयर द्वारा की जाती है। प्रत्येक बैठक की सूचना बैठक आरम्भ होने से 5 दिन पूर्व भेजी जाती है। निगम का सचिव प्रत्यक बैठक की कार्रवाई का संक्षिप्त रिकार्ड एक रजिस्टर में दर्ज करता है और अगली बैठक में इसकी जानकारी देता है। वह बैठक के अध्यक्ष के हस्ताक्षर भी करवाता है। कार्रवाई रिपोर्ट की सूचना प्रत्येक निगम के सदस्य को दी जाती है। निगम का सचिव बैठक आरम्भ होने के तीन दिन बाद बैठक में लिए गए निर्णय की रिपोर्ट सरकार को प्रेषित करता है और सरकार निगम सचिव से बैठक के सम्बन्ध में किसी कागजात की प्रति मंगवा सकती है।

नगर-निगम के कार्य
(Functions of a Municipal Corporation)

नगर–निगमों को वह सभी कार्य करने पड़ते हैं जिनका सम्बन्ध नागरिकों के कल्याण से है। आधुनिक समय में नगर–निगमों का उद्देश्य अपने क्षेत्र के लोगों का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विकास करना है। संसार के लगभग सभी देशों

ने अपने शहरी स्थानीय प्रशासन को नगर–निगमों व नगरपालिकाओं को सौंप रखा है। यह स्थानीय संस्थाएँ सामाजिक सेवाओं का कार्य भी करती है। भारत सरकार ने नगरपालिका अधिनियमों के तहत नगर–निगमों के कार्यों की एक लम्बी सूची अंकित कर रखी है परन्तु व्यवहार सीमित हैं। नगर–निगम के कार्यों को दो भागों में बाँटा गया है–अनिवार्य तथा ऐच्छिक कार्य।

अनिवार्य कार्य - वे कार्य होते हैं जो कि नगर–निगम को अवश्य करने होते हैं। इन कार्यों के लिए समुचित वित्तीय व्यवस्था की जाती है। इन कार्यों को पूरा करने के लिए राज्य सरकारें नगर–निगमों को पूर्ण सहयोग देती है। नगर–निगमों द्वारा किए जानेवाले अनिवार्य कार्यों का वर्णन निम्नलिखित है–

1. **सफाई सम्बन्धी कार्य (Functions regarding Sanitation)** - नगर–निगमों का मुख्य कार्य अपने नगरों की सफाई का समुचित प्रबन्ध करना है। इसके लिए नगर–निगम बड़े पैमाने पर स्थाई व अस्थाई सफाई कर्मचारियों की भर्ती करती है। नगर–निगमों द्वारा नियुक्त सफाई कर्मचारी नगर–निगम के क्षेत्र की नालियों, शौचालयों, घरेलू नालियों से गन्दे पानी और गन्दगी की निकासी का समुचित प्रबन्ध करते हैं। सड़कों पर जमा कूड़े के ढेर, कूड़ा–कर्कट आदि को हटवाना व उन पर दवाइयाँ छिड़कवाना ताकि कोई महा–बीमारी न फैल सके, नगर–निगम का ही कार्य है।

2. **जल-सप्लाई का प्रबन्ध (Arrangement of Water Supply)** - नगर–निगम अपने क्षेत्र के लोगों की सुविधाओं व आश्यकताओं के अनुसार पूरे नगर में शुद्ध पीने के पानी की व्यवस्था करती है। नगर–निगम इलाके की खपत को ध्यान में रखते हुए उन क्षेत्रों में नलकूपों व पानी की टंकियों का प्रबन्ध करती है। नगर–निगम शुद्ध पीने के पानी के स्रोतों का पता लगवाकर वहाँ नलकूप आदि लगवाती है ताकि लोगों को पीने के पानी की कमी न महसूस हो। पीने के पानी को गन्दगी से बचाने के लिए नगर–निगम के कर्मचारी पानी में कीटाणुनाशक दवाइयाँ डालते हैं ताकि लोगों को शुद्ध जल प्राप्त हो सके।

3. **रोशनी का प्रबन्ध (Arrangement of Electricity)** - नगर–निगम क्षेत्र में बिजली और रोशनी की समुचित व्यवस्था करती है। नगर–निगम द्वारा शहर की सड़कों में, बाजारों में, गलियों में बिजली व रोशनी का पूर्ण प्रबन्ध करती है। नगर–निगम अपने क्षेत्र में खराब पड़े बिजली के ट्रांसफार्मरों को बदलवाती है और खपत के अनुसार नए ट्रांसफार्मर लगवाती है। अतः नगर–निगम अपने नगर में बिजली के समुचित प्रबन्ध के लिए भी उत्तरदायी है।

4. **गन्दी बस्तियों का सुधार (Development of Slum Areas)** - नगर–निगम अपने क्षेत्रों में स्थित गन्दी बस्तियों में सुधार के लिए भरसक प्रयत्न करती है। इसके लिए नगर–निगमों ने विकास बोर्डों की स्थापना की होती है जो कि नगर की गन्दी बस्तियों का योजनाबद्ध तरीके से विकास करती है। गन्दी बस्तियों में रहनेवाले गरीब बेसहारा लोगों के लिए नगर–निगम पुनर्वास का प्रबन्ध करती है। उनके रहने के लिए कम लागत व सस्ते मकान तैयार करती है ताकि नगर की गन्दगी और गन्दी बस्तियों में कुछ सुधार हो सके।

5. **श्मशान भूमि का प्रबन्ध (Arrangement of Land to Dispose of Dead Bodies)** - नगर–निगम अपने क्षेत्र के लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार श्मशान भूमि प्रबन्ध करती है और उनकी देखभाल करना नगर–निगम का ही कर्त्तव्य है। बड़े–बड़े नगर निगम विद्युत शव दाह–गृहों का निर्माण करवाती है क्योंकि नगरों में प्रायः लकड़ी का अभाव हो जाता है। श्मशान भूमि पर टीन के शैड व नहाने के पानी का प्रबन्ध करना व उनकी देखभाल करना नगर–निगम का ही कार्य है।

6. **यातायात की सेवाओं का प्रबन्ध (Transport Facilities)** - नगर–निगम अपने नगर में यातायात की सुविधा का प्रबन्ध करती है। बड़े–बड़े नगरों में लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने–जाने में काफी समय लगता है। इसको दूर करने के लिए वहाँ की नगर–निगम अपने क्षेत्र के यातायात की समुचित सेवाओं के लिए बसों आदि का प्रबन्ध करती है।

7. **सार्वजनिक शिक्षा का प्रबन्ध (Public Education)** - नगर–निगम अपने नगर के नागरिकों की शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध करती है। शिक्षा के प्रसार और विकास के लिए नगर–निगम अपने क्षेत्र में प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च, वरिष्ठ विद्यालय खोलती है और उनका प्रबन्ध करवाती है। नगर–निगम अनाथालयों, अन्ध विद्यालयों, प्रौढ़ आश्रमों, नारी निकेतनों आदि में भी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करती है। नगर–निगम जन सहयोग से अपने क्षेत्र के निरक्षर लोगों को पढ़ाने के लिए जन साक्षरता मिशन, प्रौढ़ शिक्षा–केन्द्र आदि स्थापित करती है जहाँ वह निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करती है।

8. **सड़कें तथा पुल (Roads and Bridges)** - नगर–निगम अपने क्षेत्रों की सभी सड़कों और पुलों की देख–रेख, मरम्मत और उनका पुनर्निर्माण करती है। आवश्यकता पड़ने पर नगर–निगमों के द्वारा सड़कों और पुलों को चौड़ा किया जाता है।

नगर–निगम के क्षेत्र से गुजरनेवाले राष्ट्रीय मार्गों और महामार्गों की देख–रेख नगर–निगम राज्य सरकार के साथ मिलकर करती है। नगर–निगम खतरनाक पुलों को तुड़वाकर उनका पुनर्निर्माण करवाती है या उन्हें 'खतरनाक भवन' होने का दर्जा देती है।

9. **जन्म मरण का पंजीकरण (Registration of Births and Deaths)** - नगर–निगम अपने–अपने क्षेत्र में होनेवाले जन्म व मृत्यु का पूरा लेखा–जोखा रखती है। किसी परिवार में बच्चे के पैदा होने का पंजीकरण नगर–निगम में 14 दिन के भीतर व किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने के बाद उसका पंजीकरण 10 दिन के भीतर करवाना अनिवार्य है।

10. **अग्निशमन सेवाओं का प्रबन्ध (Arrangement of Fire Services)** - नगर–निगम अपने नगर मे लगी किसी भी आग स लोगों को बचाने के लिए अपने नगर में समुचित अग्निशमन सेवाओं का प्रबन्ध करती है। नगर में आग लगने की स्थिति से निपटने के लिए दमकल केन्द्रों की स्थापना की जाती है। आवश्यकता पड़ने पर यह नजदीकी नगरपालिकाओं से भी सहायता ल सकती है। दमकल केन्द्र के कर्मचारी आग से घिरे लोगों की सुरक्षा करते हैं।

11. **अनुमति पत्र जारी करना (To Issue Licence)** - नगर–निगम अपने नगर में चलनेवाले तांगों, ठेलों, रिक्शाओं, माटर रिक्शाओं, रेहड़ियों, छोटे दुकानदारों आदि को अनुमति पत्र जारी करती है। यह अनुमति पत्र एक वर्ष के लिए किए जाते हैं। आनेवाले वर्ष के लिए उन्हें पुनः आवेदन करना पड़ता है।

12. **सार्वजनिक स्वास्थ्य (Public Health)** - नगर–निगम अपने नगर के लोगों के स्वास्थ्य की तरफ समुचित ध्यान देते हैं। यदि देश के नागरिक स्वस्थ होंगे तो वह अपने नगर और राज्य की उन्नति में योगदान देंगे। मानसिक उन्नति के लिए शारीरिक उन्नति का होना भी अनिवार्य है। इसलिए नगर–निगम अपने नागरिकों के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखती है। निगम की तरफ से समय–समय पर विभिन्न महामारियों जैसे कि हैजा, चेचक, प्लेग, दस्त आदि से बचने के लिए टीके लगाए जात हैं। नगर–निगम द्वारा नियुक्त अधिकारी नगर का सर्वेक्षण करते रहते हैं और खाने–पीने की वस्तुओं की समय–समय पर जॉच करते हैं। यह अधिकारी गन्दी, गली–सड़ी तथा बीमारी फैलानेवाली वस्तुओं के बेचे जाने पर प्रतिबन्ध लगाती हैं। नगर–निगम अपने नगर की आवश्यकताओं के अनुसार चिकित्सा केन्द्र, प्रसूति गृहों, छोटे स्वास्थ्य–केन्द्रों का भी प्रबन्ध करती है।

13. **कर (Tax)** - नगर–निगम अपनी वित्तीय दशा को देखते हुए कुछ स्थानीय कर भी लगा सकती है। यह स्थानीय कर केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा लगाए गए करों के अतिरिक्त होता है। इन करों से नगर–निगमों को काफी आय होती है और इन करों में किसी विशेष तीर्थ स्थान की यात्रा सम्बन्धी तीर्थ कर, कुत्तों को रखने पर कर, मवेशियों की खरीद फरोख्त पर लगाया गया कर आदि शामिल है।

14. **जनता की शिकायतों पर विचार करना (To Hear People's Complaint)** - नगर–निगम जनता द्वारा की गई शिकायतों पर विचार करती है और उन्हें दूर करने का प्रयास करती है। इनमें नागरिकों की दैनिक जीवन की समस्याओं पर विचार किया जाता है।

ऐच्छिक कार्य - ऐच्छिक कार्य वे कार्य होते हैं जो आवश्यक नहीं होते हैं परन्तु वित्तीय स्रोतों के आधार पर इन्हें लागू किया जाता है। नगर–निगमों द्वारा किए जानेवाले स्वैच्छिक कार्य निम्नलिखित हैं–

1. नगर–निगम नगर के नागरिकों के मनोरंजन की तरफ भी ध्यान देती है, इसके लिए वह अपने नगर में सिनेमा, रंग–मंच, मलों, प्रदर्शनकारियों तथा खेलों का भी प्रबन्ध करती है ताकि लोगों का बढ़िया मनोरंजन हो सके।
2. नगर–निगम अपने नगर के विभिन्न क्षेत्रों में पुस्तकालयों, अखाड़ों व स्टेडियम का निर्माण करवाती है ताकि लोगों का शारीरिक व मानसिक विकास हो सके।
3. नगर–निगम नगर में सार्वजनिक गृहों का निर्माण करवाती है ताकि सामान्य जनता उनका लाभ उठा सके।
4. नगर–निगम अपने नगर में आनेवाली विभिन्न संस्थाओं जैसे कि अन्ध विद्यालय, नारी निकेतन, बाल आश्रम, प्रौढ़ आश्रम आदि का प्रबन्ध व उनकी यथासम्भव सहायता करती है।
5. नगर–निगमों के द्वारा शहर में कई जगह गरीब व्यक्तियों के इलाज के लिए निःशुल्क औषधालय खोले जाते है।

6. नगर–निगम नगर की आवश्यकताओं के अनुसार स्थाई व अस्थाई बाज़ारों का निर्माण करती है।
7. नगर–निगम शहर में होनेवाली विभिन्न शादियों का पंजीकरण करती है।
8. नगर–निगम मेलों तथा नुमाइशों का प्रबन्ध करती है।
9. नगर–निगम में आनेवाले महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों और अतिथियों का स्वागत करती है।
10. नगर–निगम नगर के बाहर भव्य प्रवेश–द्वारों का निर्माण करती है।,
11. नगर–निगम आवारा कुत्तों, सूअरों और अन्य जानवरों को पकड़ती है और उन्हें मरवा देती है।
12. लोगों के सार्वजनिक स्थानों, पार्कों, सैरगाहों आदि का निर्माण नगर–निगम करती है।
13. सड़कों के किनारे वृक्ष लगाना और उनकी देखभाल करना नगर–निगम का कार्य है।
14. बड़े–बड़े नगरों में यह लोगों की दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं जैसे–दाल, मक्खन, डबल रोटी, घी आदि का प्रबन्ध भी नगर निगमों द्वारा किया जाता है।
15. कई नगर–निगम वृद्धों, अपाहिजों एवं बेसहारा लोगों के लिए भोजन का प्रबन्ध भी करती है।
16. नगर–निगमों के द्वारा कम आयवाले व्यक्तियों के लिए घरों का निर्माण भी किया जाता है।
17. कुछ नगर–निगमों व नगरपालिकाओं द्वारा प्राथमिक व माध्यमिक स्कूलों में दोपहर का भोजन भी बच्चों को उपलब्ध करवाया जाता है।
18. कुछ नगर–निगम अपने नगर के वृद्धों को वृद्धावस्था पेंशन देती है।
19. नगर–निगम अपने कर्मचारियों के कल्याण में वृद्धि के लिए भी समय–समय पर योजनाएँ बनाती है।
20. नगर–निगम बाढ़ व सूखे की स्थिति से निपटने के लिए व्यापक कदम उठाती है और अपने नगर के लोगों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

निष्कर्ष (Conclusion) - शहरी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में नगर–निगम का बहुत महत्त्व है। बड़े–बड़े शहरों के लोगों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति नगर–निगमों के द्वारा ही की जाती है। परन्तु कुछ कार्यों को छोड़कर नगर–निगम अपने कार्यों को कार्य रूप देने में असफल रहे हैं। नगर–निगम मुख्य रूप से राज्य सरकार द्वारा निर्धारित कार्य ही पूरी करती है। जिस कारण इसकी कार्य प्रणाली पर आम जनता सन्देह प्रकट करती है। 74वें संवैधानिक संशोधन द्वारा नगरपालिकाओं के कार्यों व शक्ति में वृद्धि की गई और इन शहरी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है जिसके कारण इनके कार्यों में वृद्धि हुई है।

नगर-निगम की आय के साधन

किसी भी संगठन या संस्था की सफलता में वित्त की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बिना वित्त के कोई भी संगठन या संस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकती हैं। पर्याप्त वित्तीय संसाधनों के अभाव में सभी योजनाएँ अथवा कार्यक्रम मात्र कागज़ों तक ही सीमित रह जाते हैं। इसीलिए वित्त को प्रशासन का जीवन–रक्त कहा जाता है जिसके बिना प्रशासनिक निर्णयों को क्रियान्वित करना असम्भव बन जाता है। इसीलिए भारतीय चिन्तक कौटिल्य ने कहा था कि प्रशासन में वित्त का बहुत महत्त्व है। अतः वित्त पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। स्थानीय संस्थाओं में वित्त की व्यवस्था कई अन्य कारणों से भी महत्त्व रखती है। वस्तुतः वित्त किसी सरकार के जीवन एवं रीढ़ की हड्डी होती है। वित्त प्रशासकीय सयंत्र में ईंधन का कार्य करता है।

बढ़ते हुए शहरीकरण के कारण नगर–निगमों के कार्यों में बहुत तेजी से वृद्धि हुई। स्वतन्त्रता के समय नगर–निगम कुछ ही नगरों में स्थापित थी परन्तु स्वतन्त्रता के बाद इसका तेजी से प्रसार हुआ और नगर–निगम कई बड़े नगरों में स्थापित हो गई। इसके साथ ही इसके कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई है। नगर–वित्त और नगर कल्याण का आपस में गहरा सम्बन्ध है। अगर नगर की आय के स्रोतों पर ध्यान न दिया जाए तो नगर–प्रशासन न तो सेवाओं का प्रबन्ध कर सकता है और न ही उनमें कार्यकुशलता आ सकती

है। नगरपालिका अधिनियम में नगर–निगमों के कार्यों की एक लम्बी सूची अंकित की हुई है परन्तु धन की कमी के कारण उन्हें कार्य रूप नहीं दिया जा सकता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विकेन्द्रीकरण की नीति को स्थानीय सरकार की वित्तीय दशा पर लागू नहीं किया गया जिसके परिणामस्वरूप वे अब भी संसाधनों की कमी से ग्रस्त हैं।

भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की वित्तीय दशा व उनके वित्तीय साधन अत्यंत खराब हैं। देश के सभी वित्तीय साधनों का प्रभाव स्थानीय संस्थाओं पर पड़ता है। आज भारत स्वयं आर्थिक संकट का सामना कर रहा है जिस कारण स्थानीय प्रशासन की शहरी संस्थाएँ भी वित्तीय संकट का सामना कर रही हैं। नगर–निगमों के कुछ विधिक स्रोत होते हैं, शेष धन राशि वह अनुदानों, अंशदानों, ऋणों तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त करती है।

भारत के नगरपालिका अधिनियम के अनुसार नगर निगम की आय के स्रोतों को चार भागों में बाँटा गया है–(क) कर–स्रोत (ख) गैर–कर स्रोत (ग) लाभकारी उद्यम (घ) अनुदान। इन स्रोतों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है–

(क) कर स्रोत - नगर–निगम को कई प्रकार के कर लगाने का अधिकार प्राप्त होता है। नगर निगम अपने क्षेत्र में निम्नलिखित कर लगा सकती है–

1. **जल कर** – नगर–निगम कर के स्रोतों में मुख्य जल कर है। यह कर उन विशेष सेवाओं के लिए प्राप्त किए जाते हैं जो कि नगर–निगम द्वारा लोगों को उपलब्ध करवाए जाते हैं। कमजोर वर्ग के लोगों से जल कर नहीं लिया जाता है।

2. **सफाई कर** – नगर–निगम के कर्मचारी सफाई कर के रूप में कुछ धन राशि दुकानदारों आदि से प्राप्त करते हैं यह नगर–निगम की आय का एक अन्य साधन है।

3. **बिजली की खपत पर कर** – बिजली की खपत पर ग्राहक से कर लिया जाता है। एक व्यक्ति जितनी बिजली का उपयोग करता है नगर–निगम कर के रूप में उस व्यक्ति से उस हिसाब से धन–राशि वसूल करती है। नगरों में बढ़ते हुए औद्योगीकरण से नगर–निगमों की बिजली की खपत क्षमता में भी वृद्धि हुई है।

4. **थियेटर कर** – कई राज्यों की नगर–निगमों द्वारा सरकार की आज्ञानुसार अपने क्षेत्र की सभी रंगशालाओं से थियेटर कर वसूल करती हैं। यह कर नगर–निगम की आमदनी का एक अन्य साधन है। पंजाब और हरियाणा सरकार ने नगर–निगमों के माध्यम से यह कर लागू किए हुए हैं।

5. **गाड़ी तथा पशु-कर** – नगर–निगम कुछ विशेष तरह की गाड़ियों जैसे कि बस, ट्रक, टेम्पो आदि के रखने पर भी कर लगा सकती है।

   नगर–निगम उन व्यक्तियों से भी कर वसूल करती है जिन्होंने नगर–निगमों के क्षेत्रों में मवेशी जैसे–कुत्ते, गाय, भैंसे, सूअर, भेड़ आदि रखे हुए हैं। इनसे भी नगर–निगमों को आय होती है।

6. **सम्पत्ति पर कर** – नगर–निगम राज्य सरकार द्वारा निर्धारित सम्पत्ति से अधिक सम्पत्ति रखने पर सम्पत्ति कर लगा सकती है। नगर–निगम के अन्तर्गत आनेवाली सम्पत्ति के हस्तांतरण के सम्बन्ध में भी नगर–निगम 2 प्रतिशत की दर से कर लगा सकती है।

7. **विज्ञापनों पर कर** – नगर–निगम अपने नगर में प्रकाशित होनेवाले समाचार पत्रों को छोड़कर अन्य सभी तरह के विज्ञापनों पर सरकार की अनुमति से कर लगा सकती है। परन्तु सार्वजनिक सभाओं, संसद राज्य विधानमंडल, निगम के निर्वाचन सम्बन्धी विज्ञापन इससे विमुक्त हैं।

8. **नक्शों के पास होने पर प्राप्त होनेवाली फीस** – नगर–निगम अपने नगर में होने वाले प्रत्येक भवन का नक्शा पास करती है। नक्शा पास करवाने के लिए कुछ फीसें नगर–निगम को देनी पड़ती हैं। यह फीसें नगर निगम की आय का एक अन्य साधन हैं।

9. **चुंगी कर** – चुंगी कर ने नगर–निगमों की आय पर अत्यधिक प्रभाव डाला है। यह कर अन्य स्थानीय करों की भाँति राज्य सरकार की स्वीकृति के बाद ही लागू किया जाता है। चुंगी कर नगर–निगमों की आय का मुख्य साधन है।

नगरनिगम शहर में प्रवेश करनेवाली प्रत्येक वस्तु पर चुंगी कर लगा सकती है। परन्तु इसमें से कुछ वस्तुएँ जैसे--दवाइयाँ, खाने का कुछ सामान, अनाज आदि करों से मुक्त भी होते हैं।

10. **भूमि कर** – नगर–निगम में कुछ पैसा भूमि–कर के साथ ही इकट्ठा किया जाता है। जैसे–नगर निगम की भूमि पर लगनेवाली प्रदर्शनियों, मेले, नुमाइश, सर्कस आदि से प्राप्त धन–राशि नगर–निगम की आय का एक अन्य साधन हैं।

11. **व्यवसाय कर** – नगर–निगम अपने क्षेत्र में किए जानेवाले छोटे व्यवसायों जैसे कि कुत्ते पालना, जानवरों की हड्डियों का व्यापार, रिक्शा चलाना, पशुओं को बेचना, स्लाटर फ़ीस आदि व्यवसायों पर कर लगा सकती है। नगर–निगम इन व्यवसायों से सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति पर कर लगा सकती है।

12. **शिक्षा कर** – नगर–निगम अपने अधिकार क्षेत्र में आनेवाली गैर–सरकारी शिक्षण संस्थाओं पर आवश्यकता पड़ने पर कर लगा सकती है। यह कर वह राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बिना नहीं लगा सकती है।

13. **मनोरंजन कर** – नगर–निगम राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से अपने नगर के सिनेमा घरों, थियेटर, दंगल, आदि पर भी कर लगा सकती है। यह कर नगर–निगमों की आय का एक अन्य साधन है।

14. **उन्नति या सुधार कर** – नगर–निगम यदि किसी पिछड़े हुए क्षेत्र को विकसित करना चाहती है तो उस क्षेत्र को विकसित करने तथा उनमें अधिक सुधारों के कारण ज़मीन की बढ़ती हुई कीमतों पर उन्नति या सुधार कर लगा सकती है।

15. **तह-बाज़ारी** – नगर–निगम अपने नगर में आनेवाले बाज़ारों की दुकानों के सामने खाली स्थानों पर सामान रखने या पटरी पर बाज़ार लगाने के लिए स्थान किराए पर दे सकती है। इससे नगर–निगमों को काफी आय होती है।

16. **किराए** – नगर–निगम अपनी विशाल सम्पत्ति का कुछ हिस्सा किराए के लिए उपलब्ध करवाती हैं। इस सम्पत्ति में नगर–निगम की भूमि या मैदान, सार्वजनिक भवन, डाक बंगले, विश्राम गृह, सरायें आदि शामिल हैं। इनसे नगर–निगम को काफी आय प्राप्त होती है। पंजाब व हरियाणा में नगर–निगम की आय का एक अन्य साधन है।

17. **पथ कर (Toll Tax)** – कई नगर–निगम अपने क्षेत्र में किसी विशेष स्थान पर जाने या किसी पुल, नदी आदि का प्रयोग करने पर पथ–कर लगा देती हैं। उत्तर प्रदेश की नगर–निगम इस तरह के साधन से अपनी आय बढ़ाती है।

(ख) **गैर-कर स्रोत** - उपरोक्त वर्णित कर स्रोतों के अलावा नगर–निगम कुछ गैर–सरकारी स्रोत भी अपने अधिकार क्षेत्र में लगाती हैं। इन गैर–कर स्रोतों में गृहों से सम्बन्धित फ़ीसें, संचार के साधनों से प्राप्त आय, नगर–निगमों के क्षेत्र में आनेवाले खतरनाक उद्योग एवं घृणास्पद व्यापार आदि की अनुमति पत्र पर लिए जानेवाले शुल्क शामिल हैं।

(ग) **लाभकारी उद्यम** – नगर–निगम अपनी आय को बढ़ाने के लिए नगर में मुर्गी पालन उद्योग, सिनेमा, थियेटर और अन्य व्यापारिक संस्थान खोल सकती हैं। इन व्यापारिक संस्थानों से भी नगर–निगमों को आय होती है। नगर–निगम अपने सार्वजनिक स्थानों पर या पहाड़ी स्थानों आदि पर झील बनाकर उसमें नौकायान आरम्भ करवा सकती है। इससे नगर–निगम को काफी आय होती है। आजकल बड़े–बड़े नगरों में नगर–निगमों ने निजी कम्पनियों के साथ मिलकर लगभग प्रत्येक बड़े शहर में मनोरंजन के लिए डिज्नी लैण्ड, अप्पू घर, मिनी अप्पू घर आदि खोल रखे हैं इनसे नगर–निगमों को काफी आय प्राप्त होती है।

(घ) **राज्य सरकार से प्राप्त सहायता राशि या अनुदान** - नगर–निगम की आय का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत अनुदान है। नगर–निगमों का राजस्व उनकी आवश्यकताओं की तुलना में कम होता है। इसी कारण नगर–निगमों को कई बार घाटा उठाना पड़ता है। सरकारी अनुदान नगर–निगमों की वित्तीय स्थिति को सुधारने में सहायक होते हैं। अनुदान एक तरह का वित्तीय उपदान होता है जो राज्य सरकार नगर–निगम द्वारा उपलब्ध की जानेवाली विशेष सेवाओं के सम्बन्ध में सहायता राशि के रूप में दिया जाता है। अनुदान के रूप में नगर–निगमों को दी जानेवाली सहायता राशि को मुख्यतः शिक्षा, चिकित्सा सुविधा और नगर के विकास पर खर्च किया जाता है। यद्यपि राज्य सरकारों द्वारा नगर निगमों को दी जानेवाली सहायता राशि पर्याप्त नहीं है फिर भी नगर–निगम उपलब्ध धनराशि का निश्चित समय पर समुचित उपयोग नहीं कर पाती है।

आय के स्रोतों में वृद्धि के उपाय - नगर–निगम अपने विकास के लक्ष्य पूरे करने में असमर्थ है क्योंकि उनके सामने सबसे महत्त्वपूर्ण

समस्या वित्त की है। नगर–निगमों की आय के स्रोत सीमित हैं और इनके कार्यों की एक लम्बी सूची प्रत्येक राज्य के नगरपालिका अधिनियम में अंकित है। इसीलिए नगर–निगमों को राज्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। नगर–निगमों की वित्तीय समस्या को सुलझाने व उनकी आय के स्रोतों में वृद्धि के लिए कई सुझाव दिए गए हैं इनमें नगर–निगम की राजस्व वसूल करनेवाली मशीनरी में सुधार करके इसको अधिक शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। राज्य सरकारों को नगर–निगमों को समुचित अनुदान राशि देनी चाहिए। करों की चोरी रोकने के लिए कड़े कदम उठाने चाहिए। नगर–निगमों के कर लगाने की शक्ति में वृद्धि की जानी चाहिए। नगर–निगमों को राज्य की आय से कुछ प्रतिशत भाग देना चाहिए। दिसम्बर 1992 में पारित 74वें संवैधानिक संशोधन द्वारा नगर निगमों की वित्तीय स्थिति सुधारने सम्बन्धी कुछ कदम उठाए गए हैं। उन्हें अपने क्षेत्र में कुछ कर लगाने उनकी वसूली व खर्च करने का अधिकार दिया गया है। जरूरत इस बात की है कि इस प्रावधान को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जाए ताकि नगर–निगम अपनी वित्तीय स्थिति में आत्मनिर्भर हो सके और विकास कार्य उत्तम बना सके।

नगर-निगम के मेयर की नियुक्ति व पदच्युति (Appointment and Removal of Municipal Corporation's Mayor)

हरियाणा नगर–निगम अधिनियम, 1994 की धारा 36 के अनुसार निगम–परिषद् के सभी सदस्य अपने में से एक मेयर का चुनाव करते हैं। नगर–परिषद् का विधिवत् चुनाव हो जाने के 14 दिन बाद तक मण्डल–आयुक्त (Divisional Commissioner) नव–नियुक्त पार्षदों की मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर व उप–मेयर का चुनाव करवाने के लिए प्रथम बैठक बुलाता है। जो सदस्य मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर व उप–मेयर का चुनाव नहीं लड़ रहा, उसको मण्डल–आयुक्त बैठक की अध्यक्षता करने को कहता है।

राज्य में मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर तथा उप–मेयर के पदों का भी आरक्षण किया गया है। इन पदों को सामान्य वर्ग, अनुसूचित जाति व महिलाओं में से बारी–बारी लाटरी के माध्यम से भरा जाता है। इस प्रकार की लाटरी का ड्रा एक समिति के द्वारा निकाला जाता है। इस समिति में आयुक्त, स्थानीय शासन विभाग, निदेशक स्थानीय निकाय विभाग, सम्बन्धित जिले का उपायुक्त एवम निगम आयुक्त सम्मिलित होते हैं।

इन पदों (मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर) का चुनाव गुप्त मतदान से होता है। यदि किसी पद के लिए उम्मीदवारों के मध्य एक समान मत पड़ते हैं तो उसका निर्णय बैठक का अध्यक्ष, उम्मीदवारों की उपस्थिति में, लाटरी के द्वारा अतिरिक्त वोट (Additional Vote) के द्वारा करेगा। चुनाव सम्पन्न होने के बाद बैठक का अध्यक्ष सभी मत–पत्रों को एक सख्त लिफाफे (Stout envelope) में बन्द करके व सील करके पूरे विवरण सहित मण्डल–आयुक्त के पास भेजता है। मण्डल–आयुक्त इस लिफाफे को चुनाव तिथि से एक वर्ष तक सम्भालकर कार्यालय में सुरक्षित रखता है।

मण्डल–आयुक्त निगम–परिषद् के कुल सदस्यों में से एक–तिहाई सदस्यों के लिखित आग्रह पर, यदि वे सन्तुष्ट हैं तो, 14 दिन का नोटिस देकर मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर व उप–मेयर को हटाने के आशय से बैठक बुला सकता है। इस बैठक में यदि निगम–परिषद् 2/3 सदस्यों के समर्थन से प्रस्ताव पारित कर देती है तो मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर, उप–मेयर को अपने पदों से हटना पड़ता है और मण्डल–आयुक्त इस प्रकार के प्रस्ताव का लिखित रिकॉर्ड, अपने हस्ताक्षरों सहित, निगम की कार्रवाई पुस्तक (Proceeding Book of Corporation) में प्रविष्टि भरकर रखेगा। उल्लेखनीय है कि मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर या उप–मेयर को हटाने के आशय का प्रस्ताव 6 महीने तक नहीं बुलाया जा सकता, यदि इस प्रकार का कोई प्रस्ताव पिछली किसी बैठक में प्रस्तुत किया गया हो और वह अस्वीकृत हो चुका हो या परिवर्तित हो चुका हो।

मेयर, वरिष्ठ उप–मेयर या उप–मेयर का सामान्य कार्यकाल 5 वर्ष या उसकी सदस्यता का शेष कार्यकाल (Residue of the Term of his office), जो भी पहले सम्भव हो, होता है। इससे पहले मेयर आयुक्त को, वरिष्ठ उप–मेयर व उप–मेयर, मेयर को लिखकर अपने पद से इस्तीफा दे सकते हैं।

राज्य सरकार की स्वीकृति से मेयर को वेतन व अन्य सुविधाएँ जैसे सरकारी निवास, टेलीफोन तथा गाड़ी निगम के फंड में से प्रदान की जाती है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions) - भारत में मेयर के कार्यों व शक्तियों का वर्णन सम्बन्धित अधिनियमों में किया गया

है जो कि भिन्न–भिन्न राज्यों से अलग–अलग है। यद्यपि हरियाणा में, हरियाणा नगर–निगम अधिनियम, 1994 में मेयर की शक्तियों व कार्यों का कहीं स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया है। अतः वह निगम–परिषद् के द्वारा बनाए गए उप–विधान के अनुसार कार्य करता है।

देश के भिन्न–भिन्न नगर–निगम अधिनियमों का अध्ययन करने के बाद हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मेयर सभी राज्यों में सामान्यतः निम्नलिखित कार्य करता है–

(i) वह नगर में आयोजित किए जानेवाले भिन्न–भिन्न उत्सवों व रस्मो का प्रतिनिधित्व करता है।

(ii) वह परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है।

(iii) वह जनता से उनकी शिकायत सुनता है और परिषद् की बैठकों में उन्हें दूर करने का प्रयास करता है।

(iv) उसे निगम के रिकॉर्ड को देखने व कमिश्नर तथा राज्य सरकार से सभी प्रकार के प्रशासनिक मामलों में रिपोर्ट प्राप्त करने का अधिकार होता है।

(v) वह निगम के कार्यों का निरीक्षण करता है।

(vi) वह राज्य सरकार व आयुक्त के मध्य उचित सूचना का माध्यम होता है।

(vii) कुछ मामलों में वह, सरकार या संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श पर, नियुक्ति कर सकता है।

(viii) वह निगम की विशेष बैठक बुला सकता है।

(ix) वह संकटकाल में रूके हुए किसी कार्य को आरम्भ करवा सकता है।

(x) वह निगम की सभी स्थायी समितियों का पदेन सदस्य होता है।

(xi) वह कई प्रकार के सामाजिक कार्य भी करता है।

(xii) कुछ निगमों में मेयर वित्तीय शक्तियों का प्रयोग भी करता है।

स्थिति (Position) - नगर–निगम के भिन्न–भिन्न अधिनियम मेयर की भूमिका को सदस्य, पीठासीन अधिकारी (Presiding Officer) तथा नगर के अध्यक्ष के रूप में वर्णित हैं। उनका चुनाव पार्षदों के द्वारा किया जाता है, न कि जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से, अतः जनादेश प्राप्त नहीं होता और उसकी शक्तियों के पीछे जनशक्ति नहीं होती। इस प्रकार मेयर शक्तियों को बढ़ाने की आवश्यकता महसूस की गई है और इस सन्दर्भ में अखिल भारतीय महापौर परिषद् की विशेष समिति ने सिफारिश की है कि मेयर का चुनाव प्रत्यक्ष जनता द्वारा किया जाना चाहिए। उसके प्रत्यक्ष चुनाव से उसकी शक्तियों में वृद्धि होगी और परिषद् विवाद बढ़ने के आसार हो सकते हैं। कई राज्यों में मेयर का कार्यकाल एक वर्ष का होता है जिसे बढ़ाना चाहिए।

मेयर की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान देना चाहिए।

(1) मेयर के पद का कार्यकाल, जो कि कई राज्यों में एक वर्ष का है, को बढ़ाकर पाँच वर्ष किया जाना चाहिए ताकि वह समस्याओं को समझने के कारण नेतृत्व के गुणों का विकास कर सके।

(2) निगम के अनेक अधिनियम मेयर को मात्र औपचारिक व रस्मी शक्तियाँ प्रदान हैं। अतः उसे वास्तविक शक्तियाँ दी जानी चाहिए।

(3) राज्य सरकार और नगर–निगम के मध्य उसे ही मात्र सूचना का माध्यम माना जाना चाहिए।

(4) मेयर को अन्य समितियों के अध्यक्षों के साथ आयुक्त के निर्णयों के विरुद्ध सुनने की शक्ति दी जानी चाहिए।

(5) उसे आयुक्त की गोपनीय रिपोर्ट लिखने की शक्ति दी जानी चाहिए।

(6) आयुक्त की नियुक्ति करते समय राज्य सरकार को उसकी सलाह लेनी चाहिए।

भारत में नगर आयुक्त की शक्तियाँ एवम् कार्य
(Powers and Functions of Municipal Commissioner in India)

भारत में नगर निगम स्तर पर शासन विशेषता कार्यपालिका तथा विमर्श (deliberative) अंगों के मध्य पृथक्करण है। निगम सामान्य नीतियाँ निर्धारित करता है, उप–विधियों का निर्माण करता है, बजट को स्वीकृति प्रदान करता है तथा कार्यकारी प्रशासन पर सामान्य नजर रखता है। परन्तु सम्पूर्ण कार्यपालिका सत्ता नगर आयुक्त में निहित होती है जो कि निर्वाचित न होकर राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी है। इस प्रकार वह सत्ता तथा स्थिति में निगम के समस्तर का अधिकारी है तथा संधि कानून से अपनी शक्तियाँ प्राप्त करता है।

नगर आयुक्त के पद को जन्म देने का श्रेय सर फिरोज मेहता को दिया जा सकता है जिनका यह स्पष्ट अभिमत था कि निगम परिषद् नगर के प्रशासन हेतु सक्षम संस्था नहीं है। अतः उसे नगर शाखा का कार्य देना उचित न होगा। मेहता के अनुसार यदि नगर नगर स्तर पर योग्य व सक्षम कार्यपालिका का निर्माण करता है तो कार्यपालिका सम्बन्धी समस्त शक्तियाँ किसी एक उत्तरदायी अधिकारी को सौंप दी जाए। मेहता के इस सुझाव को 1888 में पारित मुंबई नगर निगम अधिनियम में शामिल कर लिया गया।

1907 में विकेन्द्रीकरण पर रायल कमीशन (Royal Commission on Decenteralization) ने भी यह सुझाव दिया कि एक निर्वाचित अध्यक्ष को निगम परिषद का सभापति होना चाहिए तथा प्रशासन का कार्य एक पूर्णकालिक नियुक्त अधिकारी को सौंप दिया जाना चाहिए जिस पर निगम परिषद् तथा उसकी स्थायी समिति का निर्देशन तथा नियन्त्रण रहे। इसका कारण यह दिया गया कि निर्वाचित अध्यक्ष का इस पद के अतिरिक्त अपना व्यक्तिगत व्यवसाय होगा। अतः उसके पास संतोषजनक नगर प्रशासन के लिए न तो समय होगा और न ही अनुभव। 1915 तथा 1918 के भारत सरकार के प्रस्तावों में भी कार्यपालिका व विमर्शी अंगों को अलग करने की बात कही गयी। उस समय इसका समर्थन इसीलिए भी किया गया क्योंकि ब्रिटिश शासकों के मत में यह उनके हितों के अनुकूल था कि उनके द्वारा नियुक्त अधिकारी नगर के प्रशासन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हो। चूँकि ब्रिटिश शासन काल में कलकता, मुंबई और मद्रास साम्राज्यवादी शासन के केन्द्रबिन्दु थे अतः स्वाभाविक था कि उन पर शासन का सीधा नियन्त्रण रखा जाता। ऐसे में नगर आयुक्त का पद बहुत उचित था क्योंकि समस्त सत्ता उसके हाथ में केन्द्रित थी और वह स्वयं सरकार के नियन्त्रण में था, उसी प्रकार जिस प्रकार जिले का समस्त शासन एक कलेक्टर के नियन्त्रण में था।

ऐसी आशा की जा रही थी कि स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही इस नियुक्त अधिकारी के महत्त्व को समाप्त कर दिया जाएगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। 1966 में ग्राम्य नगरीय सम्बन्ध समिति (Rural – Urban Relationship Committee) ने यह सुझाव दिया कि नगर आयुक्त के पद को उसी प्रकार बने रहने दिया जाए जैसा कि वह ब्रिटिश शासन काल में था। अतः नगर आयुक्त निगम का मुख्य कार्यपालिका अधिकारी है। वह नगर प्रशासन का केन्द्र है तथा इस रूप में वह प्राथमिक क्रम में सर्वोच्च है। उसका यह दायित्व है कि वह समस्त प्रशासनिक ढाँचे को न केवल अपने नियन्त्रण में रखे अपितु उसे उचित निर्देशन तथा मार्गदर्शन भी प्रदान करे।

नगर आयुक्त के पद को कहीं–कहीं जैसे उत्तर प्रदेश में, मुख्य नगर अधिकारी कहा जाता है। उसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है तथा सामान्यतः वह भारतीय प्रशासनिक सेवा संवर्ग का वरिष्ठ अधिकारी होता है। राज्य सरकार द्वारा नियुक्ति की व्यवस्था की आलोचना करते हुए यह कहा गया है कि यह लोकतंत्रीय तथा स्वायत्तता के सिद्धातों के विपरीत है। वास्तव में उसकी नियुक्ति निगम परिषद् द्वारा की जानी चाहिए। नियुक्ति विधि की आलोचना करते हुए यह तर्क भी रखा गया है कि जिस प्रकार से आयुक्त की नियुक्ति होती है वह नगर प्रशासन से सम्बन्धित विषयों का विशेषज्ञ कदापि नहीं हो सकता है। भारतीय प्रशासनिक सेवा संवर्ग का अधिकारी होने के कारण वह सामान्य (generalist) तो होता है, विशेषज्ञ नहीं। इसके उत्तर में यहाँ कहा जा सकता है कि नगर प्रशासन के समस्त आयामों के लिए एक विशेषज्ञ पाना असम्भव है जो भी व्यक्ति विशेषज्ञ होगा वह नगर प्रशासन से सम्बन्धित किसी एक या दो विवादों में तटस्थ निर्णय ले सकता है।

नियुक्ति विधि की आलोचना इस आधार पर भी की गयी है कि नगर आयुक्त भारतीय प्रशासनिक सेवा संवर्ग से एक निश्चित अवधि के लिए नगर निगम में आता है और फिर वापस चला जाता है। ऐसे में स्वाभाविक है कि वह नगर प्रशासन में इतनी रुचि न रखे और नियुक्त अधिकारी होने के कारण वह नगर प्रशासन के विभिन्न पहलुओं में जनता की क्रियाशील भागीदारी न प्राप्त कर सके। यह सब होते हुए भी प्रशासनिक दक्षता के दृष्टिकोण से आयुक्त नगर नियुक्त का पद उचित प्रतीत होता है।

नगर आयुक्त का कार्यकाल तीन वर्ष होता है इस कार्यकाल को राज्य सरकार बढ़ा सकती है। आवश्यकता पड़ने पर नगर आयुक्त को राज्य सरकार तीन वर्ष से पूर्व वापस भी बुला सकती है। नगर आयुक्त स्वयं सरकार में वापस जाने की प्रार्थना कर सकता

है। यदि नगर परिषद् अपनी कुल सदस्य संख्या के दो–तिहाई बहुमत से नगर आयुक्त के विरुद्ध प्रस्ताव पारित कर दे तो राज्य सरकार बाध्य है नगर आयुक्त को वापस लेने के लिए। वास्तविकता में नगर आयुक्तों को अपने पद से जल्दी–जल्दी हटाया जाता है तथा बहुत कम ही अपना तीन वर्ष का कार्यकाल पूरा कर पाते हैं।

नगर आयुक्त की शक्तियाँ

नगर आयुक्त की शाक्तियाँ बहुत विस्तृत हैं। उसकी शक्तियों को मोटे तौर से दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. वे शक्तियाँ जो कि निगम स्थापना करनेवाले अधिनियम में वर्णित हैं।
2. वे शक्तियाँ जो कि आयुक्त को निगम परिषद् अथवा उसकी स्थायी समिति द्वारा सौंपी गयी हैं।

इन स्रोतों से प्रदत्त शक्तियों को निम्न रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

a. विधायी शक्तियाँ।
b. प्रशासनिक शक्तियाँ।
c. वित्तीय शक्तियाँ।
d. आपातकालीन शक्तियाँ।

a. विधायी शक्तियाँ

नगर आयुक्त को यह अधिकार प्राप्त है कि वह निगम परिषद् की बैठक में उपस्थित हो सकता है। इसी प्रकार वह निगम की किसी भी समिति अथवा उपसमिति की बैठक में उपस्थित हो सकता है। यही नहीं वह निगम परिषद् तथा उसकी समितियों अथवा उपसमितियों की बैठक में सम्बन्धित अध्यक्ष की अनुमति से अपना दृष्टिकोण या मत प्रस्तुत कर सकता है। इसी प्रकार अध्यक्ष की अनुमति से वह किसी भी पार्षद द्वारा उठाए गए प्रश्न का उतर दे सकता है। परन्तु नगर आयुक्त को इन बैठकों में मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। साथ ही वह अपनी ओर से कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

नगर आयुक्त नगर प्रमुख और उपनगर प्रमुख के दिन–प्रतिदिन के दायित्वों को सम्पन्न करता है यदि किन्ही कारणवश नगर निगम में ये दोनों पद रिक्त पड़े हों।

b. प्रशासनिक शक्तियाँ

नगर आयुक्त निगम के अभिलेखों का रक्षक है। अतः आवश्यकता पड़ने पर किसी भी अभिलेख को प्रस्तुत करना नगर आयुक्त का दायित्व है।

नगर आयुक्त का यह कर्तव्य है कि वह निगम तथा राज्य सरकार के मध्य होनेवाले समस्त पत्राचार से नगर प्रमुख को अवगत रखे।

नगर आयुक्त नगर निगम में एक विशेष मात्रा तक वेतनवाले पदों पर स्वयं नियुक्ति कर सकता है जबकि अन्य में ये नियुक्तियाँ उसके द्वारा राज्य लोकसेवा आयोग के परामर्श से की जाती है। नगर आयुक्त की यह सत्ता अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पार्षदों द्वारा इन पदों पर अपने निकट सम्बन्धियों, समर्थकों अथवा अन्य प्रभावशाली तत्त्वों के लिए भी सिफारिश की जाती है। अतः इस माध्यम से नगर आयुक्त पार्षदों पर अपना प्रभाव स्थापित कर सकता है।

निगम की ओर से समस्त कार्यों के ठेके आयुक्त द्वारा ही दिए जाते है। ये ठेके वह निगम परिषद् की स्वीकृति से जारी करता है परन्तु एक निश्चित धन सीमा तक वह स्वेच्छा से भी ठेका दे सकता है।

नगर आयुक्त अपनी सामान्य शक्तियों, कर्तव्यों व कार्यों को अपने अधीनस्थ अधिकारियों को सौंप सकता है।

वह यह भी निर्देश देता है कि निगम की उपविधियों को प्रकाशित कर जन सामान्य के विक्रय के लिए रखा जाए।

निगम के समस्त अधिकारी तथा कर्मचारी नगर आयुक्त के अधीन होते हैं तथा उसके नियन्त्रण तथा निर्देशन से कार्य करते हैं।

अधिकारियों एवम् कर्मचारियों के अनुशासन में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

नगर आयुक्त निगम के विभिन्न अधिकारियों के मध्य कार्यो एवम् दायित्वों का वितरण करता है।

c. वित्तीय शक्तियाँ

निगम के वार्षिक आय–व्यय (बजट) को तैयार कराने का दायित्त्व निगम आयुक्त का है। इसके अन्तर्गत वह नए कर प्रस्ताव रख सकता है। आय–व्यय तैयार कराने के बाद वह उसे निगम परिषद् की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करवाता है क्योंकि निगम परिषद् को ही वित्तीय मामलों में स्वीकृति का अधिकार है।

आय–व्यय परिषद् से पारित होने के उपरान्त उसके अनुसार स्थानीय कर, चुंगी अथवा अन्य प्रकार के शुल्क आरोपित करना नगर आयुक्त का कार्य है। वह नगर परिषद की स्थायी समिति की सहमति से आय–व्यय के एक मद से उपलब्ध धन को दूसरे मद में व्यय कर सकता है।

नगर आयुक्त निगम के व्यय का वार्षिक लेखा जोखा तैयार कराता है। निगम के द्वारा विभिन्न प्रतिनिधियों (debentures) पर जो पैसा लगाया जाता है उनसे सम्बन्धित पत्रों पर आयुक्त के ही हस्ताक्षर होते है।

d. आपातकालीन शक्तियाँ

नगर आयुक्त को आपातकालीन शक्तियाँ भी प्राप्त है। यदि उसे किसी ऐसी घटना या दुर्घटना की आशंका हो जिससे निगम की सम्पति को भारी हानि होने की सम्भावना है अथवा नगर के नागरिकों का जीवन खतरे में पड़ सकता है तो वह तत्काल उचित कार्यवाही कर सकता है ताकि ऐसी घटना या दुर्घटना को रोका जा सके। परन्तु ऐसा करने पर उनका बाद में यह दायित्व हो जाता है कि निगम परिषद् को उसके द्वारा की गयी कार्यवाही, उस कार्यवाही को करने के कारण तथा उससे होनेवाले व्यय के बारे में पूर्ण जानकारी प्रदान करे।

नगर आयुक्त की स्थिति

नगर आयुक्त की शक्तियों के उपरोक्त विवरण से निगम में उसकी महत्त्वपूर्ण स्थिति स्वतः स्पष्ट हो जाती है। नगर निगम से सम्बन्धित इतने विभिन्न प्रकार के कार्य उसके पास हैं कि वह नगर प्रशासन का केन्द्र बन जाता है। या इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह पूर्णकालिक पटधारी है। इस रूप में वह अपना अधिकांश समय निगम के कार्यो को निपटाने में लगाता है ताकि वह न केवल दिन–प्रतिदिन के पत्राचार को निपटा सके वरन् निगम के विभिन्न कार्यो से सम्बन्धित ऐसी योजनाओं का निर्माण तथा क्रियान्वयन कर सके जो कि जनता के हित में हो। आयुक्त के ठीक विपरीत नगर प्रमुख होता है जोकि अंशकालिक पदधारी होता है। वह निगम के कार्यो को सामान्य निर्देशन तो प्रदान करता है पर उतना अधिक समय नहीं दे पाता है। अतः नगर आयुक्त का कार्य कठिन है और उस पर कई प्रकार के दबाव कार्य रहते हैं। परन्तु यदि वह पूर्ण क्षमता और दक्षता से कार्य करता है तो निश्चय ही नगर के जीवन को स्वच्छ एवम् रहने योग्य बनाने में वह बहुत बड़ा योगदान दे सकता है।

सिद्धांत रूप में तो नगर आयुक्त निगम परिषद का एक अभिकर्ता (एजेण्ट) मात्र है जिसका कार्य परिषद के प्रस्तावों को कार्यान्वित करना है। नगर आयुक्त को यद्यपि अनेक शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु परिषद् इन्हे आवश्यतानुसार सीमित कर सकती है। परन्तु फिर भी नगर आयुक्त की स्थिति महत्त्वपूर्ण है क्योकि निगम में विमर्शी तथा कार्यपालिका अंगों के मध्य मुख्य सम्पर्क सूत्र वही है। वह परिषद् की बैठकों में भाग भी ले सकता है तथा उसमें होनेवाले विचार–विमर्श में अपना पक्ष रख सकता है। यह व्यवस्था उसे नगर के जनमत के प्रति उत्तरदायी बनाती है। नगर आयुक्त ही निगम के कार्यो का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है तथा पार्षदों द्वारा माग होने पर आवश्यक प्रमाण प्रस्तुत करता है। किसी भी प्रकार के ठेके अथवा भूमि हस्तांतरण में निगम आयुक्त ही निगम के प्रतिनिधि ा के रूप में हस्ताक्षर करता है। इन सबसे स्पष्ट है कि निगम परिषद् का महत्त्व होते हुए भी निगम के लगभग सभी कार्य नगर आयुक्त के माध्यम से ही होते हैं।

इसी प्रकार नगर आयुक्त को अनेक कार्य निगम की स्थायी समिति को विश्वास में लेकर करने होते हैं। अनेक कार्यों को स्थायी समिति की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। वास्तव में नगर आयुक्त तथा स्थायी समिति के मध्य निकट सम्बन्ध पाया जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि नगर निगम की व्यवस्था में नगर आयुक्त को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है यद्यपि यह सत्य है कि यह महत्त्वपूर्ण कार्य उत्तरदायित्व के साथ स्थापित किया गया है अर्थात् नगर आयुक्त महत्त्वपूर्ण तो है परन्तु उसे नगर परिषद् तथा स्थायी समिति के निर्देशों को ध्यान में रखना पड़ता है।

ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध एवं समस्याएँ
(Rural-Urban Relationship and Problems)

भारत के शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय शासन की संस्थाओं का एक जाल–सा बिछा हुआ है। इनका गठन लोकतन्त्रीय ढंग से स्थानीय लोगों द्वारा किया जाता है और यह उनके प्रति उत्तरदायी होती हैं, शहरी क्षेत्रों में नगर निगम, नगरपालिकाओं, अधिसूचित क्षेत्र समितियों तथा टाउन क्षेत्र समितियों की स्थापना की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज प्रणाली को लागू किया गया है जिसके अन्तर्गत ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतों, खण्ड स्तर पर पंचायत समितियों तथा ज़िला स्तर पर ज़िला परिषदों की स्थापना की गई है। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों की स्थानीय शासन की ये संस्थाएँ भारत के बहुपक्षी विकास के महान् तथा कठिन कार्य में प्रभावशाली रूप से भागीदार हैं। हमारे देश में स्थानीय शासन की दृष्टि से ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों को दो भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में बाँटा गया है। इससे उनमें आपसी भिन्नता बढ़ती चली गई है और वे स्थानीय शासन के दो भिन्न टुकड़े बन गए हैं। इससे स्थानीय शासन के ढाँचे का विभागीकरण हो गया है। जिसमें से एक भाग को ग्रामीण स्थानीय शासन तथा दूसरे भाग को शहरी स्थानीय शासन कहते हैं।

शहरी तथा ग्रामीण स्थानीय शासन की संस्थाओं के क्षेत्राधिकार में भिन्नता है। इन संस्थाओं को कितने बड़े क्षेत्र पर अधिकार प्रदान किए जाएँ, इस विषय में अभी तक कोई सर्वमान्य मत सामने नहीं आ पाया है। ऐसा होना संभव नहीं है क्योंकि अनुभव और व्यवहार के संदर्भ में इन संस्थाओं के क्षेत्र में परिवर्तन होते रहना अधिक उपयोगी समझा जाता है। कई बार इनके क्षेत्राधिकार के विषय पर ही इनमें आपसी तनाव तथा झगड़े पैदा हो जाते हैं। ग्रामीण संस्थाओं को शहरी संस्थाओं की अपेक्षा कम शक्तियाँ तथा कम क्षेत्राधिकार दिया गया है। इसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से शहरी संस्थाएँ ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थाओं की अपेक्षा अच्छी स्थिति में हैं, परन्तु प्रायः देखा गया है कि दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं को अपने प्रोजैक्टों तथा नीतियों को लागू करने के लिए सरकारी अनुदानों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अपर्याप्त वित्तीय साधन दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं के मार्ग में सामान्यतः बाधा बने रहते हैं।

शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय शासन की संस्थाओं का गठन लोकतान्त्रिक ढंग से किया जाता है और वे इसी पद्धति के अनुसार कार्य करती हैं। इनके कार्य भी सामान्यतः एक जैसे हैं। उनका मुख्य उद्देश्य जनकल्याण करना है। स्थानीय क्षेत्रों के विकास तथा वहाँ के निवासियों को जीवन की बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने के लिए दोनों वर्गों की स्थानीय संस्थाएँ प्रयत्नशील हैं। शहरी संस्थाओं के कर्मचारियों की संख्या ग्रामीण संस्थाओं की संख्या की अपेक्षा अधिक होती है, परन्तु दोनों क्षेत्रों को कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन, पदोन्नति, सेवा निवृत्ति तथा अनुशासन आदि की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनके कर्मचारी वर्ग सम्बन्धी बहुत से नियम तो राज्य सरकारों द्वारा ही बना दिए जाते हैं। अब धीरे–धीरे सेवाओं के प्रान्तीयकरण की प्रणाली को अपनाया जा रहा है जिसके फलस्वरूप स्थानीय संस्थाओं के कर्मचारियों पर राज्य सरकार का नियन्त्रण बढ़ता जा रहा है, दोनों ही क्षेत्रों की संस्थाओं को राजनीतिक हस्तक्षेप तथा सरकारी कर्मचारियों के नौकरशाही पूर्ण व्यवहार का शिकार होना पड़ता है। उन पर किया जा रहा सरकारी नियन्त्रण भी रचनात्मक नहीं है। शहरी क्षेत्रों की संस्थाओं पर तो राज्य सरकार का स्थानीय शासन विभाग तथा उसका निदेशालय नियन्त्रण रखता है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थाओं पर सामुदायिक विकास तथा पंचायती राज विभाग द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है। ज़िले का ज़िलाधीश दोनों ही क्षेत्रों की संस्थाओं पर नियन्त्रण रखता है। शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा लोग अधिक मात्रा में शिक्षित हैं तथा वे अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हैं। वे ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों की अपेक्षा अधिक सक्रिय रूप से स्थानीय शासन में भाग लेते हैं तथा स्थानीय शासन को नगरीय सुविधाओं का प्रबन्ध करने में सहायता देते हैं।

आधुनिक युग नगरीकरण का युग है। दिन प्रतिदिन नये–नये नगरों का निर्माण हो रहा है। नगरीकरण को निम्न शब्दों में वर्णित किया गया है–

" Urbanisation is defined as the whole range of governmental organisation and processes for planning at all levels for performing the public services related to an urban area." United Nations Report on Administrative Aspects of Urbanization, New York, 1970.

आंगिक सम्बन्ध (Organic Relationship): इस समय भारत के लगभग सारे ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना

कर दी गई है। इन संस्थाओं का शहरी क्षेत्र की संस्थाओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने तथा उनमें आपसी समन्वय बढ़ाने के लिए कई राज्य सरकारों ने विशेष कानूनी उपबन्ध भी किए हैं जिनके अनुसार नगरपालिकाओं को अपने कुछ सदस्यों को अपने प्रतिनिधियों के रूप में पंचायती राज संस्थाओं में भेजने की शक्ति दी गई है। ऐसे प्रतिनिधियों का स्वरूप विभिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न है। आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, बिहार तथा गुजरात में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्ष पंचायत समितियों में नगरीय स्थानीय सस्थाओं के अध्यक्ष पंचायत समितियों में नगरीय स्थानीय संस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। मध्य प्रदेश में नगरपालिका का एक सदस्य पचायत समिति में नगरपालिका की ओर से प्रतिनिधि के रूप में भेजा जाता है। उड़ीसा में नगरपालिका का अध्यक्ष पंचायत समिति के पदेन सदस्य होते हैं। उत्तर प्रदेश में केवल अधिसूचित क्षेत्र समितियों तथा टाउन क्षेत्र समितियों को ही पंचायत समितियों में प्रतिनिधि भेजने की शक्ति दी गई है, परन्तु पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र राज्यों में इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं किया गया है।

ग्रामीण तथा नगरीय स्थानीय संस्थाओं का इस प्रकार आंगिक सम्बन्ध स्थापित कर देने से दोनों क्षेत्रों की सस्थाओं में सम्पर्क तथा सहयोग को बढ़ाने में सहायता मिली है, परन्तु इसका लाभ पंचायत समिति स्तर की अपेक्षा ज़िला परिषद् स्तर पर अधिक हुआ है क्योंकि नगरपालिकाओं के सदस्य पंचायत समिति जैसे निचले स्तर की संस्था के कार्यों में पर्याप्त दिलचस्पी नहीं लेते। कई बार पंचायत समिति की बैठकों में ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित ऐसे विषयों पर विचार किया जाता है जिनके बारे में नगरपालिका के प्रतिनिधियों को बिल्कुल कोई ज्ञान नहीं होता। इसलिए वे पंचायत समिति के कार्यों में कोई रुचि नहीं लेते। वह नगरपालिका के अधिक समीप होती है, इसलिए नगरपालिका के सदस्य उसकी कार्यवाहियों में अधिक दिलचस्पी रखते हैं। ज़िला परिषद् की स्थायी समिति आयोजन, विकास तथा यातायात की प्रगति से सम्बन्धित कार्य करती है, इसलिए नगरपालिका के सदस्यों का इसके साथ सबधित किया जाना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। पंचायत समितियों में नगरपालिकाओं द्वारा भेजे गए प्रतिनिधियों की पंचायत समिति की कार्यवाहियों में रुचि लेनी चाहिए, उन्हें देश के ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं को समझना चाहिए और उनके समाधान के लिए अपनी अनुभवी नेतृत्व तथा रचनात्मक परामर्श देना चाहिए। नगरपालिकाओं में पंचायत समितियों तथा ज़िला परिषदों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जाना चाहिए। इससे उनमें आपसी सम्पर्क तथा सहयोग और बढ़ेगा।

क्रियाकारी सम्बन्ध (Functional Relationship): ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं द्वारा किए जा रहे म्युनिसिपल कार्य लगभग एक जैसे होते हैं। उदाहरण के तौर पर सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई, पानी की सप्लाई, डाक्टरी सेवाएँ, सड़कें, गलियाँ तथा नालियाँ बनाना और उनकी मरम्मत करना तथा रोशनी का प्रबन्ध करना इत्यादि कुछ ऐसे कार्य हैं जो दोनों ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं द्वारा किए जाते हैं, इसलिए दोनों क्षेत्रों में यदि कुछ म्युनिसिपल कार्यों को मिलकर किया जाए अथवा आपसी सहयोग से किया जाए तो उससे दोहराव (Overlapping) नहीं होगी और मानवीय शक्ति तथा धन को व्यर्थ मे नष्ट होने से बचाया जा सकेगा। बहुत सी हालतों में वे अपर्याप्त वित्तीय स्रोतों तथा अपर्याप्त योग्यता के कारण अकेले म्युनिसिपल कार्यों को नहीं कर पातीं, परन्तु यदि वे आपसी सहयोग से उन्हीं कार्यों को करने लग जायें तो वे अवश्य ही नागरिकों को प्रत्येक प्रकार की बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने में सफल हो सकेंगी।

आयोजन (Planning) के क्षेत्र में भी इनके सहयोग की आवश्यकता है। एक ज़िले के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के विकास के लिए योजनाएँ किसी भी एक क्षेत्र को दृष्टि से ओझल करके नहीं बनाई जा सकतीं। ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए बनाई गई योजनाओं को उनके समीप शहरी क्षेत्रों से सम्बन्धित करना ही पड़ता है। यदि हम सम्पूर्ण देश के बहुपक्षीय विकास का उद्देश्य प्राप्त करना चाहते हैं तो ग्रामीण तथा शहरी आयोजन में ऐसा समन्वय निरन्तर रखना अति आवश्यक है, इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों की विकासशील योजनाओं को उनके साथ लगने वाले शहरी क्षेत्रों की योजनाओं से निरन्तर सम्पर्क तथा सहयोग स्थापित करना होगा, तभी हम एक विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे।

सक्रियात्मक सम्बन्ध (Operational Relationship): सभी पक्षों में से जिस पक्ष में समन्वय तथा सहयोग की अधिक आवश्यकता है वह है सक्रियात्मक क्षेत्र (Operational Field) यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें संयुक्त प्रयास तथा भागीदारी की भावना को पैदा करने तथा उसे कायम रखने की विशेष रूप से आवश्यकता है। सामाजिक तथा आर्थिक विकास के प्रोजैक्टों को प्रभावशाली ढग से लागू करने के लिए ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं में सक्रियात्मक एकसारता का होना जरूरी है। दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं के कर्मचारी वर्ग तथा सरकारी अधिकारियों के बर्ताव, नियमों तथा कार्यप्रणाली की पद्धति तथा क्षेत्रीय झगड़े दोनों क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं के मार्ग में कई प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। इन सबको दूर करने के लिए सरकार तथा दोनों क्षेत्रों को ही रचनात्मक कदम उठाने चाहिए।

ग्रामीण शहरी सम्बन्धों का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है – पंचायती राज अधिनियमों तथा म्युनिसिपल अधिनियमों के उपबन्धों को पूर्ण तथा सही ढंग से लागू किया जाना। विशेषकर भवनों के निर्माण तथा उनके आयोजन की स्वीकृति देने के लिए इन अधिनियमों की पूरी तरह पालना की जानी चाहिए। शहरीकरण की बहुत सी समस्याएँ इस कारण बढ़ गई है क्योंकि नगरपालिकाओं तथा नगर निगमों के अधिकार क्षेत्र से बाहर लोगों ने अपने आवास के लिए बनाने शुरू कर दिए हैं। ऐसी बहुत–सी कालोनियाँ शहरों से बाहर बनती जा रही हैं जिनकी स्वीकृति न तो नगरपालिका अथवा नगर निगम से ली जाती है और न ही पंचायती राज संस्थाओं से। इस समस्या की ओर सरकार व शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं को ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि बिना आयोजन के इस अवैध निर्माण का नियमन किया जा सके।

इस प्रकार अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण–शहरी स्थानीय संस्थाओं के निरन्तर विकास के लिए इनमें आपसी सहयोग तथा समन्वय होना बहुत आवश्यक है। यदि वे एक–दूसरे के साथ समीप का सम्पर्क तथा अच्छे सम्बन्ध रखेंगी, एक–दूसरे की समस्याओं को समझेंगी, उन्हें हल करने के लिए संयुक्त प्रयास करेंगी, सामाजिक तथा आर्थिक विकास के संयुक्त प्रोजेक्ट चलाएँगी, तथा एक–दूसरे के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलेंगी तभी वे भारतीय संविधान में लिखित कल्याणकारी राज्य की स्थापना के महान् लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकेंगी।

भारतीय स्थानीय संस्थाओं की समस्याओं का सम्बन्ध उनके क्षेत्र, कार्य, संगठन, सेवीवर्ग नियन्त्रण, वित्तीय प्रबन्ध तथा जनता का सहयोग आदि बातों में रहता है।

1. **क्षेत्रीय समस्याएँ (Area Problems)**- शहरी और ग्रामीण सम्बन्ध में सर्वप्रथम समस्या क्षेत्रीय है। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि संस्थाओं का अधिकार क्षेत्र कितना बड़ा रखा जाए। शहरी एवं देहाती क्षेत्रों में कार्य कर रहे विभिन्न स्थानीय निकायों को कितने बड़े क्षेत्र पर अधिकार प्रदान किया जाए। शहरी एवं देहाती क्षेत्र के बारे में अभी तक कोई सर्वमान्य मत सामने नहीं आ पाया है, ऐसा होना सम्भव नहीं है क्योंकि अनुभव और व्यवहार के संदर्भ में इन संस्थाओं का क्षेत्र बदलता रहना अधिक उपयोगी समझा जाता है। शहरी क्षेत्र के आधार पर नगर निगम, नगर परिषद्, नगरपालिका समिति (Notified) क्षेत्र समितियाँ आदि संस्थाएँ संगठित की जाती हैं।

   ग्रामीण क्षेत्र की संस्थाओं की बहुत कम शक्तियाँ होती हैं क्योंकि क्षेत्र छोटा होने के कारण कार्य व्यापक नहीं होता है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्र को अधिक व्यापक अधिकार दिए हुए होते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में ये भी देखना पड़ता है कि क्षेत्र के आधार पर वहाँ पंचायत समिति एवं जिला परिषद् का क्या आकार रखा जाए। पंचायतों के क्षेत्र का निर्धारण करते समय एक बात का ध्यान रखा जाता है कि ये संस्थाएँ आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन सकें।

   शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही स्थानीय शासन की संस्थाएँ हैं और इसके कार्य लगभग एक जैसे हैं। क्षेत्र की समस्याएँ तो एक ही हैं।

2. **कार्य समस्या (Problems of Functions)**- शहरी एवं ग्रामीण सम्बन्धों में कार्यों का जानना भी आवश्यक है। ग्रामीण संस्थाएँ जैसे ग्राम पंचायत, पंचायत समितियाँ और जिला परिषद् विकास विभाग के अधीन कार्य करती हैं इनका स्थानीय शासन विभाग से कोई सीधा सम्पर्क नहीं होता। यह उचित है कि विकास विभाग और स्थानीय शासन विभाग दोनों ही विभाग सरकार के हैं। परन्तु फिर भी शहरी और देहाती वर्ग अपना–अपना निश्चित कार्य करते हैं। इनका आपस में सम्बन्ध कम ही होता है।

3. **सेवा वर्ग नियन्त्रण सम्बन्ध समस्या (The Problems Related to Personnel Control)**- शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य जन कल्याण है। दोनों ही लोकतन्त्रीय ढंग से कार्य करती हैं। शहरों का नियन्त्रण स्थानीय शासन विभाग करता है और ग्रामीण इलाके का नियन्त्रण पंचायत विभाग के द्वारा किया जाता है। पंचायतों के कर्मचारियों की संख्या बहुत कम होती है और नगरपालिकाओं के कर्मचारी कार्यों के कारण संख्या में अधिक होते हैं। दोनों ही संस्थाओं की यह समस्या है कि कर्मचारियों की नियुक्ति प्रतियोगिता, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा निवृत्ति, अनुशासन तथा अनुशासन सम्बन्धी नियम राज्य सरकार द्वारा बनाए जाते हैं। पंचायतों का नियन्त्रण पंचायत विभाग के पास है। परन्तु फिर भी शहरी और ग्रामीण लोगों की समस्याएँ एक जैसी हैं। उनका सम्बन्ध साधारणतः एक जैसा नहीं है। यह ठीक है कि दोनों संस्थाओं को सहयोग से कार्य करना चाहिए परन्तु नियन्त्रण अलग–अलग होने के कारण कर्मचारियों सम्बन्धी समस्या उत्पन्न नहीं होती। प्रशिक्षण केन्द्रों की कमी है। जितने भी प्रशिक्षण केन्द्र हैं उनमें पर्याप्त सुविधाएँ नहीं जुटाई जातीं। कम से कम प्रशिक्षार्थियों को आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने योग्य बनाया जाए। सेवीवर्ग लोगों की सेवाओं का प्रान्तीयकरण भी कर दिया जाए। प्रान्तीयकरण से यह लाभ होगा कि पदोन्नति के अवसर बढ़ जाएँगे। कर्मचारी अपने संगठन बनाएँ जिससे वे अपनी समस्याएँ सरकार या उनके प्रतिनिधियों के समक्ष पेश कर सकें।

4. **समन्वय की समस्या (The Problem of Co-ordination)**- समन्वय की समस्या प्रत्येक संगठन में आंतरिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्व रखती है। किसी भी संगठन का सफल कार्य संचालन एवं कुशल रूप से उनके कर्त्तव्यों का निर्वाह इस बात पर

निर्भर करता है कि उसके विभिन्न अंगों और उन अंगों का कर्मचारियों के बीच कितना समन्वय है। (The Purpose of co-ordination is to achieve smooth and efficient functioning, remove bottlenecks and avoid wastage due to overlapping and duplication, co-ordination also ensures better relationship between different functionaries and institutions. - Sadiq Ali Report)

पंचायती राज संस्थाएँ स्थानीय सरकार की इकाई के रूप में कार्य करती है। उनको राज्य सरकार के अभिकरण के रूप में कार्य करना पड़ता है, राज्य सरकार अनेक कार्यक्रमों को इन्हें हस्तान्तरित कर देती है। सामुदायिक विकास से सम्बन्धित क्रियाएँ जो कि ग्रामों के आर्थिक जीवन में क्रान्ति लानेवाले प्रमुख निकाय हैं पंचायती राज संस्थाओं के सहयोग की आकांक्षा करती है। पंचायती राज को पुलिस राजस्व, जंगलात आदि विभिन्न सरकारी विभागों से भी सम्बन्ध रखना होता है। यह संगठन ग्रामीण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लिए अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य करते हैं। पंचायती राज संस्थाओं में समन्वय की पूर्णता केवल तभी आ सकती है जब कि उच्च स्तर पर समन्वय को प्रभावशाली बनाया जाए।

5. **वित्तीय समस्याएँ (The Financial Problems)**- वित्त प्रशासन जितना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है उतना ही उल्लेखनीय है। भारत में शहरी एवं देहाती दोनों ही क्षेत्रों में स्थानीय निकाय वित्त की अपर्याप्तता से प्रभावित है। वित्त की अपर्याप्तता स्थानीय निकायों के मार्ग में सामान्यतः अवरोधक बनी रही है। वे अपने कार्यक्रमों को ठीक प्रकार से नहीं चला पाते। उन्हें धन के लिए सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है जो पर्याप्त सहायता नहीं दे पाती जो दी जाती है वह समय पर नहीं मिलती है।

इनके सुधार के लिए कौन-कौन से कदम उठाए गए हैं? (What steps have been taken to improve them?)

शहरी और ग्रामीण सम्बन्धों के सुधार के लिए आमतौर पर समन्वय समितियाँ बनाई जाती हैं जिनमें इलाके के चुने हुए प्रतिनिधि मुख्यतः सम्बन्धित इलाके का M.L.A. डिप्टी कमिश्नर, जिला परिषद् अधिकारी, ब्लाक विकास तथा पंचायत अधिकारी, ग्राम पंचायतों में से इलाके का सरपंच तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को शामिल किया जाता है। इन Co-ordination Committees की समय–समय पर मीटिंग होती रहती है तथा इन कमेटियों द्वारा शहरी तथा ग्रामीण सम्बन्धों को सुधारने के लिए सरकार को सुझाव दिए जाते हैं। सरकार इन सुझावों को लागू करने के लिए उचित कार्यवाही करती है अतः यह कहा जा सकता है कि स्थानीय शासन की सफलता के लिए शहरी सम्बन्धों का सकुशल होना काफी जरूरी है।

कहा जा सकता है कि शहरी और ग्रामीण दोनों ही संस्थाओं के अलग–अलग और निश्चित कार्य हैं और उनका अन्तिम निशाना जन–कल्याण है। शहरी निकाय स्थानीय शासन विभाग के अधीन कार्य करते हैं और ग्रामीण संस्थाएँ पंचायत विभाग के अधीन कार्य करती हैं। इनकी आपस की बहुत सी समस्याएँ हैं। परन्तु यदि सरकार यह चाहती है कि ग्रामीण तथा नगरीय स्थानीय संस्थाएँ ठीक प्रकार से उन्नति के पथ पर अग्रसर हों तो इसके लिए यह आवश्यक है कि इन दोनों संस्थाओं में आपसी सहयोग तथा समन्वय की भावना उत्पन्न हो। यदि शहरी तथा ग्रामीण संस्थाएँ एक दूसरे के साथ अच्छा सम्बन्ध रखेंगी और आपसी सम्पर्क स्थापित करेंगी, एक दूसरे की समस्याओं को समझने की कोशिश करेंगी तो दोनों ही संस्थाओं को लाभ पहुँचेगा। चतुर्मुखी विकास के लिए एक–दूसरे के साथ सहयोग करके योजनाएँ बनाएँ और उन्हें कार्य रूप दें तभी भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सकती है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. नगर निगम से क्या अभिप्राय है ? इसका 74वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत संगठन बताइए।
2. नगर निगम के कार्यों तथा आय के साधनों का वर्णन कीजिए।
3. नगर निगम तथा नगर परिषद् में क्या अन्तर है ?
4. हरियाणा में नगर निगम की व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
5. नगर निगम में मेयर की नियुक्ति, शक्ति तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।
6. भारत में नगर आयुक्त की शक्तियों एवं कार्ये का वर्णन कीजिए।
7. ग्रामीण शहरी सम्बन्धों से आप क्या समझते हैं? स्थानीय सरकार में इनका क्या महत्त्व है?
8. ग्रामीण तथा शहरी सम्बन्धों में आनेवाली मुख्य बाधाओं का वर्णन कीजिए।

अध्याय-8

74वां नगरपालिका संविधान संशोधन अधिनियम, 1992

(74th Nagar-Palika Constitutional Amendment Act, 1992)

74वां नगरपालिका संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के द्वारा भारतीय संविधान में 'भाग 9 क' जोड़ा गया जिसके तहत 243 त से लेकर 243 य छ तक विभिन्न प्रावधान किए गए हैं। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रावधानों को शामिल किया गया है:–

(1) परिभाषाएं (243 त)

(2) नगरपालिकाओं का गठन (243 थ)

(3) नगरपालिकाओं की संरचना (243 द)

(4) वार्ड समितियों, आदि का गठन और संरचना (243 ध)

(5) स्थानों का आरक्षण (243 न)

(6) नगरपालिकाओं की अवधि, आदि (243 प)

(7) सदस्यता के लिए निरर्हताएं (243 फ)

(8) नगरपालिकाओं आदि की शक्तियां, प्राधिकार और उत्तरदायित्व (243 ब)

(9) नगरपालिकाओं द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्ति और उनकी निधियां (243 भ)

(10) वित्त आयोग (243 म)

(11) नगरपालिकाओं के लेखाओं की संपरीक्षा (243 य)

(12) नगरपालिकाओं के लिए निर्वाचन (243 य क)

(13) संघ राज्य क्षेत्रों को लागू होना (243 य ख)

(14) इस भाग का कतिपय क्षेत्रों को लागू न होना (243 य ग)

(15) जिला योजना के लिए समिति (243 य घ)

(16) महानगर योजना के लिए समिति (243 य ङ)

(17) विद्यमान विधियों और नगरपालिकाओं का बना रहना (243 य च)

(18) निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन (243 य छ)

(1) **परिभाषाएं (243 त)** – इस भाग में, में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) "समिति" से अनुच्छेद 243 ध के अधीन गठित समिति अभिप्रेत है;

(ख) "जिला" से किसी राज्य का जिला अभिप्रेत है;

(ग) "महानगर क्षेत्र" से दस लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाला ऐसा अभिप्रेत है जिसमें एक या अधिक समाविष्ट हैं और जो दो या अधिक नगरपालिकाओं या पंचायतों या अन्य संलग्न क्षेत्रों से मिलकर बनता है तथा जिसे राज्यपाल, इस भाग के प्रयोजनों के लिए, लोक अधिसूचना द्वारा, महानगर क्षेत्र के रूप में विनिर्दिष्ट करे;

(घ) "नगरपालिका क्षेत्र" से राज्यपाल द्वारा अधिसूचित किसी नगरपालिका का प्रादेशिक क्षेत्र अभिप्रेत है;

(ङ) "नगरपालिका" से अनुच्छेद 243 थ के अधीन गठित स्वायत्त शासन की कोई संस्था अभिप्रेत है;

(च) "पंचायत" से अनुच्छेद 243 ख के अधीन गठित कोई पंचायत अभिप्रेत है;

(छ) "जनसंख्या" से ऐसी अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना से निर्धारित की गई जनसंख्या अभिप्रेत है जिसके सुसंगत आंकड़े प्रकाशित हो गए हैं।

(2) **नगरपालिकाओं का गठन (243 थ)** –

(1) प्रत्येक राज्य में, इस भाग के उपबंधों के अनुसार,–

(क) किसी संक्रमणशील क्षेत्र के लिए, अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में संक्रमणगत क्षेत्र के लिए कोई नगर पंचायत का (चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो);

(ख) किसी लघुत्तर नगरीय क्षेत्र के लिए नगरपालिका परिषद् का; और

(ग) किसी वृहत्तर नगरीय क्षेत्र के लिए नगर निगम का, गठन किया जाएगा:

परन्तु इस खण्ड के अधीन कोई नगरपालिका ऐसे नगरीय क्षेत्र या उसके किसी भाग में गठित नहीं की जा सकेगी जिसे राज्यपाल, क्षेत्र के आकार और उस क्षेत्र में किसी औद्योगिक स्थापन द्वारा दी जा रही या दिए जाने के लिए प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं और ऐसी अन्य बातों को, जो वह ठीक समझे, ध्यान में रखते हुए, लोक अधिसूचना द्वारा, औद्योगिक नगरी के रूप में विनिर्दिष्ट करे।

(2) इस अनुच्छेद में, "संक्रमणशील क्षेत्र", "लघुतर नगरीय क्षेत्र" या "वृहत्तर नगरीय क्षेत्र" से ऐसा क्षेत्र अभिप्रेत है जिसे राज्यपाल, इस भाग के प्रयोजनों के लिए, उस क्षेत्र की जनसंख्या की सघनता, स्थानीय प्रशासन के लिए उत्पन्न राजस्व, कृषि से भिन्न क्रियाकलापों में नियोजन की प्रतिशतता, आर्थिक महत्त्व या ऐसी अन्य बातों का, जो वह ठीक समझे, ध्यान में रखते हुए, लोक अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

(3) **नगरपालिकाओं का संरचना (243 द)** –

(1) खंड (2) में जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय, किसी नगरपालिका के सभी स्थान नगरपालिका क्षेत्र में प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने हुए व्यक्तियों द्वारा भरे जाएंगे और इस प्रयोजन के लिए, प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा जो वार्ड के नाम से ज्ञात होंगे।

(2) किसी राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा,–

(क) नगरपालिका में–

(i) नगरपालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले व्यक्तियों का;

(ii) लोक सभा के ऐसे सदस्यों का और राज्य की विधान सभा के सदस्यों का, जो उप निर्वाचन–क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनमें कोई नगरपालिका क्षेत्र पूर्णतः या अंशतः समाविष्ट है;

(iii) राज्य सभा के ऐसे सदस्यों का और राज्य की विधान परिषद् के ऐसे सदस्यों का जो नगरपालिका क्षेत्र के भीतर निर्वाचकों के रूप में रजिस्ट्रीकृत हैं;

(iv) अनुच्छेद 243 ध के खंड (5) के अधीन गठित समितियों के अध्यक्षों का, प्रतिनिधित्व करने के लिए उपबंध कर सकेगा:

परन्तु पैरा (i) में निर्दिष्ट व्यक्तियों को नगरपालिका के अधिवेशनों में मत देने का अधिकार नहीं होगा;

(ख) किसी नगरपालिका के अध्यक्ष के निर्वाचन की रीति का उपबंध कर सकेगा।

(4) **वार्ड समितियों, आदि का गठन और संरचना (243 ध)** –

(1) ऐसी नगरपालिका के, जिसकी जनसंख्या तीन लाख या उससे अधिक है, प्रादेशिक क्षेत्र के भीतर वार्ड समितियों का गठन किया जाएगा, जो एक या अधिक वार्डों से मिलकर बनेगी।

(2) राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा–

(क) वार्ड समिति की संरचना और उसके प्रादेशिक क्षेत्र की बाबत;

(ख) उस रीति की बाबत जिससे किसी वार्ड समिति में स्थान भरे जाएंगे, उपबंध कर सकेगा।

(3) वार्ड समिति के प्रादेशिक क्षेत्र के भीतर किसी वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला किसी नगरपालिका का सदस्य उस समिति का सदस्य होगा।

(4) जहां कोई वार्ड समिति,–

(क) एक वार्ड से मिलकर बनती है वहां नगरपालिका में उस वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला सदस्य; या

(ख) दो या अधिक वार्डों से मिलकर बनती है वहां नगरपालिका में ऐसे वार्डों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों में से एक सदस्य, जो उस वार्ड समिति के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाएगा, उस समिति का अध्यक्ष होगा।

(5) इस अनुच्छेद को किसी बात से यह नहीं समझा जाएगा कि वह किसी राज्य के विधान–मण्डल को वार्ड समितियों के अतिरिक्त समितियों का गठन करने के लिए कोई उपबन्ध करने से निवारित करती है।

(5) **स्थानों का आरक्षण (243 न)** –

(1) प्रत्येक नगरपालिका में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे और इस प्रकार आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, उस नगरपालिका में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही होगा जो उस नगरपालिका क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की अथवा उस नगरपालिका क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से है और ऐसे स्थान किसी नगरपालिका के भिन्न–भिन्न निर्वाचन–क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

(2) खंड (1) के अधीन आरक्षित स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक–तिहाई स्थान, यथास्थिति, अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे।

(3) प्रत्येक नगरपालिका में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक–तिहाई स्थान (जिनके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी है) स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे और ऐसे स्थान किसी नगरपालिका के भिन्न–भिन्न निर्वाचन–क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

(4) नगरपालिकाओं में अध्यक्षों के पद अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और स्त्रियों के लिए रीति से आरक्षित रहेंगे जो राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा, उपबन्धित करे।

(5) खंड (1) और खंड (2) के अधीन स्थानों का आरक्षण और खंड (4) के अधीन अध्यक्षों के पदों का आरक्षण (जो स्त्रियों के लिए आरक्षण से भिन्न है) अनुच्छेद 334 में विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेगा।

(6) इस भाग की कोई बात किसी राज्य के विधान–मण्डल को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में किसी नगरपालिका में स्थानों के या नगरपालिकाओं में अध्यक्षों के पद के आरक्षण के लिए कोई उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी।

(6) **नगरपालिकाओं की अवधि, आदि (243 घ)** –

(1) प्रत्येक नगरपालिका, यदि तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती है तो, अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक बनी रहेगी, इससे अधिक नहीं !

परन्तु किसी नगरपालिका का विघटन करने के पूर्व उसे सुनवाई का उचित अवसर दिया जाएगा।

(2) तत्समय प्रवृत किसी विधि के किसी संशोधन से किसी स्तर पर ऐसी नगरपालिका का, जो ऐसे संशोधन के ठीक पूर्व कार्य कर रही है, तब तक विघटन नहीं होगा जब तक खंड (1) में विनिर्दिष्ट उसकी अवधि समाप्त नहीं हो जाती।

(3) किसी नगरपालिका का गठन करने के लिए निर्वाचन,–

(क) खंड (1) में विनिर्दिष्ट उसकी अवधि की समाप्ति के पूर्व;

(ख) उसके विघटन की तारीख से छह मास की अवधि की समाप्ति के पूर्व, पूरा किया जाएगा:

परन्तु जहां वह शेष अवधि, जिसके लिए विघटित नगरपालिका बनी रहती, छह मास से कम है वहां ऐसी अवधि के लिए उस नगरपालिका का गठन करने के लिए इस खंड के अधीन कोई निर्वाचन कराना आवश्यक नहीं होगा।

(4) किसी नगरपालिका की अवधि की समाप्ति के पूर्व उस नगरपालिका के विघटन पर गठित की गई कोई नगरपालिका, उस अवधि के केवल शेष भाग के लिए बनी रहेगी जिसके लिए विघटित नगरपालिका खंड (1) के अधीन बनी रहती, यदि वह इस प्रकार विघटित नहीं की जाती।

(7) **सदस्यता के लिए निरर्हताएं (243 फ)** –

(1) कोई व्यक्ति किसी नगरपालिका का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा–

(क) यदि वह संबंधित राज्य के विधान–मण्डल के निर्वाचनों के प्रयोजनों के लिए तत्समय प्रवृत किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है:

परन्तु कोई व्यक्ति इस आधार पर निरर्हित नहीं होगा कि उसकी आयु पच्चीस वर्ष से कम है, यदि उसने इक्कीस वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है;

(ख) यदि वह राज्य के विधान–मण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है।

(2) यदि यह प्रश्न उठता है कि किसी नगरपालिका का कोई सदस्य खंड (1) में वर्णित किसी निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं तो वह प्रश्न ऐसे प्राधिकारी को, और ऐसी रीति से, जो राज्य विधान–मण्डल, विधि द्वारा, उपबंधित करे, विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाएगा।

(8) **नगरपालिकाओं आदि की शक्तियां, प्राधिकार और उत्तरदायित्व (243 ब)** – इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा–

(क) नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों और ऐसी विधि में नगरपालिकाओं को, ऐसी शर्तों

के अधीन रहते हुए, जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाएं, निम्नलिखित के संबंध में शक्तियाँ और उत्तरदायित्व न्यागत करने के लिए उपबंध किए जा सकेंगे, अर्थात्:–

(i) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना;

(ii) ऐसे कृत्यों का पालन करना और ऐसी स्कीमों को, जो उन्हें सौंपी जाएं, जिनके अंतर्गत वे स्कीमें भी हैं जो बारहवीं अनूसूची में सूचीबद्ध विषयों के संबंध में हैं, कार्यान्वित करना;

(ख) समितियों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा जो उन्हें अपने को प्रदत्त उत्तरदायित्वों को, जिनके अन्तर्गत वे उत्तरदायित्व भी हैं जो बारहवीं अनुसूची से सूचीबद्ध विषयों के संबंध में हैं, कार्यान्वित करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों।

(9) **नगरपालिकाओं द्वारा कर अधिरोपित कराने की शक्ति और उनकी निधियां (243 भ)** – किसी राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा, –

(क) ऐसे कर, शुल्क, पथकर और फीसें उद्गृहीत, और विनियोजित करने के लिए किसी नगरपालिका को, ऐसी प्रक्रिया के अनुसार और ऐसे निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए, प्राधिकृत कर सकेगा;

(ख) राज्य सरकार द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत ऐसे कर, शुल्क पथकर और फीसें किसी नगरपालिका को, ऐसे प्रयोजनों के लिए तथा ऐसी शर्तों और निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए, समनुदिष्ट कर सकेगा;

(ग) राज्य की संचित निधि में से नगरपालिकाओं के लिए ऐसे सहायता अनुदान देने के लिए उपबन्ध कर सकेगा; और

(घ) नगरपालिकाओं द्वारा या उनकी ओर से क्रमशः प्राप्त किए गए सभी धनों को जमा करने के लिए ऐसी निधियों का गठन करने और उन निधियों का गठन करने और उन निधियों में से ऐसे धनों को निकालने के लिए भी उपबन्ध कर सकेगा,

जो विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

(10) **वित्त आयोग (243 म)** –

(1) अनुच्छेद 243 झ के अधीन गठित आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का भी पुनर्विलोकन करेगा और जो–

(क) (i) राज्य द्वारा उद्ग्रहणीय ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के शुद्ध आगमों के राज्य और नगरपालिकाओं के बीच, जो इस भाग के अधीन उनमें विभाजित किए जाएं, वितरण को भी सभी स्तरों पर नगरपालिकाओं के बीच ऐसे आगमों के तत्संबंधी भाग के आबंटन को;

(ii) ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के अवधारणा को, जो नगरपालिकाओं को समनुदिष्ट की जा सकेंगी या उनके द्वारा विनियोजित की जा सकेंगी;

(iii) राज्य की संचित निधि में से नगरपालिकाओं के लिए सहायता अनुदान को, शासित करने वाले सिद्धान्तों के बारे में;

(ख) नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक अध्युपायों के बारे में;

(ग) नगरपालिकाओं के सुदृढ़ वित्त के हित में राज्यपाल द्वारा वित्त आयोग को निर्दिष्ट किए गए किसी अन्य विषय के बारे में,

राज्यपाल को सिफारिश करेगा।

(2) राज्यपाल इस अनुच्छेद के अधीन आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को, उस पर की गई कार्रवाई के

स्पष्टीकारक ज्ञापन सहित, राज्य के विधान–मण्डल के समक्ष रखवाएगा।

(11) **नगरपालिकाओं के लेखाओं की संपरीक्षा (243 य)** – किसी राज्य का विधान–मण्डल, विधि, विधि द्वारा, नगरपालिकाओं द्वारा लेखे रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा करने के बारे में उपबंध कर सकेगा।

(12) **नगरपालिकाओं के लिए निर्वाचन (243 य क)** –

(1) नगरपालिकाओं के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण, अनुच्छेद 243 ट में निर्दिष्ट राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होगा।

(2) इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा, नगरपालिकाओं के निर्वाचनों से संबंधित या संसक्त सभी विषयों के संबंध में उपबन्ध कर सकेगा।

(13) **संघ राज्य क्षेत्रों को लागू होना (243 य ख)** – इस भाग के उपबन्ध संघ राज्यक्षेत्रों को लागू होंगे और किसी संघ राज्यक्षेत्र को उनके लागू होने में इस प्रकार प्रभावी होंगे मानो किसी राज्य के राज्यपाल के प्रति निर्देश, अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त संघ राज्यक्षेत्र के प्रशासक के प्रति निर्देश हों और किसी राज्य के विधान–मण्डल या विधान सभा के प्रति निर्देश, किसी ऐसे संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, जिसमें विधान सभा है, उस विधान सभा के प्रति निर्देश हों;

परन्तु राष्ट्रपति, लोक अधिसूचना द्वारा, यह निर्देश दे सकेगा कि इस भाग के उपबन्ध किसी संघ राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग को ऐसे उपवादों और उपान्तरणों के अधीन रहते हुए, लागू होंगे जो वह अधिसूचना में विनिर्दिष्ट करे।

(14) **इस भाग का कतिपय क्षेत्रों को लागू न होना (243 य ग)** –

(1) इस भाग की कोई बात अनुच्छेद 244 के खंड (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों और इसके खंड (2) में निर्दिष्ट जनजाति क्षेत्रों को लागू नहीं होगी।

(2) इस भाग की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह पश्चिमी बंगाल राज्य के दार्जिलिंग जिले के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन गठित दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद् के कृत्यों और शक्तियों पर प्रभाव डालती है।

(3) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, संसद्, विधि द्वारा, इस भाग के उपबन्धों का विस्तार खंड (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों और जनजाति क्षेत्रों पर, ऐसे अपवादों और उपान्तरणों के अधीन रहते हुए, कर सकेगी जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसे किसी विधि का अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिए इस संविधान का संशोधन नहीं समझा जाएगा।

(15) **जिला योजना के लिए समिति (243 य घ)** –

(1) प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर, जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समेकन करने और सम्पूर्ण जिले के लिए एक विकास योजना प्रारूप तैयार करने के लिए, एक जिला योजना समिति का गठन किया जायेगा।

(2) राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा निम्नलिखित की बाबत उपबन्ध कर सकेगा, अर्थात् –

(क) जिला योजना समितियों की संरचना;

(ख) वह रीति जिससे ऐसी समितियों में स्थान भरे जाएंगे;

परन्तु ऐसी समिति की कुल सदस्य संख्या के कम से कम चार बटा पांच सदस्य, जिला स्तर पर पचायत

के और जिले में नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा, अपने में से, जिले में ग्रामीण क्षेत्रों की और नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या के अनुपात के अनुसार निर्वाचित किए जाएंगे;

(ग) जिला योजना से संबंधित ऐसे कृत्य जो ऐसी समितियों को समनुदिष्ट किए जाएं;

(घ) वह रीति जिससे ऐसी समितियों के अध्यक्ष चुने जाएंगे।

(3) प्रत्येक जिला योजना समिति, विकास योजना प्रारूप तैयार में–

(क) निम्नलिखित का ध्यान रखेगी, अर्थात्–

(i) पंचायतों और नगरपालिकाओं के सामान्य हित के विषय, जिनके अंतर्गत स्थानिक योजना, जल तथा अन्य भौतिक और प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सा बंटाना, अवसंरचना का एकीकृत विकास और पर्यावरण संरक्षण है;

(ii) उपलब्ध वित्तीय या अन्य संसाधनों की मात्रा और प्रकार;

(ख) ऐसी संस्थाओं और संगठनों से परामर्श करेगी जिन्हें राज्यपाल, आदेश द्वारा, विनिर्दिष्ट करे।

(4) प्रत्येक जिला योजना समिति का अध्यक्ष, विकास योजना, जिसकी ऐसी समिति द्वारा सिफारिश की जाती है, राज्य सरकार को भेजेगा।

(16) **महानगर योजना के लिए समिति (243 य ङ) –**

(1) प्रत्येक महानगर क्षेत्र में, संपूर्ण महानगर क्षेत्र के लिए विकास योजना प्रारूप तैयार करने के लिए, एक महानगर योजना समिति का गठन किया जाएगा।

(2) राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा, निम्नलिखित की बाबत उपबन्ध कर सकेगा, अर्थात्–

(क) महानगर योजना समितियों की संरचना;

(ख) वह रीति जिससे ऐसी समितियों में स्थान भरे जाएंगे:

परन्तु ऐसी समिति के कम से कम दो–तिहाई सदस्य, महानगर क्षेत्र में नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों और पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा, अपने में से, उस क्षेत्र में नगरपालिकाओं की और पंचायतों की जनसंख्या के अनुपात के अनुसार निर्वाचित किए जाएंगे;

(ग) ऐसी समितियों में भारत सरकार और राज्य सरकार का तथा ऐसे संगठनों और संस्थाओं का प्रतिनिधित्व जो ऐसी समितियों को समनुदिष्ट कृत्यों को कार्यन्वित करने के लिए आवश्यक समझे जाएं;

(घ) महानगर क्षेत्र के लिए योजना और समन्वय से संबंधित ऐसे कृत्य जो ऐसी समितियों को समनुदिष्ट किए जाएं;

(ङ) वह रीति जिससे ऐसी समितियों के अध्यक्ष चुने जाएंगे।

(3) प्रत्येक महानगर योजना समिति, विकास योजना प्रारूप तैयार करने में,–

(क) निम्नलिखित का ध्यान रखेगी, अर्थात्–

(i) महानगर क्षेत्र में नगरपालिकाओं और पंचायतों द्वारा तैयार की गई योजनाएं;

(ii) नगरपालिकाओं और पंचायतों के सामान्य हित के विषय, जिनके अन्तर्गत उस क्षेत्र की समन्वित स्थानिक योजना, जल तथा अन्य भौतिक और प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सा बंटाना, अवसंरचना का एकीकृत विकास और पर्यावरण संरक्षण है;

(iii) भारत सरकार और राज्य द्वारा निश्चित समस्त उद्देश्य और पूर्विकताएं;

(iv) उन विनिधानों की मात्रा और प्रकृति जो भारत सरकार और राज्य सरकार के अभिकरणों द्वारा महानगर क्षेत्र में किए जाने संभाव्य हैं तथा अन्य उपलब्ध वित्तीय या अन्य संसाधन,

(ख) ऐसी संस्थाओं और संगठनों से परामर्श करेगी जिन्हें राज्यपाल, आदेश द्वारा, विनिर्दिष्ट करे।

(4) प्रत्येक महानगर योजना समिति का अध्यक्ष, वह विकास योजना, जिसकी ऐसी समिति द्वारा सिफारिश की जाती है, राज्य सरकार को भेजेगा।

(17) **विद्यमान विधियों और नगरपालिकाओं का बना रहना (243 य च)** – इस भाग में किसी बात के होते हुए भी, संविधान (चौहत्तरवां संशोधन) अधिनियम 1992 के प्रारम्भ के ठीक पूर्व किसी राज्य में प्रवृत्त नगरपालिकाओं से संबंधित किसी विधि का कोई उपलबन्ध, जो इस भाग के उपबन्धों से असंगत है, जब तक सक्षम विधान–मण्डल द्वारा या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे संशोधित या निरसित नहीं कर दिया जाता है या जब तक ऐसे प्रारम्भ से एक वर्ष समाप्त नहीं हो जाता है, इनमें से जो भी पहले हो, तब तक प्रवृत्त बना रहेगाः

परन्तु ऐसे प्रारम्भ के ठीक पूर्व विद्यमान सभी नगरपालिकाएं, यदि उस राज्य की विधान सभा द्वारा या ऐसे राज्य की दशा में, जिसमें विधान परिषद् है, उस राज्य के विधान–मण्डल के प्रत्येक सदन द्वारा पारित इस आशय के संकल्प द्वारा पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती हैं तो अपनी अवधि की समाप्ति तक बनी रहेंगी।

(18) **निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन (243 य छ)** – इस संविधान में किसी बात क होते हुए भी,–

(क) अनुच्छेद 243 य क के अधीन बनाई गई या बनाई जाने के लिए तात्पर्यित किसी ऐसी विधि की विधिमान्यता, जो निर्वाचित–क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन–क्षेत्रों को स्थानों के आबंटन से संबंधित हैं, किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं की जाएगी;

(ख) किसी नगरपालिका के लिए कोई निर्वाचन, ऐसी निर्वाचन अर्जी पर ही प्रश्नगत किया जाएगा जो ऐसे प्राधिकारी को और ऐसी रीति से प्रस्तुत की गई है जिसका किसी राज्य के विधान–मण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन उपबन्ध किया जाए, अन्यथा नहीं।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

74वां नगरपालिका संविधान अधिनियम में वर्तमान नगरीय स्थानीय सरकारों की संरचना एवं उनके संगठन में दोषों, न्यूनताओं एवं अपर्याप्ताओं को दूर करने एवं उन्हें सशक्त बनाने का प्रयास किया गया है। इस अधिनियम की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसके द्वारा नगरीय स्थानीय निकायों को संवैधानिक प्रस्थिति प्रदान की गयी है तथा भारत में निर्वाचन आयोग को इन निकायों को चुनाव कराने का दायित्व सुपुर्द किया गया है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय वित्त आयोग के समान एक म्यूनिसिपल वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है जो स्थानीय निकायों की वित्तीय आवश्यकताओं का अध्ययन करेगा एवं उनकी वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु सुझाव देगा। तीन स्तरीय प्रणाली तथा मोहल्ला अथवा वार्ड समिति इस अधिनियम की एक अन्य विशेषता है।

यद्यपि अधिनियम नगरीय स्थानीय निकायों को पुनर्गठित करने एवं उन्हें नगर निवासियों के कल्याण हेतु सशक्त एवं प्रभावी संयंत्र बनाने की दिशा में एक सराहनीय पग है, तथापि इसकी निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की गयी है–

(i) ***राजनीतिक दलों एवं लोगों से परामर्श नहीं किया गया (Political Parties and People not Consulted)*** – यदि सरकार अपने कार्य को प्रजातंत्रीय ढंग से करना चाहती है एवं सत्ता लोगों तक ले जाना चाहती है तो इसे प्रथम लोगों से तथा तदुपरांत नौकरशाही से परामर्श करना चाहिए। परन्तु आलोचकों का आरोप है कि यह सोचना कोरा अहम् है कि अकेला सत्ताधारी दल ही यह जानता है कि देश के लिए क्या अच्छा है एवं केवल प्रधानमंत्री ही यह

जानता है कि दल के हित में क्या अच्छा है। उनका सुझाव था कि राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 263 के अधीन स्थापित अन्तर–राज्य परिषद् राज्यों के साथ ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों तथा पंचायती राज एवं नगरपालिका के बारे में विचार–विमर्श करने हेतु सर्वोत्तम माध्यम हो सकता था परन्तु परिषद् की स्थापना नहीं की गयी। अतएव, परमार्श लिए जाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हुआ। चन्द्रशेखर सरकार द्वारा 1990 में अन्तर–राज्य परिषद् की स्थापना की गयी।

(ii) ***गैर-कांग्रेसी सरकारों द्वारा मुख्यमंत्री सम्मेलन का बहिष्कार (Boycotting of Chief Minister's Conference by the Chief Ministers of Non-Congress Governments)*** – गैर–कांग्रेसी सरकारों के मुख्यमंत्रियों ने केन्द्र द्वारा प्रस्तावित संवैधानिक संशोधन एवं नगरीय स्थानीय निकायों को अधिक शक्तियां देने के बारे में व्यापक विचार–विमर्श हेतु आयोजित मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन का बहिष्कार किया। सम्बन्धित मुख्यमंत्रियों ने अपने द्वारा बहिष्कार को इस तर्क पर उचित ठहराया कि प्रधानमंत्री ने संविधान में संशोधन करने (लोकसभा में अपने निरंकुश बहुमत के बल पर) जिसके द्वारा नगरपालिकाओं एवं अन्य स्थानीय निकायों को केन्द्र द्वारा निधियों का प्रत्यक्ष आबंटन किया जाता है, के बारे में पूर्व ही निर्णय ले लिया है। ऐसी परिस्थिति में, मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन प्रधानमंत्री के विचारों को राष्ट्रीय सहमति का आवरण पहिचान की केवल मात्र एक चाल थी। उनके विचार में प्रस्तावित अधिनियम संविधान को संघीय संरचना की इसे जिलों एवं नगरपालिकाओं जिनकी निष्ठा सीधे केन्द्र के प्रति होगी, में विखण्डित करके क्षति पहुंचायेगा।

(iii) ***बिल की प्रस्तावना के पीछे संदिग्ध (Timing of the Introduction of Bill Suspects Sponsor's Motives)*** – आलोचकों का कथन है कि नगरपालिका अधिनियम अपने स्वरूप में इतना दोषयुक्त नहीं है जितना आरम्भ समय एवं इसके प्रयोजकों के अभिप्रायों में। किसी सरकार की अपने पांच वर्ष के कार्यकाल के अन्त में लोगों तक पहुंचाने की आवश्यकता के बारे में वाक्पटुता प्रदर्शित करना प्रश्न का विषय है। यह स्वीकारते हुए भी कि राजनीति के खेल में दल अपने सर्वोत्तम कार्यक्रमों के अन्त समय के लिए आरक्षित रखते हैं, समय का प्रश्न तो बना रहता है। नेहरू रोजगार योजना के अधीन नगरीय लोगों के लिए विशाल निधियों की वचनबद्धता तथा स्थानीय नगर निकायों को केन्द्र से सीधे निधियों का आबंटन एक महान राजनीतिक उद्देश्य की ओर इंगित करता है। मतदाताओं के लिए निस्संदेह चुनावपूर्ण ऐसी उदात्त भेंट स्वागत योग्य है परन्तु यह 'लोकवादी चाल' के दोष से विमुक्त नहीं है।

(iv) ***राज्यों से उनके क्षेत्राधिकार को नगरपालिकाओं को अन्तरित कर देने के बारे में परामर्श नहीं दिया गया (States not Consulted in Passing on their Jurisdiction to Nagar-palikas)*** – स्वशासन राज्य विषय है परन्तु राज्यों से अधिनियम के बारे में परामर्श नहीं लिया गया है। इस विषय पर कानून बनाना अथवा समान प्रतिरूप के बारे में सुझाव देना केन्द्र का कार्य नहीं है। राज्यों को क्षेत्राधिकार उनसे परामर्श किए बिना नगरपालिकाओं को अन्तरित किया जा रहा है। आरोप है कि लगभग एक सौ अधिकारियों के साथ बैठक राज्यों के साथ संवैधानिक परामर्श का प्रतिस्थापन नहीं हो सकता।

(v) ***अधिनियम में केन्द्र-राज्यों व सम्बन्धों का प्रश्न, अतएव न्यायालयों में चुनौती योग्य (Involvement of Centre-State Relations in the Bill and therefore Challengeable in Courts of Law)*** – सरकार के कथन कि अधिनियम में केन्द्र–राज्यों के सम्बन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, के बावजूद इन सम्बन्धों का प्रश्न अवश्य नहित है। अधिनियम के साथ संलग्न बारहवीं सूची में, जन स्वास्थ्य राज्य सूची की क्रमसंख्या 6 है एवं इसी प्रकार स्वच्छता, मल निकास, हस्पताल, जन स्वास्थ्य उपचार–गृह हैं। पशु–सेवा आईटम में 15 है कब्रिस्तान 16वें क्रम पर है। वास्तव में बारहवीं सूची में वर्णित 37 विषयों में से अधिकांश राज्य सूची में सम्मिलित हैं, जबकि केवल कुछेक ही समवर्ती सूची में है। राज्य अथवा समवर्ती सूचियों में इन विषयों को नये अधिनियम में एक पक्षीय तौर पर हिला दिया गया है। क्या इससे संविधान की मूल संरचना प्रभावित होती है, जटिल संवैधानिक प्रश्न है। परन्तु इसे निश्चय ही न्यायालय में चुनौती दी जायेगी, यदि यह संविधान का भाग बन जाता है।

(vi) ***स्थानीय सरकार के प्रस्तावित स्तरों के मध्य स्पष्ट सम्बन्धों का वर्णन नहीं किया गया (No Clearcut Relationship between the Tiers of Governments)*** – अधिनियम में प्रशासन का तीसरा स्तर स्थापित किया गया है परन्तु इसमें

केन्द्र, राज्यों एवं नगरपालिकाओं के मध्य सम्बन्धों का स्पष्ट वर्णन नहीं है। जहां तक केन्द्र–राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का प्रश्न है, विशेषज्ञों का मत है कि संविधान केन्द्र की ओर झुका हुआ है। प्रशासन का तीसरा स्तर कहां पर प्रवेश करता है; क्या केन्द्र एवं नगरपालिकाओं के मध्य सीधा सम्बन्ध हो सकता है अथवा होना चाहिए? इसके अतिरिक्त, लघु स्थानीय निकायों को विशाल संवैधानिक कार्य–परिधि में स्थान देना कठिनाइयों को जन्म दे सकता है क्योंकि अन्ततः स्थानीय स्वशासन के अधीन क्षेत्रों में अधिकांश विकास परियोजनाएं एवं गैर–योजना नगरीय गतिविधियां राज्य प्रशासन द्वारा ही कार्यान्वित की जायेंगी।

(vii) ***विधायकों/सांसदों एवं अधिकारियों के स्थान की परिभाषा नहीं की गयी (Place of MLAs/MPs and Bureaucrats not Defined)*** – अधिनियम के सुचारू रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक है कि विधायकों, सांसदों एव सरकारी अधिकारियों की नगरपालिका की प्रशासकीय प्रक्रिया में भूमिका का स्पष्ट वर्णन किया जाय। अधिनियम में इस ओर कुछ नहीं कहा गया है कि विधायकों एवं सांसदों को नगरों/कस्बों में अपने प्रभाव के आधार पर किस रूप में स्थान दिया जायेगा तथा अधिकारियों की क्या स्थिति होगी जिन्हें यह भी ज्ञात नहीं है कि नयी व्यवस्था में उनके स्वामी कौन होंगे।

(viii) ***चुनाव आयोग चुनाव कराने हेतु समुचित प्रकार से सज्जित नहीं है (Election Commission not Adequately Equipped to Conduct Elections)*** – यह सामान्य रूप से ज्ञात है कि निर्वाचन आयोग जिसे सभी चुनावों का कराने हेतु ड्यूटी नियत करने का प्राधिकार है के पास मतदान की देख–रेख हेतु अपना कोई स्टाफ नहीं होता है। इस तदर्थ केन्द्र एवं राज्य सरकारों दोनों के ऊपर आश्रित होना पड़ता है। अधिनियम में उन सुरक्षाओं का वर्णन नहीं किया गया है जो सरकार मूलाकोषीय प्रजातंत्र के निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने हेतु प्रयुक्त करेगी, यद्यपि सरकार ने यह विश्वास अवश्य दिलवाया है कि नगरीय स्थानीय निकायों के निर्वाचन संचालित करने के अतिरिक्त दायित्व का निर्वहन करने के लिए आयोग सशक्त बनाया जायेगा।

(ix) ***राज्यपाल की स्वैच्छिक शक्तियां (Discretionary Powers of the Governor)*** अधिनियम में राज्यपाल को व्यापक शक्तियां प्रदान की गयी हैं। उदाहरणतया, उसे लगभग 10,000 अथवा अधिक परन्तु 20,000 से कम जनसंख्या वाले क्षेत्र की सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा परिवर्तनीय क्षेत्र निर्दिष्ट करने की शक्ति है। उसे 10,000 से कम जनसंख्या वाली नगर वर्तमान समितियों एवं अधिसूचित क्षेत्र समितियों को नगर पचायत घोषित करने का अधिकार है।

(x) ***अनुसूचित क्षेत्रों के लिए भिन्न प्रबन्ध (Different Treatment for Scheduled Areas)***– अनुसूचित क्षत्रों का अधिनियम में भिन्न प्रबन्ध किया गया है। इसमें प्रावधान है "संविधान में सम्मिलित किसी व्यवस्था के बावजूद भी, किसी राज्य का राज्यपाल अपनी स्वेच्छा से एवं ऐसे अपवादों को छोड़कर, एवं संशोधनों जैसा वह निर्दिष्ट करे, सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा अध्याय II से VI तक की उपधारा 1 में संदर्भित अनुसूचित क्षेत्रों अथवा अनुच्छेद 244 की उपधारा C में संदर्भित जनजातिय क्षेत्रों जो उस राज्य के अन्दर सम्मिलित हैं, लागू कर सकता है।"

सरकार द्वारा स्पष्टीकरण दिया गया है कि राज्यपाल से अर्थ राज्य सरकार से है। यह व्याख्या सही है एवं संविधान के साथ मेल खाती है। संविधान में राज्यपाल की स्वैच्छिक शक्तियों का वर्णन है। नगरपालिका अधिनियम में भी, राज्यपाल को अनुसूचित क्षेत्रों से सम्बन्धित कुछ मामलों में अपने स्वेच्छा को प्रयुक्त करना है।

अधिनियम के आलोचकों द्वारा प्रस्तुत आलोचना का निष्पक्ष एवं वैयक्तिक तौर पर विश्लेषण करने के उपरान्त यह पुष्टि होती है कि अधिनियम की विषय–वस्तु के बारे में कोई मतभेद नहीं है जिसे सभी द्वारा सराहनीय बतलाया गया है। आलोचना का केन्द्र बिन्दु यह है कि नगरपालिका अधिनियम जैसे महत्त्वपूर्ण अधिनियम पर जनता, राजनीतिक दलों एवं राज्यों की सम्मति को अप्रजातंत्रीय ढंग से मालूम किया गया है। यह विवाद कि राज्यों की अवहेलना की गयी है एवं केन्द्र द्वारा उनके क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया गया है तथा संविधान की मूल संरचना में परिवर्तन किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत किया जा सकता है। सरकार नगरीय स्थानीय निकायों में प्रजातंत्र सुनिश्चित करने एवं उन्हें समुचित दायित्व एव वित्त प्रदान करने हेतु संवैधानिक पुष्टि प्राप्त करना चाहती थी ताकि 'नगरीय भारत समृद्ध होकर देश की प्रगति एंव समृद्धि की ओर ले जाये।' आशा की जाती है कि जबकि नगरपालिका अधिनियम पारित हो गया है इसके क्रियान्वित हो जाने पर इन उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकेगी एवं यदि कोई कठिनाई आयी तो सरकार उन्हें दूर करने के लिए वचनबद्ध है।

अध्याय-9

जिला प्रशासन
(District Administration)

भारत में क्षेत्रीय प्रशासन की मूल इकाई जिला होती है। जिला अपने–आप में सम्पूर्ण प्रशासनिक संस्था है। ऐतिहासिक विरासत एवं बड़े–बड़े राज्यों से उत्पन्न प्रशासनिक अनिवार्यताओं के कारण सारे देश के भू–खण्ड को प्रशासनिक रूप से सक्षम इन छोटी–छोटी इकाइयों में बाँटा गया है। 2001 की जनगणना के आधार पर इस समय भारत के 593 जिले हैं जो जनता के प्रशासनिक मामलों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

श्री खेड़ा द्वारा उद्धृत 'जिले' का शाब्दिक अर्थ है–विशेष प्रशासनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निश्चित किया गया एक भू–खण्ड। इस तरह से जिला प्रशासन का अर्थ हुआ एक विशेष क्षेत्र में सार्वजनिक कार्यों का प्रबन्ध करना। दूसरे शब्दों में "जिला प्रशासन राज्य प्रशासन का वह भाग है जो एक जिले की क्षेत्रीय सीमा के भीतर कार्य करता है।" चूँकि जिला एक ऐसी अत्याधिक सक्षम भौगोलिक इकाई है जहां सार्वजनिक प्रशासन के समस्त उपकरण केन्द्रित किए जा सकते हैं। इसलिए जिला प्रशासन सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध में सर्वतन्मुखी कार्य करता है। भारत में राज्य सरकारें ही प्रशासनिक सुविधा को सम्मुख रखते हुए जिलों का निर्माण करती हैं। अतः जिला प्रशासन सरकार की वह सम्पूर्ण कार्यवाही कही जा सकती है जो उस निश्चित क्षेत्र में की जाती है जिसे राज्य सरकार द्वारा जिला माना जाता है।

जिले की परिभाषा देते हुए किसी ने कहा है, "एक जिला एक काफी बड़े क्षेत्र को कहा जाता है जो एकता के सूत्र में बँधा हुआ हो और जिसमें आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दशाएँ सामान्य हों।"

श्री खेड़ा ने जिला प्रशासन की परिभाषा देते हुए कहा है, "जिले में सरकार के समस्त कार्यों के संग्रह को जिला प्रशासन कहा जा सकता है।" इस प्रकार जिला प्रशासन जिला पुकारे जाने वाले क्षेत्र के अन्दर सरकार के कार्यों के प्रबन्ध को कहा जा सकता है। जिला प्रशासन एक जिलाधीश या कलैक्टर के आधीन होता है जो विभिन्न विभागों के जिलाधिकारियों की सहायता से इसे कार्यान्वित करता है।

जिला प्रशासन की विशेषताएँ
(Features of District Administration)

जिला प्रशासन की विशेषताएँ (Features of District Administration): जिला प्रशासन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. **एक अनिवार्य प्रशासनिक इकाई (An Indispensable Administrative Unit):** भारत में ऐसा कोई भी राज्य नहीं है जिसमें जिला प्रशासन की स्थापना न की गई हो। संघ–शासित प्रदेशों में भी जिला प्रशासन की रचना की जाती है। जिला प्रशासन का आकार जनसंख्या व राजनीतिक कारणों के अनुसार निर्धारित किया जाता है। हालांकि भिन्न–भिन्न राज्यों में जिला प्रशासन का आकार अलग–अलग है। इस समय हरियाणा में 19 जिले हैं।

2. **ब्रिटिश पद्धति पर आधारित संगठन (Organized on British Pattern):** जिला प्रशासन का रूप आज भी ब्रिटिश शासन के अनुरूप है। इसमें थोड़े–बहुत परिवर्तन अवश्य हुए हैं पंरन्तु आधारभूत ढाँचा वही है। ये परिवर्तन कल्याणकारी राज्य तथा प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीयकरण के फलस्वरूप हुए हैं।

3. **राज्य सरकार का लघु सचिवालय (Mini-Secretariat of the State Govt.):** जिला प्रशासन वास्तव में एक लघु सचिवालय होता है जिसमें राज्य सरकार के सभी विभाग पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, गृह तथा राजस्व विभाग जिला प्रशासन के अभिन्न अंग होते हैं।

4. **असंवैधानिक अस्तित्व (Unconstitutional Existence):** संविधान में जिला प्रशासन का कहीं भी जिक्र नहीं किया गया

है। संविधान की धारा 233 के अनुसार सिर्फ जिला न्यायाधीश (District Judge) की नियुक्ति का जिक्र किया गया है

5. **वास्तविक विकेन्द्रित शासन का नमूना (Specimen of Real Decentralized Administration):** जिला प्रशासन विकन्द्रित प्रशासन का ढाँचा होता है। इसमें अधिक जनसंख्या का एक छोटा–सा भाग होता है। यह लोगों से अधिक दूर नहीं होता बल्कि उसका एक भाग होता है, जहाँ पर लोग प्रशासन से सीधा सम्पर्क करते हैं। यह लोक–प्रशासन मशीनरी का अन्तिम छोर (Cutting Edge) है जिसका राष्ट्रीय सरकार में बड़ा महत्त्व होता है।

6. **निरन्तर विकासशील दिशा में (Continuously Developing):** जिला प्रशासन सदियों से विकसित होता रहा है। प्राचीनकाल में इसकी जड़ें पैदा हुई, मध्य युग में इसका सुव्यवस्थित रूप विकसित हुआ और वर्तमान काल में यह काफी विकसित हुआ। ब्रिटिश शासकों के संकुचित हितों की रक्षा करने से लेकर जनता की सेवा करने के उद्देश्य तक इसके इतिहास का निरन्तर क्रम जारी रहा। सामाजिक विकास और प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीयकरण के कारण इसको नई दिशा मिली।

भारतीय प्रशासन में ज़िला प्रशासन के उद्देश्य
Objectives of District Administration in Indian Administration

ज़िला भारतीय प्रशासन की एक मुख्य इकाई है और ज़िला स्तर पर सभी सरकारी विभागों के कार्यालय स्थापित किए गए हैं। यहाँ तक कि केन्द्रीय सरकार अपने विभागों के कार्यालय ज़िला स्तर पर स्थापित किए हैं। जैसे–आयकर अधिकारी के कार्यालय। सरकार अपना समस्त प्रशासन ज़िला अधिकारियों के द्वारा चलाती है और जनता की जानकारी भी जिला प्रशासन के द्वारा ही करती है। सरकार की सभी शक्तियाँ जिला प्रशासन के अध्यक्ष ज़िलाधीश या कलैक्टर को दी गई है इसलिए उनके बारे में Palanda ने कहा है "कलैक्टर प्रान्तीय सरकार की आँखें, कान, मुँह और हाथ सब कुछ है। ज़िला प्रशासन की जानकारी के बिना सरकार कुछ नहीं करती, चाहे शान्ति और व्यवस्था को बनाए रखने की समस्या हो, चाहे कोई स्वास्थ्य–सम्बन्धी कठिनाई हल करनी हो, चाहे कहीं शिक्षा के प्रसार के लिए स्कूल की स्थापना करने की हो, चाहे जेलों में कैदियों की दशा सुधारने का प्रश्न हो, चाहे बाढ पीड़ित व्यक्तियों को सहायता पहुँचाने का काम हो या सूखा पड़ने के कारण फसल के खराब होने से किसानों को लगान में कमी या छूट देन की बात पर विचार करना हो, चाहे किसी सड़क–पुल का निर्माण और देखभाल करने की समस्या का समाधान करना हो, सभी प्रकार के कार्य ज़िला प्रशासन द्वारा या उसकी देख–रेख में किए जाते हैं। जिला प्रशासन निम्नलिखित उद्देश्यों को सम्मुख रखता है

1. **कानून और व्यवस्था (Law and Order)**–जिला प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य प्रमुख रूप से कानून और व्यवस्था को बनाए रखना और अपराधों की रोकथाम है। स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रथम दो दशकों में इसे बहुत उच्च स्थान प्रदान किया गया। उस समय के पश्चात् समस्या की प्रति बहुत बदल गई है। सत्तारूढ़ चुनी हुई जन–प्रिय सरकारें जन–रोष के भय से किसी भी प्रकार की शक्ति के प्रयोग में संकोच करती है। इसलिए शान्ति बनाए रखने के लिए उत्तरदायी अधिकारियों को समाज के उस वर्ग के विचारों के साथ समीप का सम्पर्क बनाए रखना चाहिए जो शान्ति को भंग कर सकते हैं। इसमें उपद्रवकारी छात्र, औद्योगिक मजदूर अथवा चरमपन्थी, वामपन्थी अथवा दक्षिण पन्थी लोग हैं।

2. **विकास (Development)**– एक समय था जब जिला–प्रशासन की एकमात्र वरीयता कानून और व्यवस्था बनाए रखना था परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् कई अन्य प्राथमिकताएँ इसमें जुड़ गई हैं। आजकल ज़िला–प्रशासन का प्राथमिक लक्ष्य पूर्णतया स्पष्ट है–वह है जिले का शीघ्र गति से और नियमित ढंग से विकास हो ताकि ज़िला–वासियों को अधिक प्रसन्नता मिल सके। अधिक राज्यों में जहाँ जिला अधिकारी को विकासात्मक कार्यों में सक्रिय रूप से सम्मिलित किया गया है वहाँ ज़िला–अधिकार का अधिकांश विकास–कार्यभार विकासात्मक कार्यों से सम्बन्धित है। छठे और प्रारम्भिक सातवें दशक से आरम्भ किए गए विकासात्मक कार्यों में ज़िलों का प्रबन्ध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण इकाई समझा गया है। विकासात्मक और कल्याणकारी कार्य कृषि–उत्पादन, सहकारिता, पशुपालन, जनस्वास्थ्य, शिक्षा, पिछड़ी श्रेणी के लोगों के कल्याण आदि से सम्बन्ध रखते हैं।

3. **राजस्व इकट्ठा करना (Revenue Collection)**– पारम्परिक और प्रमुख लक्ष्यों में ज़िला प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य राजस्व इकट्ठा करना है। राजस्व का प्रमुख सिद्धान्त यह है कि परिभाषा के अनुसार राजस्व को पूर्ण रूप में ही इकट्ठा किया जाना चाहिए। यदि एक बार इस सिद्धान्त का पालन न किया गया तो स्थिति पूर्णतया बिगड़ जाएगी। दूसरा सिद्धान्त है उचित कर–आधान। राजस्व के प्रमुख मुद्दे हैं–भू राजस्व, नहर सम्बन्धी देन–दारियां, कृषिकर, आयकर, तकावी ऋण की प्राप्ति, मनोरंजन कर, बिक्री कर, स्टैम्प, आबकारी आदि–आदि।

4. **न्याय देना (Dispension of Justice)**– शान्ति बनाए रखने के उत्तरदायित्व के साथ–साथ ज़िला प्रशासन को न्याय प्रदान करने का उत्तरदायित्व भी दिया गया है ताकि इस बात को निश्चित बनाया जा सके कि शान्ति और व्यवस्था रहे। न्यायिक प्रशासन के लिए ही सत्र न्यायाधीश की स्थापना की जाती है ताकि नागरिक और आपराधिक झगड़ों का निपटारा किया जा सके।

5. **आवश्यक सेवाएँ और आपूर्ति (Essential Services and Supplies)**– ज़िला एक ऐसा समुदाय है जहाँ से जन–समुदाय को विभिन्न सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। इस सम्बन्ध में उसे विभिन्न वस्तुओं की प्राप्ति और आपूर्ति के लिए उचित मूल्य की दुकानें खोलने, विभिन्न वस्तुओं की राशनिंग–व्यवस्था करने और वस्तुओं की संख्या और गुणवत्ता पर नियन्त्रण रखने के लिए ज़िला प्रशासन को प्रयत्न करने होंगे।

6. **तात्कालिक सुविधा (Immediate relief)**– ज़िला प्रशासन को उस स्थान पर क्रियाशील सरकार समझा जाता है जब किसी आपत्तिजनक स्थिति में, बाढ़, अग्नि, सूखा, महामारी अथवा किसी मानव–उत्पादिक आपत्ति में प्रत्येक व्यक्ति सदैव आपत्ति के समाधान के लिए ज़िला प्रशासन की ओर देखता है। इस लक्ष्य के लिए पुलिस के अतिरिक्त हवाई सेवा, होम गार्ड, डाक्टरी सेवा अथवा इसी प्रकार की अन्य सेवाओं की सहायता ज़िला प्रशासन ही प्रदान करता है।

7. **योजना निर्माण और क्रियान्वयन (Planning and Implementation)**– स्वतन्त्रता के पश्चात् और पहले भी जिला प्रशासन, प्रशासन की एक सशक्त इकाई के रूप में सामने आया है। यह न केवल नियामक का काम करता है परन्तु उच्च स्तरीय संस्थाओं द्वारा बनाई गई योजनाओं को भी कार्यान्वित करता है। विशेष रूप से स्वतन्त्रता के पश्चात् और बहु–स्तरीय आर्थिक योजना–निर्माण के पश्चात् ज़िला एजेंसियों की रिपोर्टों के आधार पर ही राष्ट्रीय योजना निर्माता वरीयताओं को निश्चित करते हैं, उनमें परिवर्तन करते हैं, संसाधनों का वितरण करते हैं अथवा लोगों के विचार जानते हैं। पिछले कुछ वर्षों में ज़िला योजनाओं के अंग स्वरूप कुछ चुने हुए ज़िलों में ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाए गए हैं।

8. **सामंजस्य स्थापित करना (Co-ordination)**– ज़िला स्तर पर अनेक सरकार और अर्ध सरकारी एजेंसियों के सहसा विकास के कारण ज़िला प्रशासन का स्वतः ही यह उत्तरदायित्व बन जाता है कि वह उन सभी एजेंसियों के बीच तालमेल स्थापित करें। इस ताल–मेल का उत्तरदायित्व के अतिरिक्त जिले के अन्दर स्थित विभिन्न सरकारी एजेंसियों और सरकारी अधिकारियों पर नियन्त्रण रखना है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जिले में विशिष्ट लक्ष्यों के लिए विभिन्न ताल–मेल (सामंजस्य) समितियाँ भी होती हैं। ये समितियाँ प्रतिमाह निश्चित रूप से एक बार अपनी बैठक अवश्य करती है।

9. **प्राकृतिक संकट में लोगों की सहायता (Help to the People in Natural Calamities)**– आज राज्य का काम लोगों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करने के अतिरिक्त उनके जीवन को सुखी और विकसित बनाने के लिए उचित वातावरण पैदा करना भी है। सरकार संकट में पड़े व्यक्तियों की हर प्रकार से सहायता करती है। सरकार का काम भी ज़िला स्तर पर आरम्भ होता है और जिला प्रशासन द्वारा सम्पन्न किया जाता है। जब कभी किसी भाग में बाढ़ आ जाए, सूखा पड़े, भूचाल आए या कोई महामारी फैल जाए तो लोगों को उस संकट में छुटकारा दिलाने का काम भी ज़िला अधिकारी करते हैं। ज़िलाधीश संकट के पैदा होते ही समस्त ज़िला प्रशासन को उस संकट का मुकाबला करने के लिए प्रयोग करता है और लोगों की सहायता की जाती है। ज़िला प्रशासन के अभाव में लोगों की इतनी शीघ्र सहायता करना सम्भव नहीं है।

10. **सामुदायिक विकास परियोजनाएँ७ (Community Development Projects)**– भारत में ग्रामीण लोगों के जीवन की बहुमुखी विकास करने के लिए जो सामुदायिक विकास परियोजनाएँ लागू की गई हैं; वे भी ज़िला प्रशासन की देख–रेख में ही कार्यान्वित होती है। इन सामुदायिक विकास परियोजनाओं ने जिला प्रशासन के उत्तरदायित्वों को बढ़ा दिया है और उनकी सफलता भी ज़िला प्रशासन पर निर्भर है। ज़िलाधीश ज़िले में इन सभी योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू करवाने का सामान्य रूप से उत्तरदायी है।

11. **आम चुनाव (General Election)**– भारत में स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए एक चुनाव आयोग की व्यवस्था की गई है, परन्तु लोकसभा विधानसभा आदि चुनावों का वास्तविक कार्य ज़िला प्रशासन द्वारा किया जाता है। ज़िलाधीश ज़िले में सभी चुनाव कार्यों का इन्जार्च होता है और उनका प्रबन्ध करता है। प्रत्येक ज़िले में एक चुनाव कार्यालय है जो ज़िला प्रशासन के कर्मचारियों की सहायता से मतदाताओं की सूची तैयार करवाता है। ज़िला प्रशासन के कर्मचारी ही ज़िले में चुनावों का सब प्रबन्ध करते हैं। चुनाव आयोग या चुनाव आयुक्त केवल नियम बनाते हैं और आदेश देते हैं।

12. **स्थानीय स्वशासन पर देख (Supervision over the Local Self Government Institutions)**– भारत मे स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं स्थापित की गई है। नगरों में नगरपालिकाएँ तथा कहीं–कहीं नगर निगम भी हैं। ग्रामों में पंचायतें पंचायत समिति तथा ज़िला परिषद् स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। बेशक ये संस्थाएँ, अपनी इच्छानुसार काम करती हैं, परन्तु इनके कार्यों पर देखभाल रखने और इनका पथ प्रदर्शन करने का काम भी जिला प्रशासन को हीं सौंपा गया है।

13. **मिश्रित कार्य (Miscellaneous Activities)** – अन्त में जिला प्रशासन के मिश्रित कर्त्तव्यों को भी सूचीबद्ध किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, जिला अधिकारी अनेक सरकारी प्रशासनिक कार्य भी करता है। इन कार्यों मे शस्त्रों विस्फोटक पदार्थ, पेट्रोल, सिनेमा आदि के लाईसैंस देना, नशे और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक दवाइयों की रोकथाम करना, विदेशियों पर नियन्त्रण, स्मारकों और भवनों इत्यादि की जो ऐतिहासिक अथवा राष्ट्रीय महत्त्व के हों, सुरक्षा, स्थानीय/प्रान्तीय केन्द्रीय चुनाव करवाना जनराय जानना, महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का स्वागत करना, जन सम्बन्ध स्थापित करना इत्यादि आते हैं। इसके अतिरिक्त जिले में क्रियाशील स्थानीय स्व–शासी संस्थाओं पर भी जिला अधिकारी नियन्त्रण रखता है।

    इस प्रकार जिला–प्रशासन एक ऐसी आधारशिला प्रदान करता है जिस पर सरकार का प्रशासनिक ढाँचा स्थिर होता है। यही वह संस्था है जिस पर सरकार के विभिन्न स्तरों को विश्वास है। न केवल लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपितु राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए भी इस एजेन्सी पर भरोसा किया जाता है।

जिले में विभिन्न विभागों के अधिकारी (Officers of the Various Departments in the District) – जिला प्रशासन की मुख्य इकाई होने के कारण इसमें सभी विभागों के कार्यालय स्थित हैं जो सम्बन्धित विभाग के अधिकारियों द्वारा संचालित किए जाते हैं। इन अधिकारियों द्वारा ही राज्य सरकार के सभी प्रशासकीय विभाग जनता पर अपने कानूनों को लागू करते हैं तथा सार्वजनिक सेवाओं के कार्यों और योजनाओं को कार्यान्वित करवाते हैं।

जिले में काम करनेवाले विभिन्न अधिकारी निम्नलिखित हैं–

1. **ज़िलाधीश (Deputy Commissioner)** ज़िलाधीश समस्त ज़िले के प्रशासन का अध्यक्ष है। वह जिले में राज्य सरकार का प्रतिनिधि है और सरकार की समस्त शक्तियाँ, अधिकार तथा उत्तरदायित्व उसमें निहित हैं। ज़िले में शान्ति स्थापित करना, अपराधों को कम करना, सार्वजनिक सेवा के कार्यों जैसे कि स्वास्थ्य, शिक्षा, लोक–निर्माण–कार्य, कृषि, सिंचाई उद्योग धन्धों की उन्नति आदि कार्यों की देखभाल करना, ज़िले में विकास योजनाओं को लागू करना, ज़िले में भू–राजस्व तथा अन्य सभी टैक्सों को इकट्ठा करवाना, स्थानीय स्वशासन संस्थाओं पर निगरानी रखना, जेलों, पागलखानों, अनाथाश्रमो, अन्धविद्यालयों, अपाहिजों के घरों आदि का प्रबन्ध करना तथा संकट के समय लोगों को पर्याप्त सहायता पहुँचाना आदि सब कामों का उत्तरदायित्व उस पर आता है।

    ज़िलाधीश भारतीय प्रशासकीय सेवा (I.A.S) का एक वरिष्ठ सदस्य होता है जो कि वैसे तो संघ सरकार का कर्मचारी समझा जाता है, परन्तु राज्य सरकार के अधीन काम करता है। ज़िले के अन्य सभी अधिकारी जैसे कि पुलिस अधीक्षक, ज़िला कृषि अधिकारी, शिक्षा अधिकारी, कोष अधिकारी, जिला चिकित्सा तथा स्वास्थ्य अधिकारी, ज़िला पंचायत अधिकारी आदि सभी उसकी देख–रेख में काम करते हैं और ज़िले के अच्छे प्रशासन में उसकी सहायता करते हैं। उप–विभाग का अधिकारी S.D.O या S.D.M उसके प्रत्यक्ष अधीन हैं और उसके आदेशानुसार कार्य करते हैं। ज़िले की शासन व्यवस्था को बनाए रखने के लिए वह किसी भी अधिकारी को किसी प्रकार का आदेश दे सकता है। वह जिले में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिला मेजिस्ट्रेट (District Magistrate) के रूप में भी काम करता है।

2. **पुलिस अधीक्षक (Police Superintendent)** – जिले में पुलिस विभाग का अध्यक्ष पुलिस अधीक्षक होता है। जिले के समस्त पुलिस कर्मचारी उसके अधीन काम करते हैं। वह अपने कार्यों के लिए राज्य के पुलिस विभाग के अधीन होता है, परन्तु ज़िले में शान्ति स्थापित करने तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए वह ज़िलाधीश के अधीन कार्य करता है और उसकी सहायता करता है। ज़िले की पुलिस का प्रशासन वह स्वतन्त्रतापूर्वक करता है और इससे उसे जिलाधीश की सलाह लेने की आवश्यकता नहीं। वह ज़िले में पुलिस कर्मचारियों के तबादले कर सकता है और अनुशासन–सम्बन्धी कार्यवाही कर सकता है।

    पुलिस अधीक्षक भारतीय पुलिस का एक अनुभवी सदस्य होता है। वह अखिल भारतीय सेवा का सदस्य होने के कारण अपनी नियुक्ति तथा पदच्युति आदि के लिए संघ सरकार के अधीन है, परन्तु अपने कर्तव्यों के पालन में राज्य सरकार के अधीन

कार्य करता है। उसकी सहायता के लिए कुछ पुलिस उप–अधीक्षक (D.S.P), सहायक अधीक्षक (A.S.P) पुलिस इन्सपैक्टर, हैड कांस्टेबल आदि होते हैं। प्रत्येक उप विभाग (Sub-Divison) एक अधीक्षक (D.S.P) के अधीन होता है। उप–विभाग को कुछ मण्डलों (Circles) में बाँटा जाता है। मण्डल में कई थाने होते हैं जो सब इन्सपेक्टर (S.I) के अधीन होते हैं। थानों के अधीन पुलिस चौकियाँ (Police Posts) होती हैं जो शहरों और गाँवों में स्थापित कर दी जाती है ताकि शहरों और गाँवों में शान्ति और व्यवस्था को अच्छी प्रकार से स्थापित किया जा सके। पुलिस चौकी का इन्चार्ज़ एक हैड कान्स्टेबल होता है और उसकी सहायता के लिए कुछ सिपाही होते हैं।

3. **ज़िला तथा सैशन जज (District and Sessions Judge)** – जिले का न्याय संगठन एक ज़िला तथा सैशन जज के अधीन होता है। उसकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है, परन्तु वह उच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं और उसके विरुद्ध अपील सुन सकता है। किसी अपराधी को मृत्युदंड देने का अधिकार सैशन जज को है और वह भी इसे उच्च न्यायालय के सहयोग से ही प्रयोग कर सकता है। पहले ज़िले के फौजदारी न्यायालय इसके अधीन नहीं थे बल्कि जिला मेजिस्ट्रेट (District Magistrate) जो जिलाधीश भी होता है, के अधीन हुआ करते थे। अब कुछ राज्यों में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करके न्यायिक मेजिस्ट्रेट (Judicial Magistrate) के पद की व्यवस्था की गई है जो फौजदारी मुकदमों को सुनते हैं और ज़िला तथा सैशन जज के अधीन हैं। इसके अधीन एक वरिष्ठ सब–जज (Senior Sub-Judge) तथा एक–एक मुख्य न्यायिक मेजिस्ट्रेट (Chief Judicial Magistrate) होता है और उसके अधीन प्रत्येक तहसील या उप–विभाग में सब–ज़ज तथा न्यायिक मेजिस्ट्रेट होते हैं। यह बात ध्यान में रखी जाए कि इन अधिकारियों पर ज़िलाधीश का कोई नियन्त्रण नहीं होता।

4. **डिप्टी कलैक्टर (Deputy Collector)** – जिलाधीश ज़िले में भू–राजस्व या लगान इकट्ठा करने के लिए उत्तरदायी है। उसकी सहायता के लिए एक डिप्टी कलैक्टर होता है जिसे माल अफसर (Revenue Officer) या (Revenue Assistant) भी कहा जाता है। ज़िले के लगान सम्बन्धी सभी मामले इसके द्वारा निपटाए जाते हैं। किसी भी मेजिस्ट्रेट या राज्य असैनिक सेवा (Provisional Civil Service) के किसी भी सदस्य को इस पद पर नियुक्त किया जा सकता है। उसकी सहायता के लिए तहसीलों या उप विभागों में तहसीलदार, नायब तहसीलदार, कानूनगो तथा पटवारी आदि होते हैं। पटवारी गांव की भूमि और लगान सम्बन्धी सब बातों की सूचना रखता है। इस विभाग का कार्य लगान इकट्ठा करना और लगान सम्बन्धी मामलों का निपटारा करना है।

5. **ज़िला शिक्षा अधिकारी (District Education Officer)** – ज़िले में शिक्षा विभाग के सभी कार्य ज़िला शिक्षा अधिकारी की देख–रेख में होते हैं जिसकी नियुक्ति शिक्षा विभाग द्वारा की जाती है। वह प्राईमरी तथा मिडिल स्कूलों पर नियन्त्रण रखता है। ज़िले में शिक्षा का विस्तार करने और उसके सुप्रबन्ध के लिए वह उत्तरदायी है। ज़िले में सभी गैर सरकारी स्कूलों को दी जानेवाली सहायता उसी के द्वारा की जाती है। उसकी सहायता के लिए कुछ उप–ज़िला शिक्षा अधिकारी होते हैं। ज़िले के प्राईमरी स्कूलों पर देख–भाल करने में भी उसकी सहायता खण्ड शिक्षा अधिकारी (Block Education Officer) द्वारा की जाती है।

6. **जिला कृषि अधिकारी (District Agricultural Officer)** – प्रत्येक जिले में कृषि सम्बन्धी कार्यों को करने के लिए एक ज़िला कृषि अधिकारी होता है जो सरकार के कृषि–विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। कुछ राज्यों में इसे कृषि अतिरिक्त सहायक निदेशक (Extra Assistant Director of Agricultural) के नाम से भी पुकारते हैं। इसकी सहायता के लिए बहुत से कृषि इंसपेक्टर (Agriculture Inspector) होते हैं। इनका काम ज़िले में कृषि सम्बन्धी कार्यों को करना है। यह किसानों को अच्छी खाद, अच्छे बीज, खेती–बाड़ी के नवीन तथा वैज्ञानिक तरीकों से परिचित कराते हैं और खेती–बाड़ी में विकास करने का प्रयत्न करते हैं। ये आदर्श फार्मों (Model Farms) की स्थापना भी करते हैं और उनमें कृषि उत्पादन के नए तथा वैज्ञानिक तरीकों द्वारा अच्छी फसल उत्पन्न करके उसका प्रदर्शन करते हैं ताकि किसान आसानी से तरीकों को अपना सकें।

7. **जिला उद्योग अधिकारी (District Industries Officer)** – ज़िले में औद्योगिक विकास तथा उद्योग सम्बन्धी कार्यों को करने के लिए एक ज़िला उद्योग अधिकारी भी होता है जो राज्य के उद्योग विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। इसका काम जिले में स्थित विभिन्न उद्योगों की देख–भाल करना, उन्हें पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करना तथा नए–नए उद्योगों की स्थापना में प्रोत्साहन देना होता है। यह ज़िले में घरेलू उद्योग (Cottage Industries) का विकास करने का भी प्रयत्न करता है। इसकी सहायता के लिए उद्योग विभाग में बहुत से अन्य कर्मचारी भी होते हैं।

8. **कार्यकारी इन्जीनियर (Excutive Engineer)** – कार्यकारी इन्जीनियर जिले में सार्वजनिक निर्माण विभाग (P.W.D) का प्रतिनिधि होता है। इसके आधीन बहुत से उपमण्डल अधिकारी (S.D.O's) ओवरसियर आदि होते हैं। इनका काम जिले में सभी निर्माण कार्यों जैसे सरकारी भवनों, सड़कों, पुलों आदि का निर्माण और उसकी देखभाल करना है। पहले सिंचाई विभाग भी इसी के अधीन हुआ करता था परन्तु अब पंजाब और हरियाणा में सिंचाई के सभी काम जैसे कि नहरें बनवाना तथा उसकी देखभाल करना आदि इससे अलग कर दिए गए हैं। ज़िले में सभी सरकारी सम्पत्ति पर निगरानी रखना और उसका हिसाब–किताब करना इस विभाग का कार्य है।

9. **मुख्य चिकित्सा तथा स्वास्थ्य अधिकारी (Chief Medical and Health Officer)** – जिले में चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों को करने के लिए एक मुख्य चिकित्सा तथा स्वास्थ्य अधिकारी की व्यवस्था की गई है। कई राज्यों में ज़िला चिकित्सा अधिकारी अलग होता है जिसे सिविल सर्जन (Civil Surgeon) कहा जाता है और ज़िला स्वास्थ्य अधिकारी अलग होता है। सिविल सर्जन के अधीन जिले के सभी अस्पताल होते हैं और वह उनके सुसंचालन के लिए जिम्मेदार होता है। ज़िला स्वास्थ्य अधिकारी का काम बीमारियों के उत्पन्न होने तथा फैलने से सम्बन्ध रखता है। वह ज़िले में लोगों को कई प्रकार के टीके लगाने, मच्छरों को मारने, गली सड़ी वस्तुओं को बेचे जाने से रोकने तथा स्वास्थ्य के लिए उचित वातावरण पैदा करने का काम करता है। जबकि सिविल सर्जन के अधीन अस्पताल होते हैं जहां कि रोगियों की चिकित्सा का काम ही किया जाता है। इन दोनों अधिकारियों की सहायता के लिए बहुत से डॉक्टर, नर्सें तथा कम्पाउण्डर आदि होते हैं। सिविल सर्जन राज्य की चिकित्सा सेवा का एक वरिष्ठ सदस्य होता है और उसके जिम्मे ज़िले की जेलों पर स्वास्थ्य सम्बन्धी निगरानी रखना भी होता है। हरियाणा में इन दोनों पदों को मिलाकर एक कर दिया गया है और सिविल सर्जन को ही मुख्य चिकित्सा तथा स्वास्थ्य अधिकारी के नाम से पुकारते हैं।

10. **ज़िला लोक सम्पर्क अधिकारी (District Public Relation Officer)** – जनता तथा सरकार में घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किए जाने के लिए एक लोक सम्पर्क विभाग की भी स्थापना की गई है। प्रत्येक ज़िले में इसका प्रतिनिधित्व एक लोक सम्पर्क अधिकारी द्वारा किया जाता है। इसके काम ज़िले में सरकारी नीतियों और कार्यों का प्रचार करना है। यह विभिन्न प्रकार की फिल्में दिखाकर जनता को देश की सामुदायिक विकास परियोजनाओं से अवगत करता है और इस बात का प्रचार करता है कि सरकार ने जन–कल्याण के लिए कौन से काम किए हैं। ड्रामों, खेल–कूदों और प्रतियोगताओं का आयोजन करके भी यह जनमत निर्माण का प्रयत्न करता है तथा विभिन्न सामाजिक बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न करता है। यह अधिकारी लोगों से सम्पर्क स्थापित करके उसकी आवश्यकताएँ, समस्याएँ विचारों आदि का पता लगाकर उन्हें राज्य सरकार को सूचित करता है। लोकनृत्यों (Folk Dances) आदि का आयोजन करके यह सभ्यता और सांस्कृतिक विकास की ओर भी प्रयत्न करता है।

11. **ज़िला आबकारी तथा कर अधिकारी (District Excise and Taxation Officer)** – सरकार के सभी प्रकार के करों को इकट्ठा करने का काम भी जिला स्तर पर किया जाता है जिसके लिए ज़िले में एक ज़िला आबकारी तथा कर अधिकारी होता है। इसकी सहायता के लिए कुछ सहायक आबकारी तथा कर अधिकारी (Assistant Excise and Taxation Officers) तथा इन्सपेक्टर आदि होते हैं। इसका काम ज़िला में उत्पाद शुल्क, ब्रिकी–कर, सम्पत्ति कर आदि सभी प्रकार के टैक्सों को इकट्ठा करना है।

12. **अन्य अधिकारी (Other Officers)** – ज़िला स्तर पर और भी बहुत से विभागों के अधिकारी कार्य करते हैं। इनमें ज़िला वन अधिकारी (District Forest Officer), कोषाधिकारी (Treasury Officer), जिला रजिस्ट्रार (District Registrar), सहकारी समीतियों का सहायक रजिस्ट्रार (Assistant Registrar of Co-operative Societies) आदि प्रमुख है। संघ सरकार के आयकर विभाग तथा उत्पादन शुल्क विभाग के अधिकारी भी ज़िलों में नियुक्त हैं।

अध्याय-10

डिप्टी कमिश्नरः शक्तियाँ, कार्य एवं भूमिका (Deputy Commissioner Powers, Functions and Role)

सामान्य परिचय

जिला एक प्रशासनिक इकाई है। राज्य की राजधानी से नीचे का क्षेत्रीय प्रशासन होने के नाते जिला प्रशासन सरकार की समग्रता का प्रनिनिधित्व करता है। जिला ही वह छोटी इकाई है, जो युगों से भारत में स्थानीय स्वराज्य का प्रारूप प्रस्तुत करता है। इस प्रकार सामाजिक और राजनीतिक जीवन के दो महत्त्वपूर्ण कार्य "सुरक्षा" एवं "विकास" जिला प्रशासन की परिधि में आ जाते हैं। वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण जिला कलक्टर एवं जिला दण्डनायक संस्था का एक बहुत पुराना इतिहास है। "जिला" सामान्य प्रशासन की इकाई के रूप में लगभग सारे विश्व में प्रचलित है। यद्यपि इसके नाम अलग–अलग हैं। जैसे– मलेशिया में 'जाजाहन' फ्रांस में 'डिपार्टमेन्ट', अमेरिका में 'कन्ट्री' तथा थाईलैण्ड में 'एम्फास' के नाम से पुकारा जाता है। नाम के अतिरिक्त इनमें कई प्रकार की भिन्नताएँ हैं। अतः तुलना करना कठिन है, फिर भी जिले का एक आवश्यक तत्त्व यह है कि ये एक ऐसी भौगोलिक इकाई है, जिसमें स्थानीय प्रशासन हेतु आवश्यक सभी संस्थाएँ व अभिकरण व्यवस्थित है।

प्रादुर्भाव

जिला या जनपद पूर्णता में शासन का प्रतिनिधित्व करनेवाली प्रशासनिक इकाई है। भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का यह महत्त्वपूर्ण अंग होने के साथ–साथ अत्यधिक सम्पन्न संस्थाओं में से एक है। बिट्रिश शासन के दौरान प्रशासन को लोकोन्मुखी बनाने के उद्देश्य से पूरी सतर्कता से प्रस्थापन किया गया था। यह बिट्रिश शासन की ही देन है।

प्रारम्भ में जिले का निर्माण राजस्व वसूली के उद्देश्य से किया गया था, किन्तु कालान्तर में यह एक आधारभूत प्रशासनिक इकाई के रूप में परिवर्तित हो गया, जो एक सरकार के सभी महत्त्वपूर्ण दायित्वों यथा व्यावहारिक व आपराधिक, न्याय, कानून व्यवस्था, तकनीकी, क्रिया–कलाप तथा कल्याणकारी योजनाओं को उचित रूप से निभाने में भी सहायक है।

जिला प्रशासन, इतिहासकारों के अनुसार आर्य समाज की देन है। सम्राट अशोक का राज्य बहुत विशाल था। कुशल प्रशासन के लिए यह जरूरी था कि उसे छोटी–छोटी इकाइयों में विभक्त किया जाए। प्रत्येक इकाई का सम्राट द्वारा एक मुखिया नियुक्त होता था, जिसे सभी प्रकार के अधिकार थे। गुप्त शासनकाल में भी यही परम्परा चलती रही। उन दिनों ग्राम राजस्व के लिए इकाई था। ग्राम मुखिया ही राजस्व की वसूली के लिए जिम्मेदार था। दिल्ली सल्तनत के दौरान भी कमावेश यही व्यवस्था थी, यद्यपि नाम अलग–अलग थे। मुगल साम्राज्य कई सूबों में विभाजित था। सूबे सरकारों में तथा सरकारें परगनों में विभाजित थी। मुगल साम्राज्य की सरकार वर्तमान जिले की तरह थी, जिसका अधिकारी फौजदार कहलाता था। फौजदार सम्राट का प्रतिनिधि होने के साथ–साथ कानून व्यवस्था के लिए भी उत्तरदायी था। अकबर के समय जिलों को सरकार तथा इसके प्रशासक को मनसबदार कहा जाता था।

बिट्रिश शासन के दौरान इस व्यवस्था को अत्यन्त सुविधाजनक पाया। इसका मुख्य उद्देश्य राजस्व की वसूली तथा अपने प्रभाव को पुख्ता रूप में स्थापित करना था। सर जॉन शोर (जो बाद में गवर्नर जनरल बने) ने जिला स्तर के अधिकारियों को अधिक शासनाधिकार देने की वकालत की। वे इन अधिकारियों को न्यायिक अधिकार देने के पक्ष में थे। तत्कालीन भारतीय व्यवस्था के अनुरूप ही बिट्रिश शासकों ने सारे देश को जिलों में विभक्त कर उन्हें जिला कलक्टरों के अधीन रखा। जिला कलक्टरों को असीमित अधिकार प्रदान किए गए। विशाल भू–भाग को अन्य साधनों से शासित करने का यही एक मात्र संभव उपाय था।

सन् 1765 में ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी मुगल सम्राट शाह आलम के मिलने को भारत में बिट्रिश शासन का आरम्भ माना जा सकता है। बिट्रिश शासकों ने तत्कालीन व्यवस्था जारी रखते हुए व्यवस्था पर नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण

हेतु अपनी स्वयं की पद्धतियाँ लागू की। कालान्तर में कलक्टर जिले का न्यायाधीश एवं दण्डनायक बनाया गया, जिसे असीमित अधिकार थे। 1793 में लार्ड कार्नवालिस ने राजस्व व न्याय प्रशासन को अलग–अलग किया, किन्तु अन्य बिट्रिश प्रशासन इसके विरुद्ध थे, और उन्होंने जिला कलक्टर को ही जिले का वास्तविक मुखिया बनाया। यह व्यवस्था भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम 1857 के दौरान बहुत ही कारगर सिद्ध हुई। विद्रोह की समाप्ति पर पूरे भारत में जिला कलक्टर, शक्तिशाली अधिकारी बनाया गया। किन्तु धीरे–धीरे विधायिका द्वारा नये–नये कानून बनाए जाने से जिला कलक्टर की शक्तियों पर कुछ अंकुश लगने लगा। 1919 में लागू किए गए सुधारों में से एक सुधार शासन में राजनीतिज्ञों की हिस्सेदारी थी। तब कलक्टरों को राजनीतिज्ञों के साथ कार्य करना पडता था, तथा उस समय नई स्थापित विधानपरिषदों ने जिला कलक्टर की शक्तियों को काफी क्षीण किया, किन्तु 1935 में गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के तहत जिला कलक्टरों को सरकार का पुनः प्रतिनिधि बना दिया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात जिला प्रशासन– स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जिलाधीश के अधिकार और भूमिका में परिवर्तन आया है। सरकारी मशीनरी में जन प्रतिनिधित्व तथा जनप्रतिनिधियों द्वारा कार्यकारी शक्तियों के उपयोग की उत्कण्ठ कामना से इस संस्था क अधिकारों में कमी आई है। 1974 में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया, जिसके तहत सी0 आर0 पी0 सी0 लागू की गई। अब जिला कलक्टरों से सभी प्रकार की न्यायिक शक्तियाँ वापस ले ली गई। अब जिले में न्यायिक प्रशासन जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा नियन्त्रित होता है। अब कलक्टर किसी व्यक्ति को फांसी की सजा नहीं दे सकता। फिर भी जिला कलक्टर वर्तमान में भी जिला प्रशासन का सर्वोच्च प्रभारी है, तथा सभी प्रमुख कार्य यथा कानून व्यवस्था, राजस्व एकत्रण, रसद तथा विकासात्मक कार्यों के लिए उत्तरदायी है।

सरकार द्वारा समय–समय पर अनेक प्रकार के विकासात्मक कार्यक्रम चलाए गए हैं जिसके अन्तर्गत भी कलक्टर पर महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी आ गई है। 1970 के बाद व्यक्तिगत कार्यक्रमों पर जोर दिया जाने लगा है। इन कार्यक्रमों की जिम्मेदारी भी कलक्टर को सौंप दी गई है। वर्तमान में सरकार द्वारा चलाए जा रहे रोजगार, अल्प बचत, पर्यावरण संरक्षण, परिवार नियोजन, साक्षरता आदि के कार्यक्रमों के चलते भी कलक्टर के कार्यों पर बड़ा भारी दवाब आया है जिससे उसको कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

कलक्टर का मुख्य कार्य विभिन्न विभागों के बीच समन्वय बनाए रखना भी है। जबकि अन्य तकनीकी व गैर तकनीकी विभागों का कार्य विभागीय अधिकारीगण ही करते हैं। कलक्टर का सभी विभागों पर नियन्त्रण तथा जिले से सम्बन्धित सभी योजनाओं का विकास सम्बन्धी गतिविधियों की सीधी जिम्मेदारी उनकी ही है। गुजरात एवं महाराष्ट्र में तो विकास का समस्त कार्य जिला परिषदों को सौंप दिया गया है। और वहाँ कलक्टर को केवल प्रशासनिक कार्य ही करना होता है। जिले में विकास सम्बन्धी गतिविधियों को पंचायती राज्य संस्थाओं के माध्यम से संचालित किया जाने लगा है।

जिला प्रशासन व राज्य के लिए जिला कलक्टर एक महत्त्वपूर्ण पद है। यह संस्था कहीं पर जिला कलक्टर व जिला दण्डनायक व कहीं पर उप–आयुक्त के पद नाम से प्रचलित है। इस प्रकार जिला कलक्टर का पद निरन्तरता तथा परिवर्तन का प्रमाण है। स्वतन्त्रता के पश्चात् कलक्टर ने निरन्तरता बनाए रखते हुए परिवर्तनों का भी समावेश किया है। कार्यकारी विभागों का प्रशासनिक विभागों से सीधा सम्पर्क तथा उनकी योजनाओं में दखल देने की उत्सुकता ने कलक्टर का महत्त्व घटाया है। पंयाचती राज संस्थाओं तथा स्वायत्तशासी संस्थाओं ने कलक्टर के शक्तिशाली साम्राज्य पर काफी हद तक अतिक्रमण किया है। वर्तमान सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नीति से भी कलक्टर के नियामकीय कार्यों में कमी आएगी। किन्तु फिर भी यह संस्था समय की कसौटी पर खरी उतरी है।

जिला प्रशासन : प्रशासनिक ढाँचा

जिले में कलक्टर की सहायतार्थ अतिरिक्त जिला कलक्टर, उप–जिला कलक्टर व सहायक कलक्टर भी नियुक्त रहते हैं। प्रत्येक जिला पुनः उपखण्डों में विभाजित है। प्रत्येक उपखण्ड पर उपखण्ड अधिकारी व उपदण्डनायक कार्यरत है। उपखण्ड पुनः तहसीलों या तालुकों में विभाजित है, जिन्हें चलाने के लिए तहसीलदार होते हैं। ये सभी जिला कलक्टर के मार्गदर्शन में तथा उसक सीधे नियन्त्रण में कार्य करते हैं।

निम्नलिखित चित्र द्वारा जिला स्तर से ग्राम स्तर तक के प्रशासनिक ढाँचे एवं कार्यरत मशीनरी को पद सौपानात्मक व्यवस्था के रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है–

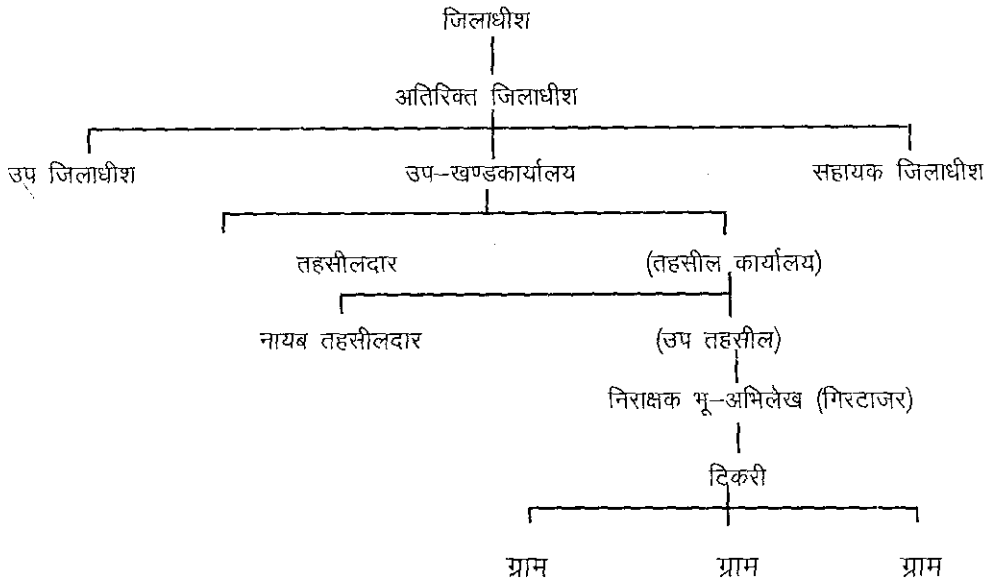

कलक्टर भर्ती एवं सेवा शर्ते

कलक्टर साधारणतया भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य होता है। वह या तो भारतीय प्रशासनिक सेवा में सीधी भर्ती द्वारा नियुक्त अथवा राज्य प्रशासनिक सेवा में पदोन्नत पदाधिकारी होता है। प्रत्यक्ष भर्तीवाले कलक्टर नवयुवक एवं पदोन्नत कलक्टर प्रौढ़ व्यक्ति होते हैं। सामान्यतः भारतीय सन्दर्भ में राज्य सिविल सेवाओं की पदोन्नति द्वारा कलक्टर बनाए गए हैं। कई राज्यों में यह स्थिति बढ़ी हुई देखने में आती है।

कलक्टर की नियुक्ति प्रारंभ में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है तथा भारत सरकार द्वारा उसकी शर्तों का नियमन किया जाता है किन्तु वह राज्य सरकार के लिए कार्य करता है। उसकी सेवा की शर्तें जैसे– वरिष्ठता नियमन, आचार सम्बन्धी नियम, अनुशासन, यात्रा भत्ते आदि केन्द्र सरकार के नियमों द्वारा निर्धारित होते हैं। संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत उसे कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की गई है। जिसके अनुसार भारतीय प्रशासनिक सेवा का कोई भी अधिकारी केन्द्र सरकार की अनुमति के बिना निलम्बित नहीं किया जा सकता और न ही पदावनत किया जा सकता है।

कलक्टर के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व

1. **राजस्व प्रशासन** - राजस्व प्रशासन के अन्तर्गत जिलाधीश द्वारा तीन प्रकार के कार्य सम्पन्न किए जाते हैं जो निम्न प्रकार हैं–

   (1) ***भू-अभिलेखों का संधारण :*** जिले में सभी प्रकार के भू–अभिलेखों को तैयार करने की जिम्मेदारी ग्राम स्तर पर पटवारी की होती है। पटवारी, जिला प्रशासन का मेरूदण्ड है। प्रशासनिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी विभिन्न प्रकार के अभिलेख पटवारी द्वारा ही तैयार किए जाते हैं। यह समस्त कार्य जिला कलक्टर के निर्देशों की पालना करते हुए भी किए जाते हैं। बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में तहसीलदार, नायब तहसीलदार, व गिरदावर (निरीक्षक भू–अभिलेख) द्वारा समय–समय पर पटवारी के कार्यों का पर्यवेक्षण किया जाता है व निर्देशों की पालनार्थ आदेश प्रसारित किए जाते हैं जिनकी पालना करते हुए पटवारी भू–अभिलेख तैयार करता है।

   (2) ***लगान की वसूली :*** कलक्टर या जिलाधीश का अंग्रेजी भाषा के शब्द–कोष के अनुसार शाब्दिक अभिप्राय उस व्यक्ति से है जो राजस्व संग्रह करता है अथवा कराता है। यद्यपि भू–राजस्व वर्तमान समय में अपना महत्त्व खो चुका है फिर भी इसके महत्त्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। लगान की वसूली भी ग्राम स्तर पर पटवारी द्वारा ही की जाती है।

   (3) ***भूमि सम्बन्धी विवाद :*** जिलाधीश द्वारा भूमि सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के विवाद का निपटारा भी किया जाता है। जिलाधीश को तहसीलदार द्वारा पारित न्यायिक मामलों सम्बन्धी आज्ञाओं की अपीलें सुनने का भी अधिकार भी होता है।

इस प्रकार जिलाधीश को भू राजस्व, राजस्व अभिलेख एवं भूमि सम्बन्धी विवादों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं।

2. **कानून एवं व्यवस्था बनाए रखना (जिला दण्डनायक के रूप में)** - जिलाधीश को अपने पद के साथ–साथ जिला दण्डनायक के रूप में निम्नांकित कार्यों व उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है–

(1) जिला दण्डनायक के रूप में वे जिले की पुलिस का नियन्त्रण रखने तथा अपराध से सम्बन्धित प्रशासन क लिए जिला स्तर पर सर्वेसर्वा है।

(2) जिला दण्डनायक को उनके अधीनस्थ कार्यरत उप दण्डनायकों व कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों , थानों व उप–कारागृह कार्यालयों के निर्धारित मापदण्ड के अनुसार निरीक्षण के अधिकार होते हैं।

(3) जिला दण्डनायक जिले में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है।

(4) जिला दण्डनायक को भारतीय आयुध (शस्त्र) अधिनियम की धाराओं के अन्तर्गत अनुज्ञा पत्र देने के अधिकार प्राप्त है तथा विस्फोटक अधिनियम के तहत अनुज्ञा पत्र देने का अधिकार भी है।

(5) जिला दण्ड नायक को छविगृह अधिनियम के अन्तर्गत अनुज्ञा पत्र एवं अनुमति देने का अधिकार प्राप्त है।

(6) राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को बिना न्यायालय में विचारण के लिए जेल में बन्द करने का अधिकार है, यदि वह व्यक्ति राष्ट्र व समाज के हितों के विपरीत हो। असामाजिक तत्त्वों का दमन भी आवश्यक है, इस हेतु गुण्डा एक्ट आदि के जरिए जिला दण्डनायक को शक्तियाँ दी गई है।

(7) अभियोजन पर नियन्त्रण तथा लोक अभियोजकों की नियुक्ति का कार्य भी कलक्टर द्वारा ही सम्पन्न होता है।

(8) राज्य सरकार के गुप्त निर्देशों का पालन भी जिला कलक्टर द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार कलक्टर के न्यायिक अधिकार अत्यन्त ही सीमित है। अधीनस्थ न्यायालयों को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 107 या 145 के अधीन प्रदत्त अधिकारों पर अपीलीय न्यायालय कलक्टर नहीं है। केवल कुछ मामलों में ही अपीलीय न्यायालय है किन्तु गैर न्यायिक मामलों में कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता में कलक्टर को विशाल अधिकार प्राप्त है। जिनकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं।

3. **जिला विकास अधिकारी** : जिलाधीश से जिला विकास अधिकारी के रूप में निम्नांकित कार्य करने की अपेक्षाएं की गई है–

(1) जिले में चल रही विभिन्न योजनाओं की प्रगति की समीक्षा, योजनाओं की क्रियान्वित की प्रक्रिया का निर्धारण तथा जिला परिषद् के प्रस्तावों व निर्णयों की क्रियान्वित एवं योजनाओं के स्वरूप में सुधार हेतु सुझावों का प्रस्तुतीकरण।

(2) जिला स्तर पर स्थापित राज्य के विभिन्न विकास विभागों के कार्यों में सहायता व उनके मध्य सामन्जस्य स्थापित करना।

(3) पंचायत समीतियों के स्तर पर उपलब्ध धनराशि के सदुपयोग पर निगाह रखना एवं समीक्षा करना कि विकास अधिकारीगण अपने उत्तरदायित्वों का समुचित रूप से निर्वाह कर रहे हैं।

(4) पंचायत समीतियों को कुछ कार्यों हेतु जिलाधीश की स्वीकृति लेनी पड़ती है। इसी शहरी क्षेत्र में नगरपालिकाओं एवं नगर परिषदों को भी कुछ विशेष कार्यों हेतु जिलाधीश की स्वीकृति लेनी होती है उसे जिलाधीश की सिफारिश के साथ राज्य सरकार को स्वीकृति हेतु भेजना पड़ता है।

(5) जिले की बैकिंग गतिविधियों से भी कलक्टर निकट रूप से बैंकों की जिला स्तरीय समन्वय समिति के अध्यक्ष के तौर पर जुड़ा हुआ है।

(6) कलक्टर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण तथा समेकित जन जाति विकास अभिकरण का अध्यक्ष भी है और इस प्रकार इन संस्थाओं की जिला स्तरीय नीतियों तथा कार्यक्रमों का निर्धारण भी कलक्टर द्वारा किया जाता है।

4. **नियन्त्रक अधिकारी जिला कोष कार्यालय** - कोष कार्यालय नियमों के अन्तर्गत कोष कार्यालय का सामान्य नियन्त्रण जिलाधीश में निहित किया है और यह अपेक्षा की गई है कि जिलाधीश इन नियमों के अन्तर्गत कोष कार्यालय का अंकित विधि के अनुसार नियमों का पालन करवाएँगे व राज्य सरकार, महालेखपाल एवं रिजर्व बैंक को सामयिक सूचनाएँ निर्धारित प्रपत्र पर प्रस्तुत करवाने का समुचित प्रबन्ध करेंगे। नियमों के अन्तर्गत जिलाधीश द्वारा समय–समय पर व्यक्तिशः शेष का भौतिक

सत्यापन किए जाने की अपेक्षा भी की गई है।

जिलाधीश शेष कार्यालय को अपने नियन्त्रण में संचालित करते हुए राज्य के प्रति कोष कार्यालय की समान्य व्यवस्था और कार्यकलापों के लिए उत्तरदायी होंगे तथा नकद राशि, स्टाम्पस, राजकीय अन्य सम्पत्ति की सुरक्षा व्यवस्था, अधीनस्थ अधिकारियों /कर्मचारियों मय कोषाधिकारी के द्वारा राज्य सरकार व महालेखाकार द्वारा निर्देशित आज्ञाओं का पालन, निर्धारित राशि व सम्पत्ति से ज्यादा नहीं रखने का उत्तरदायित्व, कोष कार्यालय में वित्त विभाग द्वारा निर्देशित पंजिकाओं आदि का संधारण, सामयिक सूचनाओं का प्रस्तुतीकरण के कर्तव्यों की अपेक्षा उनसे की गई है।

आकस्मिक व आवश्यक परिस्थितियों में वो यथा--प्रस्तावित बाढ़, अकाल, संक्रामक रोग, तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं व घटनाओं के समय राज्य कोष से राशि का भुगतान करने के लिए कोषाधिकारी को अधिकृत कर सकते हैं व भुगतान करवा सकते हैं, चाहे इस कार्य हेतु राज्य सरकार की स्वीकृति पूर्व में प्राप्त नहीं हुई है।

5. **चुनावों का संचालन** : जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 20 (अ) के अन्तर्गत जिलाधीश को निर्वाचन अधिकार शक्तियाँ प्रदत्त की जाकर मुख्य निर्वाचन अधिकारी के दिशा निर्देश के अनुरूप अपने क्षेत्र में लोकसभा तथा विधानसभा के चुनाव सम्पन्न करवाने के सम्बन्ध में समस्त निर्वाचन कार्य करवाने व पर्यवेक्षण व नियन्त्रण रखने के समस्त अधिकार धारा 21 में संसद क्षेत्र के रिटर्निंग आफिसर के कर्तव्य एवं समस्त अधिकार 125 में मतदान केन्द्र स्थापित करने के अधिकार धारा 26 में पीठासीन अधिकारियों एवं अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति के अधिकार निहित किए गए हैं। इस माध्यम से जनतन्त्रीय इकाइयों का गठन होकर भारतीय संविधान की अपेक्षाओं को साकार करने में कलक्टर का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व परिलक्षित होता है।

6. **जिलाधीश (भारतीय मुद्रांक अधिनियम 1889) के अन्तर्गत :** उक्त अधिनियम के अन्तर्गत उचित मुद्रांक का प्रमाण पत्र देने के अधिकार, अनियमित एवं अपूर्ण मुदांकवाले प्रलेखों पर कार्यवाही करने के अधिकार, कम मूल्यांकित प्रलेखों पर कार्यवाही करने का महत्त्वपूर्ण अधिकार प्रदत्त किया गया है। इसी अधिनियम के अन्तर्गत खराब हुए मुद्रांक पत्र तथा बिना प्रयोग मे लिए गए मुद्रांकों (स्टाम्प) पर कार्यवाही कर राशि लौटाने सम्बन्धी अधिकार निहित है।

7. **जिलाधीश (जिला पंजीयक) (भारतीय पंजीयन अधिनियम 1908) के अन्तर्गतः** उक्त अधिनियम की धारा 5 के अन्तर्गत गठित प्रत्येक जिले के लिए जिलाधीश को जिला पंजीयक का स्वरूप दिया गया है। साथ ही धारा 66 व 67 के अन्तर्गत प्रक्रिया सम्बन्धी विशेष अधिकार धारा 68 के अन्तर्गत उपयोग द्वारा पंजीयन प्रक्रिया मे हुई भूल संशोधन करने, धारा 83 में अभियोग चलाने सम्बन्धी शक्तियाँ प्रदत्त की गई है। इस प्रकार उक्त अधिनियम के अन्तर्गत समस्त पूर्वकालिक उपपंजीयक तथा पदेन उपपंजीयक (तहसीलदार) पर पूर्ण नियन्त्रण व पंजीयन प्रक्रिया के संचालन का उत्तरदायित्व जिलाधीश को दिया गया है।

8. **जनगणना का कार्य**- प्रत्येक दस वर्ष बाद होनेवाली आम जनगणना के लिए भी जिलाधीश एक समन्वयकर्ता के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

9. **नागरिक आपूर्ति (आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955)**- उक्त अधिनियम के अन्तर्गत बने भिन्न-भिन्न आदेशों, राज्य आज्ञाओं के अन्तर्गत कलक्टर को नागरिकों में आवश्यक वस्तुओं का समुचित व समान वितरण करवाने की दृष्टि से अनेक अधिकार दिए गए है जिसके द्वारा कलक्टर न केवल आवश्यक वस्तुओं का जिले की जनता में समान रूप से एवं सामयिक रूप से वितरण ही करवाते हैं, अपितु इस बात का नियन्त्रण भी रखते हैं कि ऐसी वस्तुएँ असामाजिक तत्त्वों व वितरकों या अनुज्ञाधारियों द्वारा दुरुपयोग में नहीं लाई जाए। आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 की नव स्थापित धारा 6 (ए) में जिलाधीश को महत्त्वपूर्ण अधिकार दिए गए हैं जिनके अनुसार अवैधानिक व अनियमितताओं के अन्तर्गत पकड़ी हुई वस्तुओं को जब्त कर सरकारी उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से जनता में वितरण करवाने का अधिकार प्राप्त है।

10. **पंचायती राज संस्थाओं में भूमिका**- बलवन्त राय मेहता कमेटी के सिफारिशों के अन्तर्गत तथा 73 वें संविधानिक संशोधन राज्यों में जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के रूप में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया गया। इन संस्थाओं में जिलाधीश की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। क्योंकि जिले में अनेक विकास कार्यक्रमों का संचालन इन संस्थाओं द्वारा ही किया जा रहा है जिसमें कलक्टर किसी न किसी रूप में जुडा हुआ है। वैसे भी इस बात की तीव्र मांग बढ़ती जा रही है कि जिलाधीश को नियामकीय कार्य से छुटकारा दिलवाकर मुख्यतः विकास कार्यों से ही सम्बन्धित होना चाहिए। स्वतन्त्र भारत में जिलाधीश

पद की स्थापना के पीछे मुख्य उद्देश्य विकास कार्यों से सम्बद्ध करना ही था। कई राज्यों में वह विकास खण्ड अधिकारी (बी0 डी0 ओ0) का गोपनीय प्रतिवेदन तैयार करता है तथा छुट्टी मंजूर करता है। इस प्रकार पंचायती राज संस्थाओं में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

11. **समन्वय**- सरकार की नीतियों के शांतिपूर्ण एवं शीघ्र क्रियान्वयन हेतु सरकार के विभिन्न विभागों में समन्वय अति आवश्यक है। यह समन्वय जिला कलक्टर द्वारा ही किया जाता है। सामाजिक सुरक्षा व लोक कल्याण सम्बन्धी समस्त क्रिया–कलाप यथा परिवार कल्याण, राष्ट्रीय बचत योजना, बच्चों को पोषाहार व कुपोषण से बचाना, समाज कल्याण छात्रावास, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए भूमि अधिग्रहण, मद्यनिषेध, पर्यावरण नियन्त्रण तथा सार्वजनिक प्रणाली द्वारा आवश्यक वस्तुओं की उचित मूल्यों पर उपलब्धता इत्यादि कार्य कलक्टर द्वारा ही सम्पन्न किए जाते हैं। कलक्टर विभिन्न जिला स्तरीय अभिकरणों के बीच पूर्ण समन्वय से इन्हें सुनिश्चित करता है। उसे सरकार के विभिन्न आदर्शों से प्रभाव व शक्तियाँ प्रदत्त है। जिले की स्थिति से सरकार को अवगत कराना तथा जनता को राज्य की इच्छाओं की जानकारी देना केवल कलक्टर का ही कार्य है। सरकार नई परियोजनाओं पर कलक्टर से परामर्श करती है तथा कलक्टर किसी परियोजना के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं से अवगत करवाता है, भले ही उस परियोजना को तकनीकी तौर पर सही पाया गया हो, 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु कलक्टर मुख्य समन्वयक है। जिला समन्वय कार्यकारी समिति की बैठक बुलाना तथा उसमें विभिन्न विभागों के द्वारा प्राप्त लक्ष्यों की समीक्षा करना भी कलक्टर का दायित्व है। विभिन्न प्रकार की अराजकीय परामर्शदायी समीतियों में भी कलक्टर कहीं अध्यक्ष, कहीं सचिव, कहीं संयोजक की हैसियत से ही जुड़ा है। आपात् काल में सैन्य बलों के साथ समन्वय भी कलक्टर द्वारा ही किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कलक्टर जिले के समस्त विभागों एवं उनके क्रिया कलापों के सम्बन्ध में एक समन्वयकर्ता के रूप में भूमिका निभाता है।

12. **बाढ़ अकाल व अन्य प्राकृतिक विपदाओं में जिलाधीश**- जिले की जनता के संरक्षक के रूप में कोई भी कार्य विभीषिका चाहे दुर्घटना हो, जिलाधीश से राज्य सरकार द्वारा प्रसारित आज्ञाओं के अन्तर्गत प्रभावित परिवार को बचाने की तात्कालिक व्यवस्था करने, राज्य सरकार को सुझाव भेजकर, फेमिन कोड के अन्तर्गत प्रतिवेदन भेजकर प्राकृतिक आपदाओं स ग्रसित क्षेत्र घोषित करवाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। यह कार्य कलक्टर के लिए गम्भीर उत्तरदायित्व मानवीयता का है जिनक प्रयोग से जिले का प्रत्येक नागरिक किसी भी विपत्ति से बचने हेतु तत्काल सहायता प्राप्त कर सकता है।

13. **जन सम्पर्क व प्रोटोकॉल**- कलक्टर जिले का मुख्य जन सम्पर्क तथा प्रोटोकॉल अधिकारी है, उनकी सहायता के लिए जिले में जिला जन सम्पर्क अधिकारी होता है। महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ करने तथा जिले की जनता को विकास सम्बन्धी गतिविधियों की जानकारी देने के लिए समाचार पत्रों के माध्यम से कार्य सम्पन्न करता है। जिले में आनेवाले विशिष्ट अतिथियों का स्वागत करना तथा उनके लिए आवश्यक व्यवस्था करना भी कलक्टर की जिम्मेदारी है।

14. **जनता की शिकायत सुनने का अधिकार**- जनता से प्राप्त शिकायतों का निराकरण, अपने अधीनस्थ अधिकारियों एव कर्मचारियों के माध्यम से करवाने का दायित्व भी कलक्टर का होता है। जिला कलक्टर जन अभाव अभियोग समिति का अक्ष्यक्ष भी होता है।

15. **अयोजना** - जिला अयोजना तथा कृषि आयोजना कलक्टर द्वारा ही तैयार करवाई जाती है। विभिन्न सिचाई परियोजनाओं में जलप्रदाय कर परियोजना भी कलक्टर के द्वारा ही तय होती है। जिला साख परामर्शदायी समिति का अध्यक्ष होने क नाते, जिला साख कार्यक्रम, बैंकों की सहायता से कलक्टर द्वारा ही तैयार किया जाता है।

16. **प्रशासनिक** - कई राज्यों में जिला स्तरीय विभागों पर कलक्टर का पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण है, तथा जिला स्तरीय अधिकारियों का वार्षिक कार्य, मूल्यांकन प्रतिवेदन कलक्टर द्वारा ही लिखा जाता है। राजस्व प्रशासन में अधीनस्थ कार्यालयों का निरीक्षण, मार्गदर्शन, निर्देशन भी उसके द्वारा ही किया जाता है। नियुक्ति, पदोन्नति के समस्त अधिकार कलक्टरों को प्रदत्त हैं।

17. **समारोह**- गणतन्त्र दिवस व स्वतन्त्रता दिवस पर राष्ट्रीय ध्वजारोहण तथा सम्मान गारद का निरीक्षण भी कलक्टर द्वारा ही किया जाता है।

18. **विशेष विवाह अधिनियम 1954**- इस अधिनियम के तहत जिलाधीश को विवाह अधिकारी का स्वरूप दिया जाकर उनके समक्ष ऐसे विवाह सम्पन्न करवाने व तत्सम्बन्धी पंजीकरण करने की प्रक्रिया होने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है जो कि एक सामाजिक कार्यक्रम के धर्मगुरू के रूप में महत्त्वपूर्ण कार्य है।

19. **अन्य**- उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त भी कलक्टर को कई अन्य कार्य करने को कहा जाता है। परिवार कल्याण के सघन अभियान का आयोजन, वन प्रोत्साहन पर्यावरण संरक्षण इसके उदाहरण हैं।

जिलाधीश : विकास प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में बदलती भूमिका

विकासात्मक कार्यक्रमों को सम्पन्न करने में जिलाधीश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिला स्तर पर सामुदायिक विकास कार्यों में समन्वय तथा सहयोग लाने के लिए योजनाओं के निर्माण एवं उनकी उचित रूप के क्रियान्विति के लिए वही जिम्मेदार है। जिलाधीश को नियमकारी कार्यों के साथ--साथ कार्यों को भी सम्पन्न करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में हमारे सामने कई प्रश्न चिह्न उभरकर आते हैं।

1. क्या जिले में जिलाधीश ही अकेला विकास कार्यों व नियमनकारी कार्यों का दायित्व भली--भाँति निभा सकता है ?
2. क्या जिलाधीश के इन कार्यों को अलग--अलग कर देना समाचीन होगा ?
3. क्या सामान्य सी पृष्ठभूमिवाले जिलाधीश विकास कार्यों की सूक्ष्मताओं को भली प्रकार समझते हैं ?
4. यदि विकास कार्यों को जिलाधीश की बजाय अन्य विशेषज्ञ व्यक्ति को सौंपे तो उसकी योग्यता क्या हो ?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर में एक सुझाव यह आया है कि नियमनकारी कार्य कलक्टर को सौंपे जाए तथा विकास कार्यों का दायित्व उसी के समतुल्य दर्जेवाले विकासमूलक कार्यों में विशिष्टता रखने वाले विशेषज्ञ प्रशासक को सौंपा जाए। अशोक मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन में सुझाया था कि जिला स्तर पर "मुख्य कार्य पालक अधिकारी" का पद निर्मित किया जाना चाहिए जिसके नियन्त्रण में जिले का विकास सम्बन्धी समस्त प्रशासन रहेगा। ऐसा होने पर कलेक्टर विकास कार्यों से मुक्त किया जा सकेगा। ऐसा प्रयास कुछ राज्य सरकारों द्वारा किया भी गया है। महाराष्ट्र राज्य में कलक्टर को विकास कार्यों से पूर्णतः मुक्त कर दिया गया है। जिला स्तर पर विकास कार्यों का उत्तरदायित्व प्रमुख कार्यकारी अधिकारी को सौंपा गया है। यह अधिकारी कलक्टर के स्तर का वरिष्ठ अधिकारी होता है। कलक्टर और प्रमुख कार्यकारी अधिकारी जिला स्तरीय कार्यों में स्पष्ट एवं विवेक सम्मत विभाजन रेखाएं खींच दी गई है। विकास कार्यों से सम्बन्धित सभी विषयों के जिला स्तर अधिकारी तथा उनके अधीनस्थों को पूर्णतः प्रमुख कार्यकारी अधिकारी के नियन्त्रण में रखा गया है। प्रमुख कार्यकारी अधिकारी जिलापरिषद के अन्तर्गत आनेवाले स्थानीय विकास कार्यों के लिए उत्तरदायी है जबकि कलक्टर बड़ी राज्य योजनाओं और अन्य प्रशासकीय कार्यों के लिए उत्तरदायी है। इस अवस्था से कलक्टर की स्थिति पर किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया है। सच तो यह है कि अब वह अपना कार्य अधिक कुशलता और प्रभावपूर्ण ढंग से करता है। अब शनैः शनैः अन्य राज्य भी इस प्रक्रिया की ओर आकर्षित होने लगे हैं।

अनुभवों तथा अनुसन्धानों से यह तथ्य सामने आया है कि प्रशासकीय सेवा के अधिकारी अधिकांशतः न्यायशील कार्यों से अधिक व्यस्त रहते हैं जिसके फलस्वरूप वे विकास कार्यों के लिए उचित ध्यान नहीं दे पाते हैं जिसका असर विकास प्रशासन पर नकारात्मक होता है। अतः अब यह मांग जोर पकड़ती जा रही है कि नियामकीय तथा विकास कार्यों के लिए अलग--अलग अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए। भारत कृषिप्रधान देश है अतः कृषि तथा विकास अधिकारी के पद पर भारतीय कृषि सेवा अथवा कृषि विशेषज्ञ नियुक्ति किए जाने चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था से जहाँ एक ओर सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों की समस्या सुलझेगी वहीं दूसरी ओर विकास एवं प्रशासन में विशेषज्ञता के परिणामस्वरूप विकास प्रशासन को गति मिलेगी तथा ग्रामों का विकास तीव्र गति से हो सकेगा।

आज भी अधिकांशतः राज्यों में विकास कार्यों का कप्तान कलक्टर को ही रखा गया है। इसके पीछे यह मान्यता रही है कि जो विकास कार्य व्यक्तिगत निर्देशन की अपेक्षा रखते हैं उन्हें कलक्टर बेहतर कर सकता है। यदि कलक्टरों के पास विकास कार्यों को रखा भी जाता है तो जिले का क्षेत्र छोटा किया जा सकता है। उसे प्रोटोकोल कार्य से मुक्त रखा जा सकता है। पंचायती राज के अन्तर्गत लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के सफल संचालन के लिए कलक्टर को उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए।

संक्षेप में, पंचायती राज संस्थाओं में कलक्टर की चाहे कुछ भी स्थिति हो, जिला प्रशासन और पंचायती राज संस्थाओं में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सम्बन्ध में वी0 टी0 कृष्णामाचारी के ये विचार अत्यन्त महत्त्व के हैं, "कलेक्टर की भूमिका में परिवर्तन हुआ

है किन्तु ह्रास नहीं हुआ है क्योंकि उसको अब लोकतांत्रिक संस्थाओं का पथ प्रदर्शन करने का कार्य प्राप्त है। संकटकाल में आज भी सरकार कलेक्टर की ओर देखती है। आज भी कलेक्टर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चुनौतियों का दृढ़ता से मुकाबला करने की स्थिति में है जो इस संस्था की जागरूकता और जीवनदायिनी शक्ति का परिचायक है।

जिलाधीश कार्यालय, उसका संचालन तथा कार्यविधि

प्रत्येक जिला मुख्यालय पर जिलाधीश का कार्यालय स्थापित है। जिसको जिलाधीश कार्यालय अथवा कई प्रचलित भाषा में 'कलक्टरी'' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस कार्यालय में विभिन्न शाखाएं होती है जिनमें विभिन्न अधिनियमों, नियमों, राज्य–आज्ञाओं द्वारा अपेक्षित कार्य सम्पादन होता है। प्रत्येक शाखा में कार्य की मात्रा के अनुरूप कार्यालय सहायक, वरिष्ठ लिपिक, कनिष्ठ, लिपिक व टंकनकर्ता नियोजित होते हैं।

समस्त मन्त्रालयिक कर्मचारियों व जिलाधीश के बीच कार्य सम्पादन हेतु एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्यालय अधीक्षक का पद सृजित है, जिसका उत्तरदायित्व समस्त जिला कार्यालय में मन्त्रालयिक कर्मचारियों पर सामान्य नियन्त्रण, मार्गदर्शन व जिलाधीश कार्यालय के कार्य को समुचित रूप में संचालित करवाना है। कार्यालय अधीक्षक का कर्त्तव्य यह भी है कि प्रत्येक शाखा में कार्य बकाया न रहे, निस्तारण हेतु इकट्ठा न हो, पत्रावलियाँ सही ढंग से संधारित की जाएँ। जिला कार्यालय से प्राप्त होनेवाले पत्रादि व डाक समय पर प्राप्त होकर तत्परता से शाखाओं को वितरित कर दी जाए। उससे कार्य निष्पादन में आनेवाली समस्याओं का निराकरण करने, समस्त अभिलेखों को सुरक्षित रखने–रखाने, विभिन्न उच्चाधिकारियों व विभागों को भेजी जानेवाली सामयिक सूचनाओं आदि को निर्धारित समय पर भिजवाने, जिला कार्यालय को देने, समस्त विषयों की समुचित पत्रावलियाँ खुलवाने समस्त शाखाओं का छः माह निरीक्षण करने, अत्यंत आवश्यक पत्रादि की पंजीका संधारित करने, समस्त अधिनियमों व नियमों, विज्ञप्तियों का अद्यतन्त्र रखवाने आदि का उत्तरदायित्व अपेक्षित है। कार्यालय अधीक्षक से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह जिलाधीश द्वारा निर्देशित गोपनीय तथा सामान्य निर्देशों सम्बन्धी कर्त्तव्यपूर्ण निष्ठा से पालन करें।

अन्य कार्यालयों में जिलाधीश का कानूनी अधिकार

1. जिलाधीश जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष होता है। यह एक सोसाइटी है जिसका अतिरिक्त जिलाधीश (विकास) एवं परियोजना निदेशक मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। इस संस्था के पास कुछ ही अधिकारी होते हैं एवं यह काफी हद तक एक वित्तीय संस्था बनती जा रही है। यह पंचायत समितियों अथवा विभागों के जिला स्तरीय अधिकारियों द्वारा राज्य सरकार की कुछ योजनाओं को क्रियान्वित करती है।
2. जिला परिषद् का जिलाधीश सदस्य होता है एवं परिषद् भंग होने पर उसका प्रशासक नियुक्त किया जाता है।
3. जिला सैनिक बोर्ड का भी वह अध्यक्ष होता है। यह संस्था सैनिक एवं भूतपूर्व सैनिकों व उनके आश्रितों के हितों की देखभाल करने हेतु राज्य सरकार द्वारा स्थापित की गई है।
4. जिलाधीश जिला स्तरीय केन्द्रीय सहकारी बैंक एवं प्राथमिक भूमि विकास बैंक के निदेशक मण्डल का सदस्य होता है। कई बार इन संस्थाओं के निर्देशक मण्डल भंग किए जाने पर उन्हें संस्था का प्रशासक भी नियुक्त किया जाता है।
5. जिला दुग्ध उत्पादन सहकारी संघ का अध्यक्ष भी आमतौर से जिलाधीश को बनाया जाता है।
6. ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों के निदेशक मण्डल में जिलाधीश सदस्य होता है।
7. नगर सुधार न्यासों के जिलाधीश सदस्य होते हैं एवं इनके संचालक मण्डल भंग होने पर प्रशासक भी नियुक्त कर दिए जात हैं।
8. जिला स्तरीय बैंकर्स समन्वय समिति के जिलाधीश अध्यक्ष होते हैं।
9. जिला उद्योग केन्द्र के भी वे मुखिया होते हैं।
10. सिंचित कमाण्डवाले क्षेत्रों में कमाण्ड एरिया आथॉरिटी का भी जिलाधीश सदस्य होते हैं।

जिलाधीश की समस्याएँ

1. कार्यभार

अत्यधिक कार्यभार होने की वजह से कलक्टर रचनात्मक कार्य नहीं कर पाते हैं। कलक्टर के समय का अधिकांश भाग विभिन्न दायित्वों को पूरा करने भी चला जाता है। आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व जिला राजस्व कार्यालय पुनर्गठन समिति, बम्बई ने कलक्टर ने कार्यभार का विश्लेषण किया था। समिति के विश्लेषानुसार कलक्टर को प्रतिवर्ष 2, 975 घण्टे कार्य करना पड़ता है। कार्य का विवरण निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

क्रम संख्या	कार्य	घण्टे
1.	पत्र व्यवहार	1600
2.	बैठकें	200
3.	मुकदमों की सुनवाई	100
4.	जमाबन्दी एवं निरीक्षण	80
5.	ग्राम निरीक्षण	200
6.	क्षेत्र निरीक्षण	250
7.	यात्रा	240
8.	विशिष्ट व्यक्ति की सेवा	180
9.	दैनिक मुलाकात	125
	कुल घण्टे	2975

रविवार, अर्द्ध शनिवार एवं अवकाश के दिनों को छोड़कर गणना करने पर कलक्टर को एक दिन में ग्यारह से तेरह घण्टे तक कार्य करना होता है। स्पष्ट है कि कलेक्टर पर कार्य का अत्यधिक भार है। पंचायती राज ने उसके कार्य को और भी बढ़ाया है।

2. पंचायती राज संस्थायें

पंचायती राज संस्थाओं में कलक्टर का महत्त्व कम हो गया है। कुछ लोग कलक्टर से अधिक अधिकारों की वकालत करते हैं। उनका तर्क है कि पंचायती राज संस्थाओं को अधिकार राज्य से प्रदत्त है और राज्य अपने दायित्व कलक्टर के माध्यम से ही पूरा करता है। अन्य लोग पंचायती राज संस्थाओं को कलक्टर से एकदम मुक्त रखते हुए सीमित अधिकार देने के पक्ष में है। कई राज्य पंचायती राज संस्थाओं को अधिकार देने के पक्ष में नहीं है और इन संस्थाओं पर कलक्टर के माध्यम से अपना नियन्त्रण जारी रखना चाहते हैं, किन्तु राजनैतिक आवश्यकताओं के कारण स्पष्ट दिशा निर्देश देने से भी परहेज करते हैं। ऐसी स्थिति में पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में कलक्टर को एक प्रतिमा सम्पन्न कूटनीतिज्ञ की भांति अपना कार्य करना होता है।

3. राजनैतिक

प्राचीन भारत में जिला प्रशासन जैसी भी अवस्था में था, यह राजनैतिक प्रभाव दूर करने के उद्देश्य से ही था। बिट्रिश शासन के दौरान उसमें उन्होंने आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन किए। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान जिला प्रशासन को राजनैतिक गतिविधियों के दमन के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया था। इसीलिए स्वतन्त्र भारत में राजनीतिज्ञों द्वारा इस संस्था को संदेह की दृष्टि से देखा गया।

जन साधारण की प्रशासन में भागीदारी से कई प्रकार के दवाब समूह उत्पन्न किए गए हैं जिससे राजनैतिक हस्तक्षेप आम बात हो गई है। राजनीतिक वादों व आश्वासनों के आधार पर चुनाव में विजयी होते हैं और जिला प्रशासन को उनकी उचित व जायज माँगों पर सहानुभूति पूर्वक विचार करना ही पड़ता है। ऐसा न करने पर स्थानान्तरण का हथियार इन राजनीतिज्ञों द्वारा स्थानान्तरण काम

में लिया जाता है। नाजायज व असंवैधानिक बातों में कलेक्टर को बहुत सावधान, दबंग तथा कूटनीति का सहारा लेना ही पडता है। अतः आज की परिस्थितियों में कलक्टर का दबंग, उत्साही होना, सजग व ईमानदार होना अति आवश्यक हो गया है।

वास्तविक स्थिति

उपरोक्त अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि जिलाधीश एक बहुत ही शक्तिशाली संस्था है एवं आम जनता के लोग आज भी जिलाधीश को जिले का मुखिया समझते हैं, किन्तु वास्तव में जिलाधीश को कार्य कराने हेतु आदेश का कम एवं बातचीत का सहारा अधिक लेना पड़ता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. जिला प्रशासन से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताओं तथा महत्त्व का वर्णन कीजिए।
2. जिला प्रशासन के महत्त्वपूर्ण अधिकारियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. जिलाधीश की शक्तियाँ, कार्य तथा भूमिका का वर्णन कीजिए।

अध्याय-11
डिविजनल कमिश्नर
(Divisional Commissioner)

जिला भारतीय प्रशासन की प्रमुख इकाई है। इसी स्तर पर जनता का प्रत्यक्ष रूप से सरकार से सम्पर्क होता है और इसी स्तर पर प्रशासन की क्षमता को अनुभव किया जा सकता है। प्रत्येक राज्य के प्रशासन को चलाने के लिए उसे जिलों में विभाजित किया गया है तथा जिला के क्षेत्र में लोक–कार्यों के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व जिला प्रशासन पर होता है।

डिवीजनल कमिश्नर
(Divisional Commissioner)

जिला तथा राज्य स्तर के मध्य में डिवीजन (Division) की स्थापना की गई है। यद्यपि इस स्तर पर भिन्न–भिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न प्रकार की शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई है तथापि अधिकांश राज्यों में जिला प्रशासन में समन्वय और नियन्त्रण करने के लिए राज्यों को डिवीजनों में विभक्त किया गया है। डिवीजन का मुख्य अधिकारी कमिश्नर (Commissioner) होता है। इस पद की सर्वप्रथम व्यवस्था 1829 में की गई जब लार्ड विलियम बैंटिक (Lord William Bentick) के काल में सरकार ने कलेक्टर, जिला न्यायाधीश तथा जिला दण्ड अधिकारी के निरीक्षण के लिए राजस्व कमिश्नर (Commissioner of Revenue) की नियुक्ति की। तभी से यह पद क्षेत्र स्तर पर राज्य सरकार तथा ज़िला प्रशासन के मध्य में विद्यमान हैं। चाहे इस पद को समाप्त करने तथा बनाए रखने के बारे में समय पर विवाद होता रहा है परन्तु फिर भी तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, केरल तथा राजस्थान के राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों में इस पद की व्यवस्था की गई। राजस्थान में इस पद को 1961 में समाप्त किया गया था, परन्तु वहां पर सीमा क्षेत्र (Border Areas) के लिए अभी भी इस पद की व्यवस्था विद्यमान है। इस पद पर पहले भारतीय असैनिक (I.C.S) के पदाधिकारियों को नियुक्त किया जाता था परन्तु अब राज्य में काम करनेवाले भारतीय प्रशासकीय सेवाओं (I.A.S) के वरिष्ठ पदाधिकारियों को नियुक्त किया जाता है।

डिवीज़नल कमिश्नर के कार्य
(Functions of the Divisional Comissioner)

डिवीज़नल कमिश्नर को प्रशासन में विशेष स्थान प्राप्त है। राजस्व प्रशासन (Revenue Administration) से सम्बन्धित सभी विषयों पर उसका पूर्ण नियन्त्रण होता है और उसे सरकार द्वारा बहुत सी शक्तियां प्रदान की गई है। वह ज़िला प्रशासन में समन्वय करने और सरकार की नीतियों को लागू करने के लिए एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। विकेन्द्रीयकरण से सम्बन्धित राजकीय आयोग (Royal Commission on Decentralisation, 1906-09) के अनुसार, "उसे विशेष विभागों के उन कार्यों पर जो सामान्य प्रशासन अथवा लोक कल्याण को प्रभावित करें, नियन्त्रण करने का अधिकार होना चाहिए और उनके सम्बन्ध में उसका परामर्श लेना चाहिए जबकि उसे तकनीकी विवरण में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।" डिवीज़नल कमिश्नर के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. **राजस्व प्रशासन (Revenue Administration)** – डिवीज़नल कमिश्नर डिवीज़न में राजस्व प्रशासन का मुख्य अधिकारी है। इस स्थिति में वह डिवीज़न में राजस्व अधिकारियों का स्थानान्तरण (Transfers) करता है। डिवीज़न का मुख्य अधिकारी होने के कारण वह ज़िलाधीश के आदेशों के विरुद्ध अपील सुनता है। वह भू–राजस्व तथा तकावी ऋण को इकट्ठा करता है। वह अपने अधीन ज़िलों के बजटों का निरीक्षण करता है तथा उसे राज्य सरकार को भेजता है।

2. **कानून और व्यवस्था बनाए रखना (Maintenance of Law and Order)** – डिवीज़नल कमिश्नर डिवीज़न में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। इस कार्य के लिए वह ज़िला–दण्ड अधिकारी (District-Magistrate)

तथा पुलिस सुंपरिटैण्डेण्ट (Police Superintendent) को आदेश देता है और उन पर नियन्त्रण करता है। वह ज़िलाधीश से उसके ज़िले के सम्बन्ध में अपराधों (Crimes) तथा अव्यवस्था (Disorder) के बारे में रिपोर्ट माँग सकता है। कुछ राज्यों में पुलिस निम्नलिखित रिपोर्ट को डिवीज़नल कमिश्नर के समक्ष प्रस्तुत करती है–

(i) पुलिस सुपरिटैण्डेण्ट की साप्ताहिक रिपोर्ट, रोजनामचा

(ii) मासिक अपराध रिपोर्ट

(iii) वार्षिक पुलिस प्रशासन रिपोर्ट

3. **ज़िला प्रशासन का निरीक्षण (Supervision of District Administration)** – यद्यपि ज़िला प्रशासन पर निरीक्षण एवं नियन्त्रण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है परन्तु वास्तव में राज्य सरकार अधिक व्यस्त होने के कारण यह कार्य भली प्रकार से नहीं कर सकती। विशेषकर उत्तर प्रदेश जैसे बड़े–बड़े राज्यों में तो यह और भी कठिन है। ऐसी स्थिति में ज़िला प्रशासन पर निरीक्षण तथा नियन्त्रण करने पर उत्तरदायित्व डिवीज़नल कमिश्नर पर है। कमिश्नर ज़िलाधीश को कई प्रकार के प्रशासकीय आदेश दे सकता है और उससे प्रशासन के सम्बन्ध में रिपोर्ट माग सकता है। वास्तव में डिवीज़नल कमिश्नर का ज़िला प्रशासन पर बहुत नियन्त्रण होता है तथा वह ज़िला प्रशासन और राज्य सरकार के बीच में कड़ी का काम करता है।

4. **विभागीय समन्वय (Departmental Co-ordination)** – डिवीज़नल कमिश्नर को विभागीय समन्वय करने का अधिकार भी दिया गया है ताकि वह प्रशासन पर उचित ढंग से नियन्त्रण कर सके। यद्यपि डिवीज़न के स्तर पर विभिन्न विभागों के अधिकारी तकनीकी तौर पर स्वतन्त्र होते हैं, अपनी शक्ति का प्रयोग स्वतन्त्रतापूर्वक करते हैं परन्तु सामान्य मामलों में तो डिवीज़नल कमिश्नर के निरीक्षण तथा नेतृत्व में काम करते हैं। कई बातों में ज़िला अधिकारी तथा डिवीजनल विभागीय अधिकारी में कोई मतभेद हो जाए तो कमिश्नर निर्णय करता है जैसे यदि ज़िलाधीश तथा डिवीजन कमिश्नर निर्णय करता है।

5. **विकासशील कार्य (Developmental Functions)** – वर्तमान काल में डिवीज़नल कमिश्नर के कार्यों तथा उत्तरदायित्व में विशेष रूप से वृद्धि हुई है। राज्य द्वारा विकासशील कार्यक्रम अनपाए जाने के कारण उसे इस क्षेत्र मे भी दत्तचित होकर भाग लेना पड़ता है। वह इस बात की देखभाल करता है कि किस प्रकार से भिन्न–भिन्न प्रकार की विकासशील इकाइयां विकासशील योजनाओं को कार्यान्वित करती हैं। वह सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) तथा राष्ट्र प्रसार सेवा (National Extension Service) के अन्तर्गत होनेवाले कार्यों का निरीक्षण करता है, पंचायती राज को सफल बनाने के लिए प्रयास करता है तथा पदाधिकारी वर्ग और निर्वाचित सदस्यों में सद्भावना बनाए रखने के लिए उचित पग उठाता है। एक लेखक के अनुसार कमिश्नर को स्थानीय स्वशसन को सफल बनाने के लिए यत्नशील होना चाहिए तथा ज़िलाधीश एवं अन्य अधिकारियों और पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यो में समतल सम्बन्ध बनाए रखने के लिए प्रयास करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त वह पंचवर्षीय योजनाओं को लागू करने और उन्हें सफल बनाने के लिए कई प्रकार के कार्य करता है।

6. **नगरपालिका प्रशासन (Municipal Administration)** – राज्य म्युनिसिपल एक्ट के अधीन कमिश्नर को कई प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। इस क्षेत्र में वह निम्न प्रकार के कार्य करता है–

1. द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की नगरपालिकाओं के अध्यक्ष का निर्वाचन तथा सचिवों की नियुक्तियों का स्वीकृत करता है।
2. वह राज्य सरकार के आधार पर नगरपालिका द्वारा नगर की सीमाओं से बाहर व्यय करने के लिए धनराशि स्वीकृत करता है।
3. नगर प्रशासन के सम्बन्ध में ज़िलाधीश द्वारा दिए गए निर्णयों की अपील सुनता है।
4. यदि दो भिन्न ज़िलों में स्थापित दो नगरपालिकाओं में परस्पर झगड़ा हो जाए तो उसका निर्णय कमिश्नर द्वारा

किया जाता है।

5. नगरपालिका में बहुत सी नियुक्तियाँ करने के लिए कमिश्नर की स्वीकृति लेना आवश्यक है।

6. प्रथम श्रेणी की नगरपालिकाओं के बजट को वह स्वीकृत करता है।

कई राज्यों में कमिश्नर की नगरपालिका प्रशासन सम्बन्धी शक्तियों को समाप्त किया गया है।

7. **निरीक्षण (Inspection)** – कमिश्नर प्रशासकीय कुशलता बनाए रखने के लिए उपमण्डलों, तहसीलों, ज़िला कार्यालयों, जेलों, खजानों तथा पंचायती राज संस्थाओं का निरीक्षण करता है। कमिश्नर द्वारा निरीक्षण किए जाने के कारण सभी संस्थाएँ कुशलता से कार्य करती है और प्रशासन में दक्षता बढ़ती है।

8. **विविध कार्य (Miscellaneous Functions)** – उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त कमिश्नर को और भी कई कार्य करने पड़ते हैं जिनमें से मुख्य कार्य निम्न प्रकार हैं–

(i) वह ज़िलाधीशों उपमण्डल अधिकारियों (S.D.O) तथा तहसीलदारों आदि का वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन (Confidential Report) लिखता है और इन प्रतिवेदनों में अधिकारियों की कुशलता, चलन तथा चरित्र के बारे में अपने विचार प्रकट करता है।

(ii) बाढ़, अकाल तथा अन्य प्रकार के संकटकाल के समय वह ज़िलाधीशों की सहायता करता है और उनका नेतृत्व करता है।

(iii) बहुत सी समितियों का अध्यक्ष होता है। जैसे –गृह विभाजन समिति (House Allotment Committee), प्रादेशिक परिवहन सत्ता (Regional Transport Authority) आदि।

यदि कमिश्नर के उपरोक्त कार्यों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि वह ज़िला प्रशासन में समन्वय लाने और प्रशासन को कुशल बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। विभिन्न ज़िलों के प्रशासन में तालमेल करने का मुख्य साधन है तथा जिला प्रशासन और राज्य सरकार में कड़ी के रूप में काम करता है। परन्तु ऐसा होते हुए भी कई बार इस पद को समाप्त करने के बारे में विचार प्रकट किए जाते हैं। कुछ लोग इसे निरर्थक समझते हैं जबकि दूसरे कमिश्नर के निरीक्षण, नेतृत्व तथा समन्वय करने के कार्यों को विशेष महत्त्व देते हैं। दोनों प्रकार के विचार समय–समय पर प्रकट किए जाते रहे हैं। मध्य प्रदेश में इस पद को 1948 में समाप्त कर दिया गया था और 1956 में फिर से इस पद की स्थापना की गई। तमिलनाडु (Tamil Nadu) में इस पद की आवश्यकता को कभी भी अनुभव नहीं किया गया। बम्बई राज्य में इस पद को भी श्री मोरारजी देसाई ने सन् 1950 में समाप्त कर दिया परन्तु सन् 1958 में फिर से इसकी व्यवस्था की गई। बम्बई राज्य के विभाजन के पश्चात् गुजरात राज्य में सन् 1964 में इस पद को समाप्त कर दिया। सन् 1971 में हरियाणा राज्य में इस पद को समाप्त कर दिया गया। पंजाब सरकार पदाधिकारी एवं प्रशासकीय सुधार विभाग (Department of Personnel and Administrative Reforms) ने भी इसे समाप्त करने का सुझाव दिया। इस पद को समाप्त करने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं–

(i) सरकार के कार्य में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण यह पद प्रभावशाली नहीं रहा।

(ii) क्योंकि इस पद पर एक ज्येष्ठ (Senior) पदाधिकारी को नियुक्त करना पड़ता है इसलिए यह बहुत खर्चीला है।

(iii) यह प्रशासकीय कुशलता के मार्ग में बाधा है और इससे कार्य करने की प्रक्रिया और कठिन हो जाती है।

(iv) वास्तव में कमिश्नर कोई ठोस कार्य नहीं करता। वह राज्य सरकार तथा ज़िला प्रशासन के मध्य में केवल एक मध्यवर्ती के रूप में कार्य करता है। इससे कार्य करने में देरी होती है और काम की प्रक्रिया जटिल हो जाती है।

(v) कमिश्नर प्रायः निरीक्षण का कार्य ही करता है यह कार्य विभागीय अधिकारी कुशलता से कर सकते हैं।

(vi) यह राज्य सरकार और ज़िला प्रशासन तथा जनता के बीच परस्पर सम्बन्ध उत्पन्न होने में बाधा उत्पन्न करता है।

इन कारणों से प्रायः इस पद के विपक्ष में विचार प्रकट किए जाते हैं। परन्तु इन विचारों के होते हुए भी इस पद को बनाए रखने

के पक्ष में भी निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं–

(i) वह राज्य सरकार, जिला प्रशासन तथा जनता के बीच कड़ी का काम करता है।

(ii) वह अपने लम्बे अनुभव के आधार पर ज़िलाधीश तथा अन्य जिला स्तर के पदाधिकारियों का मार्गदर्शन करता है।

(iii) कमिश्नर ज़िला प्रशासन में समन्वय करने का मुख्य साधन है। वह अपने अधीन भिन्न–भिन्न ज़िलों में परस्पर उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का समाधान करता है और विभिन्न प्रशासकीय विभागों के कार्यों का समन्वय करता है।

(vi) उसकी उपस्थिति से प्रशासन में कुशलता उत्पन्न होती है। वह राज्य सरकार के सहायक के रूप में कार्य करता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार के दायित्व (Burden) को कम किया जाता है। सभी कार्य शीघ्र होते हैं। विकासशील कार्यक्रमों को कुशलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है।

(v) राजस्व विभाजन में वह एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह ज़िलाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनता है। ज़िला प्रशासन का निरीक्षण करता है और अपने अधीन ज़िलों के कार्यों में समन्वय करता है। यदि इस पद को समाप्त कर दिया जाए तो ज़िलाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने तथा राजस्व सम्बन्धित अन्य कार्य करने के लिए एक नवीन संस्था की स्थापना करनी पड़ेगी। यदि किसी और संस्था की स्थापना ही करनी है तो क्यों न इसी पद को सुरक्षित रखा जाए। इसी कारण कर्नाटक तथा कुछ अन्य राज्यों ने पहले इस पद को समाप्त कर दिया परन्तु बाद में दोबारा इसकी स्थापना की।

इस प्रकार दोनों प्रकार के तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कमिश्नर का प्रशासन में विशेष महत्त्व है। राजस्थान में चाहे इस पद को समाप्त कर दिया गया है, परन्तु वहाँ पर भी इसका विभागीय समन्वय के सम्बन्ध में महत्त्व को अभी भी आवश्यक समझा जाता है और इसके अभाव को अनुभव किया जा रहा है। इस पद को महत्त्व को अनुभव करते हुए राजस्थान प्रशासकीय सुधार समिति, 1963 (The Rajasthan Administrative Reforms Committee, 1963) ने कहा है "सरकार के भिन्न–भिन्न विभाग, विशेषकर वे विभाग जो विकासशील कार्यों में लगे हुए हैं, चाहे उनके कार्यों की प्रवृत्ति भिन्न–भिन्न है, के कार्यों में सुमेल (Interlinked) हैं तथा बहुत सी ऐसी सामान्य समस्याएं हैं जिनकी ओर तुरन्त ध्यान देने और उनका समाधान करने की आवश्यकता है..... मण्डलीय स्तर (Regional Level) पर यह तालमेल का काम कमिश्नरों द्वारा किया जाता था और उनके पदों की समाप्ति के कारण इस स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण शून्यता (Vacuum) उत्पन्न हो गई है, जिसे अभी तक प्रभावशाली ढंग से भरा नहीं गया.....यह केवल एक अधिकारी (Officer) ही मण्डलीय समस्याओं तथा सरकार के विभिन्न विभागों की मंडल तथा ज़िला स्तर पर प्रतिवेदन के प्रशासन को समझ सकता है तथा उनकी कार्यप्रणाली में प्रभावशाली ढंग से तालमेल कर सकता है और अन्तर विभागीय समस्याओं का हल (Solution) ढूँढ सकता है।" प्रशासकीय सुधार आयोग (Administration Reforms Commission) ने भी कमिश्नर के पद को बनाए रखने के पक्ष में सुझाव दिया। ज़िला प्रशासन सम्बन्धी अध्ययन समिति (Study Team of District Administration) के अनुसार कम से कम बड़े राज्यों के लिए कमिश्नर का पद आवश्यक प्रतीत होता है। उसे राज्य के संगठन में विशेष स्थान प्रदान करना चाहिए और उसे पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान करके प्रभावशाली बनाना चाहिए।

अध्याय-12

राज्य मुख्यालय का जिला प्रशासन पर नियन्त्रण (State Headquarter's Control Over District Administration)

जिला भारतीय प्रशासन व्यवस्था की एक प्रमुख इकाई है और केन्द्रीय व राज्य सरकार दोनों ही प्रान्तीय स्तर पर अपने कर्मचारी जिला प्रशासन में नियुक्त करके प्रशासन को चलाते हैं। जिला प्रशासन की स्थापना सरकार के उत्तरदायित्वों को कम करने के लिए की गई है ताकि जिला स्तर पर नियुक्त अधिकारी जिले के लोगों की समस्याओं का निवारण कर सकें। सरकार अपने सभी आदेशों को जिला अधिकारियों द्वारा लागू करवाती हैं और उन्हीं के द्वारा अपनी विभिन्न विकास योजनाएं कार्यान्वित करवाती है। राज्य के सभी विभागों के कर्मचारी जिला स्तर पर काम करते हैं इसलिए राज्य सरकार का जिला प्रशासन के साथ सीधा सम्बन्ध बना रहता है। स्वतन्त्रता से पूर्व जिला प्रशासन का मुख्य कार्य केवल राजस्व एकत्र करना और अपने जिले में शान्ति व व्यवस्था बनाए रखना था। इसलिए तत्कालीन ब्रिटिश सरकार का उन जिला अधिकारियों पर ढीला नियन्त्रण था। स्वतन्त्रता के बाद जिला अधिकारियों के कार्यों व अधिकारों में वृद्धि हुई जिसके कारण उन पर राज्य के मुख्यालय का नियन्त्रण रखना जरूरी हो गया है। भारत में राज्यों के मुख्यालय जिला प्रशासन पर कई तरह से अपना नियन्त्रण रखते हैं राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन पर उन्हीं तरीकों में नियन्त्रण करता है जिन तरीकों से मण्डल आयुक्त के क्षेत्राधिकार में आनेवाले जिलों पर नियन्त्रण रखता है। राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन पर निम्नलिखित तरीकों से अपना नियन्त्रण रखता है–

(1) वैधानिक नियन्त्रण (2) प्रशासनिक नियन्त्रण

(3) वित्तीय नियन्त्रण (4) न्यायिक नियन्त्रण

(1) ***वैधानिक नियन्त्रण (Legislative Control)*** – राज्य मुख्यालय मुख्य रूप से जिला प्रशासन पर वैधानिक नियन्त्रण रखता है। संविधान की धारा 246 के अनुसार राज्य विधानसभाओं को यह शक्ति दी गई है कि वह जिला प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन से किसी भी तरह की सूचना प्राप्त कर सकता है। जिला प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रीय विभागों का नियमन, विनियमन, निर्देशन, मार्गदर्शन आदि का कार्य मुख्यालय ही करता है। जिला अधिकारी अपने सामने आनेवाली कठिनाइयों का समाधान करने व मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए राज्य मुख्यालय की मदद प्राप्त करते हैं। राज्य मुख्यालय मण्डल आयुक्त के माध्यम से जिला प्रशासन को आदेश देता है और मण्डल आयुक्त उन आदेशों को लागू करवाता है।

(2) ***प्रशासनिक नियन्त्रण (Administrative Control)*** – राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन के दिन–प्रतिदिन के कार्यों पर अपना प्रशासनिक नियन्त्रण रखता है। राज्य मुख्यालय निम्नलिखित तरीकों से जिला प्रशासन पर अपना नियन्त्रण रखता है–

(i) जिलाधीश की नियुक्ति व स्थानान्तरण राज्यपाल द्वारा – जिलाधीश की नियुक्ति राज्यपाल राज्य मंत्रिमण्डल की सलाह से करता है। राज्यपाल ही जिले के प्रशासनिक अधिकारियों को राज्य मुख्यालय की सलाह से स्थानान्तरित कर सकता हैं। जिले का प्रशासनिक मुखिया होने के बावजूद जिलाधीश राज्य सरकार का प्रतिनिधि होता है।

(ii) जिलों को निर्देश देना – राज्य मुख्यालय राज्य की उच्च सत्ता होने के कारण जिलों के प्रशासनिक अधिकारियों को किसी भी तरह का निर्देश दे सकता है। जिलों प्रशासनिक अधिकारियों को इन आदेशों का पालन करना पड़ता है।

(iii) जिले के बड़े अधिकारियों की नियुक्ति – राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन से सम्बन्धित सभी बड़े अधि

ाकारियों जिलाधीश, जिला रजिस्ट्रार, जिला दण्डाधिकारी, उप–मण्डल अधिकारी आदि की नियुक्तियाँ, स्थानान्तरण, पदोन्नति से सम्बन्धित सभी कार्य करता है।

(iv) जिलों के आपसी विवाद सुलझाना – राज्य मुख्यालय दो या दो से अधिक जिलों के मध्य उत्पन्न विवाद को निपटारा करता है। इन जिलों के झगड़ों को निपटाने के लिए राज्य मुख्यालय मण्डल आयुक्त को या किसी अन्य जाँच समिति को इस कार्य पर लगा सकता है।

(v) जाँच पड़ताल की शक्ति – राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी विभाग के कार्यों की जाँच–पड़ताल कर सकता है या उसके सम्बन्ध में निर्देश जारी कर सकता है।

(3) ***वित्तीय नियन्त्रण (Financial Control)*** – राज्य मुख्यालय अपने वित्तीय संसाधनों के द्वारा भी जिला प्रशासन पर अपना नियन्त्रण रखता है। जिला प्रशासन पर नियन्त्रण का यह सबसे अच्छा तरीका है। राज्य मुख्यालय निम्नलिखित वित्तीय साधनों के द्वारा जिला प्रशासन पर अपना नियन्त्रण रखता है–

(i) जिले की निधि व व्यय पर नियन्त्राण – राज्य मुख्यालय जिले को कुछ निधि व जिला प्रशासन द्वारा किए गए व्यय पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। जिला प्रशासन को अपने कोष म से कोई भी वैध खर्च करना होता है तो इसकी पूर्व अनुमति राज्य मुख्यालय से लेना अनिवार्य है। जिला प्रशासन मण्डल आयुक्त की अनुमति से ही जिला कोष से धन व्यय कर सकता है।

(ii) कर लगाने सम्बन्धी नियम – जिला प्रशासन के द्वारा लगाए जानेवाले करों का निर्धारण राज्य मुख्यालय द्वारा ही किया जाता है। जिला प्रशासन कोई नया कर लगाते समय राज्य मुख्यालय की पूर्व अनुमति अवश्य लेता है।

(iii) जिला प्रशासन के बजट पर नियन्त्रण – राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन द्वारा तैयार किए जानेवाल वार्षिक बजट पर नियन्त्रण रखता है। राज्य मुख्यालय मण्डल आयुक्त के माध्यम से जिला प्रशासन के वित्त पर कड़ा नियन्त्रण रखता है। मण्डल आयुक्त जिला प्रशासन के बजट में भी कुछ परिवर्तन करवा सकता है।

(iv) अनुदान – जिला प्रशासन पर वित्तीय नियन्त्रण का एक अन्य तरीका राज्य मुख्यालय द्वारा जिला प्रशासन को अनुदान के रूप में दी जानेवाली अनुदान राशि है। राज्य सरकार का मुख्यालय मण्डल आयुक्त के माध्यम से प्रत्येक जिले को अनुदान राशि देता है। अतः राज्य मुख्यालय द्वारा जिला प्रशासन को दी जानेवाली अनुदान राशि भी जिला प्रशासन पर नियन्त्रण रखने का माध्यम है।

(v) लेखा परीक्षण – जिला प्रशासन के वित्त पर नियन्त्रण रखने के लिए राज्य मुख्यालय लेखा परीक्षकों की नियुक्ति कर सकता है। लेखा परीक्षक जिला प्रशासन द्वारा खर्च की गई धन राशि व जिला प्रशासन के हिसाब–किताब की पूरी जाँच–पड़ताल करता है।

(4) ***न्यायिक नियन्त्रण (Judicial Control)*** – राज्य मुख्यालय मुख्यतः वैधानिक, प्रशासनिक व वित्त पर ही नियन्त्रण रखता है फिर भी राज्य मुख्यालय के पास जिला प्रशासन से सम्बन्धित कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी हैं जिनके माध्यम से वह जिला प्रशासन पर अपना नियन्त्रण रखता है। दो या दो से अधिक जिलों के मध्य उत्पन्न होनेवाले विवादों का निपटारा राज्य मुख्यालय ही करता है। जिला स्तर पर प्रशासन द्वारा की गई किसी कर्मचारी या अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही की अपील राज्य मुख्यालय में की जा सकती है। राज्य मुख्यालय द्वारा दिया गया निर्णय मान्य होगा।

(5) ***निरीक्षण द्वारा नियन्त्रण (Control by Inspection)*** – राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन पर निरीक्षण की शक्ति के द्वारा भी अपना नियन्त्रण रखता है। राज्य मुख्यालय जिलों में चल रही उन सभी विकास योजनाओं जिस पर सरकारी धन खर्च हो रहा है, का निरीक्षण कर सकता है। इस तरह के निरीक्षण के द्वारा मुख्यालय को इस बात की जानकारी प्राप्त होती रहती है कि जिला प्रशासन विकास योजनाओं के लिए दिए गए धन का अपव्यय तो नहीं कर रहा है। इस तरह के निरीक्षण के द्वारा क्षेत्र के विकास कार्यों में हुई अनियमितताओं व कमियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है। निरीक्षण करनेवाले अधिकारी वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी होते हैं। जिला प्रशासन के कनिष्ठ अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों से निरीक्षण के द्वारा कई नई बातें सीखते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) – उपर्युक्त वर्णित तरीकों द्वारा राज्य मुख्यालय जिला प्रशासन पर कई तरह के नियन्त्रण करता है। जिला प्रशासन अपने लगभग प्रत्येक कार्य के लिए राज्य मुख्यालय पर निर्भर करते हैं और उनके निर्देशानुसार कार्य करते हैं। अंग्रेजी शासन काल में जिला प्रशासन के कार्य सीमित थे। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उनके कार्य में विस्तार हुआ है जिला प्रशासन के कार्यों में वृद्धि होने के कारण उनकी शक्तियों में भी वृद्धि हुई है। अतः जिला प्रशासन पर नियन्त्रण रखना अनिवार्य है और वह नियन्त्रण मुख्यालय द्वारा स्थापित किया गया है। जिला प्रशासन का मुखिया जिलाधीश अपने सभी कार्यों के लिए मुख्यालय के सचिवों व राज्य सरकार के मन्त्रियों के प्रति जवाबदेह है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् चाहे इसके कार्यों में वृद्धि हुई है। परन्तु इसके मौलिक लक्ष्य में कोई भेद नहीं है। राज्य मुख्यालय का प्रशासनिक ढ़ाँचा जिला–प्रशासन पर ही टिका हुआ है। लोगों की क्षेत्रीय समस्याओं, आवश्यकताओं आदि को पूरा करने में जिला प्रशासन मुख्य भूमिका निभाता है। इसलिए जिला प्रशासन पर राज्य का नियन्त्रण होना अनिवार्य है।

अध्याय-13

ग्रामीण स्थानीय स्वशासनः जिला परिषद्, पंचायत समिति, पंचायत

(Rural Local Bodies: Zila Parishad, Panchayat Samiti, Gram Panchayat)

पंचायती राज की घोषणा स्वतंत्र भारत में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन में से एक है। इसे क्रांतिकारी कदम कहा जा सकता है। पंचायती राज स्थानीय स्वशासन की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें लोग विकास की जिम्मेदारी स्वयं लेते हैं। यह लोगों की पहल और साझेदारी द्वारा ग्राम विकास की संस्थागत व्यवस्था की प्रणाली भी है। विकास कार्यक्रमों के उपयोग का उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास करना तथा सामुदायिक और कल्याण सेवाओं की व्यवस्था करना है। ये कार्य इन स्थानीय स्वशासी संस्थाओं को सौंपे गए हैं। पंचायती राज में जिला, खंड और ग्राम स्तरों पर लोकतांत्रिक संस्थाओं की तीन स्तरीय संरचना अर्थात् क्रमशः जिला परिषद्, पंचायत समिति और ग्राम पंचायत शामिल की गई है। इन संस्थाओं को लोकतंत्र का प्रशिक्षण क्षेत्र और राजनीतिक शिक्षा की संस्था भी माना गया है। ग्राम विकास योजनाएँ और कार्यक्रम इस स्तर पर कार्यान्वित किए जाते हैं ताकि विकास के लाभ सीधे ही समाज को मिल सकें। इन संस्थाओं की स्थापना 1959 में विकेंद्रीकरण और ग्राम स्वराज दर्शन के आधार पर की गई थी। इस इकाई में हम बलवन्त राय मेहता समिति और अशोक मेहता समिति की सिफारिशों, पंचायती राज संस्थाओं की संरचना, नौकरशाही की भूमिका, वित्तीय संसाधन और उनके कार्यकरण में हाल ही में हुए विकास का अध्ययन करेंगे।

पंचायती राज की स्थापना योजना आयोग (Planning Commission) द्वारा नियुक्त की गई बलवन्त राय मेहता समिति (Balwant Rai Mehta Committee) के सुझाव के अनुसार की गई है। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 1957 में पेश की, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र का लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर पुनर्गठन करके गाँव, खण्ड तथा जिले के स्तर पर त्रिस्तरीय प्रजातन्त्रीय संस्थाओं क निर्माण करने का सुझाव दिया गया। समिति के सुझाव को राष्ट्रीय विकास समिति (National Development Council) ने 1958 मे स्वीकार किया तथा इसके अनुसार राज्य सरकारों को अपनी स्थानीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए पंचायती राज संस्थाओं के निर्माण करने का आदेश दिया। राजस्थान पहला राज्य था जिसमें 2 अक्टूबर, सन् 1959 को पंचायती राज की स्थापना की गई। इसके पश्चात् आंध्र प्रदेश (Andhra Pradesh), असम (Assam), मद्रास (Madras), महाराष्ट्र (Maharashtra), मैसूर (Mysore), उडीसा (Orissa), पंजाब (Punjab), उत्तर प्रदेश (U.P.), बिहार (Bihar), गुजरात (Gujarat) तथा मध्यप्रदेश (M.P.) आदि सभी राज्यों तथा केन्द्रीय क्षेत्रों ने इसे अपना लिया। तत्पश्चात् पंचायती राज को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कई प्रयास किए गए परन्तु कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में अप्रैल, 1993 में 73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1992 पारित किया गया। जिसके अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को न केवल संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई बल्कि इनके संगठन, कार्य क्षेत्र तथा वित्तीय क्षेत्र में भी सुधार एवं विस्तार किया गया। इस संशोधन की धाराओं के अन्तर्गत सभी राज्यों में अपनी–अपनी परिस्थितियों के अनुकूल पंचायती राज अधिनियम पारित करने का निर्देश दिया गया। परिणामस्वरूप लगभग सभी राज्य सरकारों ने नवीन पंचायती राज्य अधिनियम पारित किए जैसे पंजाब पंचायती राज अधिनियम – 1994, हिमाचल प्रदेश पंचायती राज अधिनियम–1994, हरियाणा पंचायती राज अधिनियम–1994, आदि। इस समय जम्मू–कश्मीर, लक्ष्यद्वीप, मिजोरम तथा अन्य कुछ क्षेत्रों को छोड कर लगभग सभी राज्यों में इसकी व्यवस्था की गई है। इस समय देश में लगभग 2.20 लाख ग्राम पंचायतें, 5.5 हजार पंचायत समितियाँ तथा 371 जिला परिषदें स्थापित हैं।

यद्यपि विभिन्न राज्यों में अपनी स्थानीय परिथितियों के अनुसार पंचायती राज के संगठन में कुछ परिवर्तन किए गए हैं तथापि उन सबका मूल आधार समान है। इसके अनुसार प्रायः त्रिस्तरीय प्रणाली (Three Tier System) को अपनाया गया तथा निम्न तीन प्रकार की संस्थाओं की स्थापना की गई –

(i) ग्राम स्तर पर पंचायत।

(ii) खंड (Block) स्तर पर समिति।

(iii) जिला स्तर पर जिला परिषद्।

ग्राम सभा
(Gram Sabha)

ग्राम सभा पंचायती राज की प्राथमिक इकाई है, जिसके आधार पर ग्राम पंचायत कार्यपालिका के रूप में कार्य करती है। बलवन्त राय समिति ने पंचायती राज का सुझाव देते हुए केवल त्रिस्तरीय व्यवस्था की कल्पना की थी, जिसमें सबसे नीचे गाँव स्तर पर पंचायत थी। इस समिति ने यह नहीं सोचा था कि गाँव के स्तर पर प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की स्थापना करने के लिए गाँव के सभी निवासियों की एक संस्था भी होनी चाहिए, जिसके प्रति पंचायत को उत्तरदायी बनाया जा सके। इस आवश्यकता को अनुभव करते हुए जब पंचायती राज प्रणाली को लागू किया गया, तो विभिन्न राज्यों में ग्राम सभा को पंचायती राज की मौलिक इकाई (Basic Unit) के रूप में स्वीकार किया गया। ग्राम सभा सही अर्थों में जनमूलक संस्था है, जिसमें जनता के प्रतिनिधि ही नहीं, बल्कि जनता स्वयं सम्मिलित होती है। यह भारत में केवल एकमात्र राजनीतिक संस्था है, जिसमें प्रत्यक्ष लोकतन्त्र विद्यमान है। ग्राम सभा अपने सदस्यों में से पंचायत के सदस्यों (पंचों एवं सरपंचों) का चुनाव करती है। इसलिए पंचायत इसके प्रति उत्तरदायी है। पहले केरल तथा तमिलनाडु के राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों में ग्राम सभा को वैधानिक संस्था (Statutory Body) का रूप दिया गया था। इन राज्यों में इसे Corporate का रूप दिया गया था। अब सभी राज्यों में इसे वैधानिक संस्था का रूप दिया गया है।

रचना (Composition) – ग्राम सभा की रचना सभी राज्यों में पूर्णतया एक जैसी नहीं है। बिहार, उड़ीसा तथा राजस्थान में गाँव अथवा समीपस्थ गाँवों के समूह के वयस्क निवासी इसके सदस्य होते हैं। दूसरे राज्यों में ग्राम क्षेत्र के सभी मतदाता अर्थात् वे लोग जिनके नाम राज्य की विधानसभा के चुनाव की मतदाता सूची में लिखे होते हैं, ग्राम सभा के सदस्य होते हैं। इस प्रकार गाँव का प्रत्येक स्त्री और पुरूष जिसकी आयु 18 वर्ष या इससे अधिक हो ग्राम सभा का सदस्य होता है। ग्राम सभा का आकार सभी राज्यों में भिन्न है। साधारणतः उसमें 250 से 500 तक सदस्य होते हैं। जैसे पंजाब में जब पंचायती राज की स्थापना की गई थी तो किसी भी गाँव में जिनकी जनसंख्या 500 या इससे अधिक है वहाँ पर ग्राम सभा की व्यवस्था की जाती है। यदि किसी गाँव की जनसंख्या 500 से कम हो तो उसके समीप के छोटे–छोटे गाँवों को मिलाकर ग्रामसभा की स्थापना की जाती थी, परन्तु 27 जनवरी, 1971 को राज्य सरकार ने ग्राम पंचायत एक्ट, 1952 में संशोधन करके ग्राम सभा के निर्माण के लिए कम से कम जनसंख्या 200 निश्चित की है। जम्मू व कश्मीर, मैसूर (कर्नाटक) तथा राजस्थान के पंचायत अधिनियमों (Panchayat Acts) द्वारा ग्राम पंचायत के क्षेत्र में रहनेवाले सभी वयस्कों के अधिवेशनों की व्यवस्था की गई है।

अधिवेशन (Session) – ग्राम सभा के अधिवेशन के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न प्रणाली विद्यमान है। ग्राम सभा का अधिवेशन अधिकांश राज्यों में प्रति वर्ष दो बार होता है परन्तु तमिलनाडु में एक वर्ष में तीन बार तथा असम एवं बिहार में प्रतिवर्ष चार बार होता है। इसकी कार्यवाही संस्था (Quorum) ग्राम सभा के सदस्यों का पाँचवां भाग होती है। 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा ग्राम सभा को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है तथा इस एक्ट के प्रभावाधीन सभी राज्यों द्वारा पारित किए गए पंचायती राज अधिनियमों द्वारा ग्राम स्तर पर सभा की स्थापना करना अनिवार्य है तथा सभी राज्यों में इसे वैधानिक संस्था (Statutory Body) की स्थिति (Status) प्रदान की गई है। इसकी कार्यवाही संख्या (Quorum) ग्राम सभा के सदस्यों का पाँचवां भाग होती है।

ग्राम सभा की बैठक की अध्यक्षता सरपंच (प्रधान) और सरपंच की अनुपस्थिति में उपसरपंच (उप–प्रधान) द्वारा की जाती है। उन दोनों की अनुपस्थिति की दशा में ग्राम सभा की बैठक की अध्यक्षता, बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत द्वारा इस प्रयोजन के लिए निर्वाचित सदस्य द्वारा की जाती है।

केरल जैसे राज्य में जहाँ पर प्रत्येक ग्राम पंचायत की जनसंख्या 2000 है। ग्राम सभा की बैठक बुलाना कठिन है। इस समस्या का समाधान करने के लिए वहाँ पर क्षेत्रीय बैठक होती है। गाँव के क्षेत्रों में बाँटा गया है तथा प्रत्येक क्षेत्र की अलग बैठक होती है जिसमें ग्राम पंचायत का सरपंच अध्यक्षता करता है। बिहार, गोवा, त्रिपुरा, राजस्थान तथा मणिपुर में प्रत्येक ग्राम सभा के लिए एक चौकसी

समिति (Vigilance Committee) की व्यवस्था की गई है।

कार्य (Functions) – ग्राम सभा का प्रमुख कार्य पंचायत के सदस्यों का चुनाव कराना है। इसके अतिरिक्त वह पंचायत द्वारा किए गए कार्यों का पुनर्निरीक्षण करती है वह पंचायत के वार्षिक बजट तथा लेखा परीक्षण की रिपोर्ट पर विचार करती है तथा उसका अनुमोदन करती है। यह सभा क्षेत्र के विकास के लिए योजनाएँ बनाने के लिए सुझाव देती है। ग्राम सभा क्षेत्र के विकास के लिए पंचायत द्वारा किए गए कार्यों का मूल्यांकन करती है और पंचायत की गतिविधियों तथा कार्यक्रमों को कुशलतापूर्वक लागू करने के लिए सहयोग देती है। किसी विशेष योजना, कार्यविधि, आय तथा व्यय के बारे में सरपंच तथा पंचों से जानकारी प्राप्त कर सकती है।

उड़ीसा में ग्राम सभा को श्रम कर तथा दूसरे विकास सम्बन्धी विषयों के सम्बन्ध में सुझाव या संकेत देने की शक्ति प्रदान की गई है। उत्तर प्रदेश के खरीफ की फसल के पश्चात् ग्राम सभा की बैठक में वार्षिक बजट पर विचार किया जाता है और रबी की फसल के पश्चात् होनेवाले अधिवेशन में इस बात पर विचार किया जाता है कि व्यय ठीक प्रकार से किया जाता है या नहीं।

ग्राम सभा को पंचायती राज में विशेष स्थान प्राप्त है। इसे पंचायती राज का आधार कहा जा सकता है। इसका उत्तरदायित्व बड़ा विस्तृत है तथा यह ग्राम पंचायत पर सम्पूर्ण नियन्त्रण कर सकती है। परन्तु व्यवहार में इसे कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। इसके अधिवेशन समय पर नहीं बुलाए जाते और न ही विभिन्न प्रकार के विषयों पर इसमें विचार–विमर्श किया जाता है। यह केवल एक नाममात्र संस्था के रूप में कार्य करती है। श्री आर॰ आर॰ दिवाकर (R.R. Dewakar) की अध्यक्षता में केन्द्रीय सरकार ने सन् 1962 में एक कमेटी नियुक्त की और इसे पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राम सभा की स्थिति की जाँच करके ऐसे उपाय सुझाने के लिए कहा गया जिससे यह पंचायती राज व्यवस्था का मजबूत आधार बनाई जा सके। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि "यह आवश्यक है कि ग्रामसभा को महत्त्व दिया जाए और धीरे–धीरे उसे शक्ति प्रदान की जाए।" ग्राम सभा को पंचायती राज का वास्तविक आधार बनाने तथा इसे प्रभावशाली संस्था बनाने के लिए सुझाव देते हुए इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "हमारा विचार है कि ग्राम सभा को जो ग्राम समुदाय में प्रभावकारी स्थिति प्रदान करने के उपाय ये हैं कि पंचायत की संस्था का जो ग्राम सभा की कार्यपालिका है और ऐसा प्रशासनिक अंग है, जिसके द्वारा स्थानीय शासन उच्च स्तर के कार्य करता है, शक्तिशाली बनाया जाए।" दिवाकर समिति के सुझावों के बावजूद भी ग्राम सभा की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ तथा इसे एक औपचारिक सस्था समझा जाता है। इसके अधिवेशनों में बहुत कम लोग उपस्थित होते हैं। परन्तु अब आशा है कि 63वें संशोधन द्वारा इसे संवैधानिक मान्यता प्रदान किए जाने के कारण इस की स्थिति में विशेष अन्तर होगा और यह एक प्रभावशाली संस्था के रूप में कार्य करेगी।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित स्थानीय शासन प्रणाली को सफल बनाने में ग्राम सभा को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। इसके लिए अति आवश्यक है कि इसे शक्तिशाली तथा सक्रिय बनाया जाए। इससे पंचायत अपना कार्य और अच्छी तरह से कर सकेगी। फलस्वरूप ग्रामीण भारत का नव–निर्माण अधिक तीव्र गति से होगा।

पंचायत
(Panchayat)

पंचायत भारत में स्थानीय स्वशासन की प्राचीन संस्था है जो देश में बहुत–सी सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्तियों एव परिवर्तन के होते हुए भी स्थिर रही है। श्री चार्ल्स मेटकॉफ (Charles Matcalf) के शब्दों में, "ग्रामीण समुदाय छोटे गणतन्त्र होते हैं जो अपनी सीमाओं में रहते हुए, अपनी इच्छानुसार जो चाहे कर सकते हैं तथा बाह्य हस्तक्षेप से स्वतन्त्र होते हैं। वे निरन्तर स्थिर चले आ रहे हैं। वंश के पश्चात् वंश की समाप्ति हुई, क्रान्ति के पश्चात् क्रान्तियाँ आईं परन्तु ग्रामीण समुदायों ने अपने पृथक् राज्य के रूप, समाज तथा संस्कृति को बनाए रखने में देश को साहित्यिक सहायता दी है।"

नामावली (Nomenclature) – पंचायत को भिन्न–भिन्न राज्यों में अलग–अलग नामों से पुकारा जाता है। कुछ राज्यों में ग्राम पचायत, कुछ में विलेज पंचायत आदि का नाम दिय जाता है। प्रत्येक राज्य के नवीन पंचायती राज अधिनियम द्वारा ग्राम पंचायत की स्थापना करने के लिए गाँव की जनसंख्या भिन्न–भिन्न निश्चित की गई है। कर्नाटक में एक गाँव या गाँव समूह जिसकी जनसंख्या 5,000–7,000 तक हो गाम पंचायत की स्थापना की जा सकती है। बिहार में ग्राम पंचायत की स्थापना के लिए गाँव की जनसंख्या 7,000 निर्धारित की गई है। असम में यह जनसंख्या 6,000–10,000 होनी चाहिए। अरूणाचल में जिस गाँव की जनसंख्या 3,000 हो वहाँ पंचायत की स्थापना की जा सकती है। हरियाणा में ग्राम पंचायत की स्थापना के लिए ग्राम सभा की जनसंख्या 500 होना जरूरी है। पंजाब में पहले 500 जनसंख्या होना आवश्यक था बाद में इसे कम करके 200 कर दिया। परन्तु पंजाब पंचायती राज

एक्ट, 1994 के अनुसार किसी प्रकार की जनसंख्या निर्धारित नहीं की गई। इस तरह आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, त्रिपुरा, मणिपुर, गोवा, मध्य प्रदेश, सिक्किम तथा हिमाचल के राज्यों में जनसंख्या की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई। इस समय भारत में लगभग 2.20 लाख ग्राम पंचायतें हैं।

पंचायत के सदस्यों की संख्या एवं चुनाव (Number and Election of Members of Panchayat)– सभी राज्यों में पंचायत के सदस्यों को प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुनने की व्यवस्था की गई है क्योंकि सदस्यों की संख्या जनसंख्या पर निर्भर है। इसलिए प्रत्येक राज्य में पंचायत के सदस्यों की संख्या राज्य अधिनियम द्वारा निर्धारित ग्राम पंचायत की जनसंख्या पर निर्भर करती है। भिन्न–भिन्न राज्यों में ग्राम पंचायत के सदस्यों की संख्या भिन्न–भिन्न है।

आरक्षण (Reservation) – 73वें संवैधानिक संशोधन एक्ट, 1992 के प्रभावाधीन सभी राज्य पंचायती राज अधिनियमों द्वारा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षित स्थानों की संख्या ग्राम पंचायत के कुल स्थानों की संख्या का अनुपात वही होगा जो ग्राम सभा क्षेत्र में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या ग्राम सभा क्षेत्र की कुछ जनसंख्या से है। आरक्षण को वास्तविक बनाने के लिए कई राज्यों में यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि इन वर्गों के लोगों की जनसंख्या बहुत कम हो तो उनका कम से कम एक सदस्य ग्राम सभा का सदस्य हो। जैसे पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल में यह व्यवस्था की गई है कि "यदि अनुसूचित जाति की कम संख्या के कारण यथा पूर्वोक्त स्थानों का आरक्षण सम्भव न हो और सभा क्षेत्र में अनुसूचित जाति की जनसंख्या सभा क्षेत्र की कुल संख्या का कम से कम पाँच प्रतिशत हो तो ग्राम पंचायत में एक स्थान अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित किया जाए।"

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित कबीलों की भाँति एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। संशोधन एक्ट, 1992 के अनुसार ग्राम पंचायत में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के प्रत्येक वर्ग के लिए आरक्षित स्थानों और अनारक्षित स्थानों के एक तिहाई से अन्यून स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।

इस तरह इस नवीन एक्ट द्वारा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं को विशेष रूप से प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई है। इन के अतिरिक्त कुछ राज्यों के पिछड़े वर्ग के लोगों को आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

पंचायतों के सदस्यों की योग्यताएँ (Qualifications for the Members of the Panchayat) –

1. वह भारत का नागरिक हो तथा उसे विधानसभा का सदस्य चुने जाने की सभी योग्यताएँ प्राप्त हों।
2. वह उस गाँव क्षेत्र (पंचायत क्षेत्र) का निवासी हो।
3. उसकी आयु 21 वर्ष से कम न हो।
4. वह स्थानीय सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार का कर्मचारी न हो।
5. उसे किसी न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित न किया गया हो।
6. वह किसी अपराध में दण्ड न पा चुका हो या जिसके दण्ड को समाप्त हुए 5 साल की अवधि हो चुकी हो।

सरपंच अथवा अध्यक्ष (Sarpanch or Chairperson) – अध्यक्ष के चुनाव की विधि भी समान नहीं है। बिहार, गुजरात, गोआ, मध्य प्रदेश, असम, मणिपुर, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब में पंचायत के अध्यक्ष को प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुना जाता है। इस तरह हिमाचल में प्रधान तथा उप प्रधान को ग्राम सभा के मताधिकारियों द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुना जाता है। अन्य राज्यों, कर्नाटक, केरल, सिक्किम, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, उड़ीसा तथा अरूणाचल प्रदेश में अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को पंचायत के सदस्यों द्वारा अपने में से चुना जाता है। अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के पद के लिए भी अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए उन की राज्य में जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त एक तिहाई अध्यक्षों के स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। कुछ राज्यों में अध्यक्ष के पदों में पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

अवधि (Term) – सभी राज्यों में पंचायत का कार्यकाल पाँच वर्ष निर्धारित किया गया है। यदि कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व किसी पंचायत का विघटन हो तो विघटन के छः महीने के अन्दर निर्वाचन करवाना अनिवार्य है।

अधिवेशन (Session) एवं गणपूर्ति संख्या (Quorum) – ग्राम पंचायतों की बैठकों तथा गणपूर्ति के सम्बन्ध मे एकरूपता नहीं है। ये भिन्न–भिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न हैं। किसी राज्य में प्रति महीने में एक बैठक बुलाई जाती है तो किसी में दो बार। कुछ राज्यों में दो महीने में केवल एक बार पंचायत का अधिवेशन होता है।

ग्राम पंचायत के कार्य
(Functions of Gram Panchayat)

ग्राम पंचायत के बहुमुखी कार्य हैं जिनका विवरण निम्नलिखित हैं –

1. **सार्वजनिक कार्य (Public Functions)** – पंचायत के सार्वजनिक कार्य इस प्रकार हैं –
   - (i) अपने क्षेत्र की सड़कों की देखभाल करना, उनकी मरम्मत करना।
   - (ii) ग्राम की सफाई करना।
   - (iii) कुओं, नलों तथा तालाबों आदि की व्यवस्था तथा देखभाल करना।
   - (iv) गलियों तथा बाजारों में रोशनी का प्रबन्ध करना।
   - (v) श्मशानों तथा कब्रिस्तानों की निगरानी करना।
   - (vi) जन्म एवं मृत्यु का लेखा करना।
   - (vii) प्राथमिक शिक्षा के प्रयत्न करना।
   - (viii) पशुओं की मंडियाँ लगवाना तथा पशुओं की नस्ल में सुधार करना।
   - (ix) ग्राम सभा से सम्बन्धित किसी भी भवन की सुरक्षा करना।
   - (x) मेलों तथा उत्सवों के अतिरिक्त सामाजिक उत्सवों को मनाना।
   - (xi) नये मकानों का निर्माण तथा बनी हुई इमारतों में परिवर्तन अथवा विस्तार करने पर नियन्त्रण रखना।
   - (xii) कृषि, व्यापार तथा ग्राम उद्योग के विकास में सहायता देना।
   - (xiii) सार्वजनिक इमारतों की स्थापना तथा उनकी देखभाल एवं मरम्मत करवाना।
   - (xiv) मातृ तथा शिशु कल्याण केन्द्रों की स्थापना करना।
   - (xv) पशु चिकित्सालय की स्थापना करना।
   - (xvi) खाद एकत्र करने के लिए स्थान निश्चित करना।
   - (xvii) आग बुझाने में सहायता करना तथा आग लग जाने पर जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करने का प्रयत्न करना।
   - (xviii) पुस्तकालयों, वाचनालयों तथा खेल मैदानों की व्यवस्था करना।
   - (xix) सड़कों के किनारे वृक्ष लगवाना।
   - (xx) आवश्यकतानुसार पुलों की स्थापना करना।
   - (xxi) गरीबों को सहायता (Relief) देना।
2. **प्रशासकीय कार्य (Administrative Functions)** – प्रशासकीय क्षेत्र में ग्राम पंचायत का कर्त्तव्य है कि वह –
   - (i) अपने क्षेत्र में अपराधों की रोकथाम तथा अपराधियों की खोज में पुलिस की सहायता करे।
   - (ii) यदि ग्रामीण क्षेत्र में काम करनेवाले किसी सरकारी कर्मचारी, सिपाही, पटवारी, वन विभाग के व्यक्ति, चौकीदार

चपरासी आदि के विरुद्ध कोई शिकायत हो तो जिलाधीश अथवा किसी अन्य अधिकारी को सूचित करे। पंचायत की रिपोर्ट के अनुसार जिलाधीश या किसी अन्य अधिकारी द्वारा जो कार्यवाही की गई हो, उसकी सूचना लिखित रूप में ग्राम पंचायत को भेजे।

(iii) ग्रामों में शराब के ठेके और शराब बेचने का विरोध करे।

(iv) असम, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा उड़ीसा में ग्राम पंचायतों को चौकीदारों (Watch and Wards) का प्रबन्ध करने की शक्ति भी प्रदान की गई है।

3. **विकासवादी कार्य (Development Functions)** – क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र के विकास का उत्तरदायित्व पंचायतों पर है, इसलिए इसे कुछ विकासवादी कार्य भी दिए गए हैं। यह विकासवादी योजनाओं को लागू करती हैं तथा पंचवर्षीय योजनाओं को लागू करने में सहयोग देती है। यह कृषि तथा उद्योग के विकास के लिए प्रयत्न करती है।

4. **न्यायिक कार्य (Judicial Functions)** – पंचायतों को दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमों को सुनने का अधिकार दिया गया है। फौजदारी मुकद्दमों में गाली गलौच, 50 रु० तक चोरी, मारपीट तथा स्त्री तथा सरकारी कर्मचारी का अपमान, पशुओं को अत्यन्त निर्दयतापूर्वक पीटा जाना, इमारतों, तालाबों, जलाशयों तथा मार्गों को हानि पहुंचाना आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ राज्यों में कुछ पंचायतों को विशेष अधिकार प्राप्त हैं। वह आक्रमण, राज्य कर्मचारी का अपमान, दूसरों के माल पर कब्जा करने आदि के विषयों के सम्बन्ध में मुकद्दमा सुन सकती है। इन मुकद्दमों में साधारण अधिकारों वाली पंचायतों को 100 रुपए तथा विशेष अधिकारों वाली पंचायतों को 200 रु० तक जुर्माना करने का अधिकार प्राप्त है। कुछ राज्यों में विशेष अधिकारवाली पंचायतों को साधारण कैद देने की शक्ति भी दी गई है। पंचायतें किसी अपराधी को दंड भी दे सकती हैं तथा चेतावनी देकर या जमानत लेकर छोड़ भी सकती हैं। पंचायतों के निर्णयों के विरुद्ध जिला न्यायालय में अपील की जा सकती है।

दीवानी – साधारण पंचायतें 200 रु० की राशि तक तथा विशेष अधिकारों वाली पंचायतें 500 रु० की राशि तक मुकद्दमा सुन सकती हैं, परन्तु वह निम्नलिखित मुकद्दमें नहीं सुन सकती –

(i) सांझीदारी के मुकद्दमे।

(ii) वसीयत सम्बन्धी मुकद्दमे।

(iii) नाबालिग तथा पागल व्यक्ति के विरुद्ध मुकद्दमा।

(iv) राज्य एवं केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के विरुद्ध मुकद्दमा।

(v) दिवालियापन के विरुद्ध मुकद्दमा।

(vi) न्यायालय में विचाराधीन मुकद्दमें आदि।

पंचायत के निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। पंचायत के समक्ष किसी भी वकील को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

पंचायत की न्याय शक्तियों की प्रायः आलोचना की जाती है। आलोचकों का विचार है कि पंचायतों के सदस्य प्रायः अनपढ़ होते हैं तथा उन्हें कानून का ज्ञान नहीं होता और न ही उन्हें कानून के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा सकता है; इसलिए वे कोई भी निर्णय कानून के आधार पर नहीं कर सकते। दूसरे, पंचायतों में दलीय भावना उपस्थित होने के कारण पंचायत के सदस्य निष्पक्ष होकर निर्णय नहीं करते। वे सदैव कानून की अपेक्षा दलीय भावना के आधार पर निर्णय देते हैं।

यद्यपि पंचायतों की इन शक्तियों का दुरुपयोग होता है तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें ये न्यायिक शक्तियां ही न दी जाएँ। वास्तव में इन शक्तियों को दिए जाने का मुख्य उद्देश्य गाँव के स्तर पर पारस्परिक झगड़ों को समाप्त करना है। इसलिए निर्णय देने की अपेक्षा पंचायतों को सर्वदा समझौता करवाने का प्रयत्न करना चाहिए। डॉ० एम० पी० शर्मा (Dr. M.P. Sharma) के अनुसार, "पंचायतों का उचित न्यायिक कार्य निर्णय की अपेक्षा समझौता करवाना तथा मध्यस्थ के रूप में कार्य होना चाहिए।"

इन उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्य सरकार पंचायतों को कई और अतिरिक्त कार्य करने की शक्ति प्रदान कर सकती है तथा

इन कार्यों को करने के लिए विशेष वित्तीय सहायता या अनुदान दे सकती है। पंचायतें इन कार्यों को सरकार द्वारा निश्चित किए गए नियमों तथा प्रतिबन्धों के अनुसार करती हैं।

आय के साधन
(Sources of Income)

पंचायतों की आय के साधन निम्नलिखित हैं –

1. **कर (Taxes)** – पंचायत की आय का प्रथम साधन कर है। पंचायत राज्य सरकार द्वारा या पंचायती राज द्वारा स्वीकृत किए गए कर लगा सकती है। जैसे सम्पत्ति कर, पशु कर, व्यवसाय कर, टोकन कर, मार्ग कर, चुंगी कर आदि।

2. **फीस और जुर्माना (Fees and Fines)** – पंचायत की आय का दूसरा साधन इसके द्वारा किए गए जुर्माने तथा अन्य प्रकार के शुल्क (fees) हैं जैसे पंचायती विश्राम घर के प्रयोग के लिए फीस, गली तथा बाजारों में रोशनी करने का कर, पानी कर आदि। इन करों का प्रयोग केवल उन्हीं पंचायतों द्वारा किया जाता है जो ये सुविधाएँ प्रदान करती हैं।

3. **सरकारी अनुदान (Government Grants)** – पंचायत की आय का मुख्य साधन सरकारी अनुदान है। सरकार पचायतों की विकास–सम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अनुदान देती है। साधारणतया प्रत्यक राज्य के क्षेत्र से इकट्ठा होनेवाले भू-राजस्व का कुछ भाग पंचायतों को दिया जाता है। जैसे पंजाब मे 15%, उ॰ प्र॰ में 12½%, आदि। बिहार, महाराष्ट्र तथा गुजरात में पंचायतें ही सरकार के आधार पर भू–राजस्व इकट्ठा करती हैं।

4. **मिश्रित साधन (Other Sources)** – पंचायतों के आय के और भी साधन हैं जैसे पंचायत की सीमा में कूड़ा–कर्कट, गोबर, गन्दगी आदि को बेचने से आय, शामलाट से आय, मेलों आदि से आय, पंचायत की सम्पत्ति से आय आदि। आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा तथा पंजाब में पंचायतों को मछली पालने तथा बेचने से विशेष आय होती है।

5. **ऋण (Borrowings)** – उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त राज्य सरकार की स्वीकृति से पंचायत ऋण भी ले सकती है।

पंचायत कर्मचारी
(Personnel of Panchayat)

पंचायत के स्तर पर निम्नलिखित कर्मचारी कार्य करते हैं –

1. **पंचायत सचिव (Panchayat Secretary)** – पंचायत की सहायता के लिए एक पंचायत सचिव होता है। उसे एक से अधिक पंचायतों की सहायता के लिए भी कार्य करना पड़ता है। पंचायत सचित की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। उसमें मुख्य कार्य पंचायत सम्बन्धी सभी प्रकार का हिसाब–किताब रखना, बजट बनाने में सरपंच की सहायता करना, आय और व्यय का ब्यौरा रखना तथा पंचायत की ओर से सरकार के साथ पत्र–व्यवहार करना है। व्यावहारिक रूप में एक सचिव को कई पंचायतों का कार्य करना पड़ता है।

2. **ग्राम सेवक (Gram Sewak)** – विकासवादी कार्यों में पंचायत की सहायता के लिए राज्य सरकार ग्राम सेवक की नियुक्ति करती है। वह कई पंचायतों के लिए कार्य करता है। वह पंचायत की उद्योग, कृषि तथा विकासवादी कार्यों के लिए सहायता करता है और उसे परामर्श देता है।

3. **चौकीदार (Watchman)** – गाँव में लोगों की सम्पत्ति की देखभाल तथा रक्षा के लिए चौकीदार की नियुक्ति की जाती है। वह रात के समय पहरा देता है तथा गाँव में शान्ति की व्यवस्था बनाए रखने के लिए पंचायत तथा सरकारी कर्मचारियों की सहायता करता है।

पंचायत समिति एवं जिला परिषद
(Panchayat Samiti and Zila Parishad)

पंचायती राज एक तीन स्तरीय प्रणाली है, इसमें पंचायत समिति मध्यवर्ती स्तर है। इसकी स्थापना खण्ड (Block) तालुक (Taluk) या मंडल (Mandal) स्तर पर की गई है और यह ग्राम पंचायत तथा जिला परिषद् के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य सम्पन्न करती है। इसका नाम सर्वत्र एक नहीं है। आन्ध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, त्रिपुरा, पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश में इसे पंचायत समिति कहते हैं जबकि कर्नाटक तथा गुजरात में इसे तालुक पंचायत के नाम से जाना जाता है। मध्य–प्रदेश में जनपद, के दल में ब्लॉक पंचायत, असम में आंचलिक पंचायत तमिलनाडु में पंचायत यूनियन कौंसिल, उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय पंचायत तथा अरूणाचल प्रदेश में इसे आंचल समिति के नाम से पुकारा जाता है। बलवन्त राय मेहता समिति की रिपोर्ट के अनुसार पंचायत समिति ग्रामीण क्षेत्र में एक मात्र प्रतिनिधि होती है जो वहाँ होनेवाली सभी विकास गतिविधियों की जिम्मेदारी अपने ऊपर एक लोकतान्त्रिक संस्था के रूप में लेती है। यह स्थानीय सरकार की पंचायतीराज प्रणाली का माध्यम, मुख्य तथा अभिन्न परिवर्तनकारी इकाई होती है। साधारणतः यह ग्राम पंचायत तथा जिला परिषद् से भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली निकत्य होती है।

पंचायत समिति की रचनाः– हरियाणा पंचायती राज अधिनियम 1994 की धारा 55 के अनुसार पंचायत समिति की रचना में निम्नलिखित व्यक्ति शामिल होते हैं।

1. हरियाणा में पंचायत समिति के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 10 से 30 तक होती है। जिस पंचायत समिति के क्षेत्र की जनसंख्या 40 हजार तक होती है वहाँ 4 हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य चुना जाता है और उस क्षेत्र की पंचायत समिति के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 10 से कम नहीं हो सकती। जिस पंचायत समिति क्षेत्र की जनसंख्या 40 हजार से अधिक है वहाँ 5 हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य तथा निर्वाचित सदस्यों की संख्या 10 तथा 30 सदस्यों के बीच होती है।

2. आरक्षित स्थान – 73वें संविधान संशोधन के अनुसार अनुसूचित जाति तथा जनसूचित जन जातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपाल से आरक्षण देने की व्यवस्था की गई है। अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित किए स्थानों में से एक–तिहाई स्थान अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं।

   (i) निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या का एक–तिहाई स्थान महिलाओं (इनमें अनुसूचित जाति की महिलाएँ भी सम्मिलित हैं) के लिए आरक्षित किए गए हैं।

   (ii) प्रत्येक पंचायत समिति में एक सीट पिछड़े वर्गों (Backward Classes) के लिए आरक्षित की गई है।

3. **सहायक सदस्य (Associate Members)** – पंचायत समिति के क्षेत्र में से विधानसभा में चुने गए सदस्य पंचायत समिति के सहायक सदस्य होते हैं। इन्हें समिति की बैठकों में भाग लेने तथा अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है और 73वें संशोधन के अनुसार इन सदस्यों को मतदान का अधिकार भी प्राप्त है।

पदेन सदस्य (Ex-officio Members) – सब–डिविजनल मैजिस्ट्रेट या अधिकारी (S.D.M. or S.D.O.) तथा खण्ड एवं पंचायत अधिकारी (B.D.O.) इसके पदेन सदस्य होते हैं। इन सदस्यों को भी सहायक सदस्यों की भाँति बोलने आदि का अधिकार तो है, परन्तु मतदान का नहीं है।

सदस्यों की योग्यताएँ (Qualifications of Members) – पंचायत समिति का सदस्य चुने जाने या संयोजित (Co-opt.) किए जाने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ निश्चित हैं–

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. वह 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,
3. वह किसी सरकारी लाभदायक पद पर न हो,
4. वह पागल या दिवालिया न हो,
5. वह किसी न्यायालय द्वारा आयोग्य घोषित न किया गया हो।

अवधि (Term) – पंचायत समिति की अवधि पाँच साल है। सरकार अवधि पूरी होने से पहले भी पंचायत समिति को भंग कर सकती

है।

अध्यक्ष (Chairman) – पंचायत समिति के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को चुनते हैं। ज़िले की पंचायत समितियों के अध्यक्षों के पद अनुसूचित जातियों और महिलाओं के लिए अतिरिक्त उपायुक्त के द्वारा आरक्षित किए जाते हैं। महिलाओं के लिए आरक्षित पद लॉटरी द्वारा तय किए जाते हैं। इनकी अवधि भी पाँच साल होती है। परन्तु उसे कार्यकाल से पहले भी दो–तिहाई सदस्यों द्वारा भी हटाए जाने की व्यवस्था है।

कार्यकारी अधिकारी (Executive Officer) – खण्ड विकास तथा पंचायत अधिकारी (B.D.O.) पंचायत समिति का कार्यकारी अधिकारी होता है। पंचायत समिति का दैनिक शासन उसीके द्वारा चलाया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई कर्मचारी होते हैं जिनमें तकनीकी विषेषज्ञ भी शामिल होते हैं।

बैठकें (Meetings) – पंचायत समिति की बैठकें अध्यक्ष द्वारा बुलाई जाती हैं। पंचायत समिति की साधारण बैठकें एक वर्ष में कम–से–कम 6 बार बुलाई जाती हैं। पंचायत समिति के एक–तिहाई सदस्य यदि लिखकर दें तो पंचायत समिति की विशेष बैठक बुलाई जा सकती है। साधारण बैठक एक महीने में एक बार अवश्य बुलाई जाती है।

पंचायत समिति के कार्य तथा शक्तियाँ
(Functions and Powers of Panchayat Samiti)

पंचायत समिति पंचायती राज व्यवस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था है। पंचायत समिति निम्नलिखित कार्य करती है–

1. **प्रशासकीय कार्य (Administrative Functions)** -
   - (i) अपने क्षेत्र में आनेवाली ग्राम पंचायतों के प्रबन्धकीय कार्यों का निरीक्षण करना तथा उन पर नियन्त्रण करना।
   - (ii) ग्राम पंचायतों की वार्षिक योजनाओं पर विचार करना तथा उन्हें ज़िला परिषद् के पास भेजना।
   - (iii) सरकारी अथवा ज़िला परिषद् द्वारा निर्धारित वार्षिक योजनाओं को तैयार करना।
   - (iv) अपने क्षेत्र में आनेवाली ग्राम पंचायतों द्वारा विकास कार्यों को लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान करती है।
   - (v) ब्लॉक के बजट को तैयार करके ज़िला परिषद् को भेजना।
   - (vi) सरकार द्वारा निश्चित किए गए कार्य करना।
   - (vii) ग्राम पंचायत की सहमति से पंचायत समिति अपने प्रत्यक्ष प्रशासकीय नियन्त्रण के अधीन किसी भी विषय सम्बन्धी जैसे–सम्पत्ति के निर्माण, देखभाल तथा विकास सम्बन्धी कार्य करना है।
2. **कृषि सम्बन्धी कार्य (Functions relating to Agriculture)** -
   - (i) उन्नत बीजों का विकास करना, किसानों को उनकी जानकारी देना तथा इनको किसानों में वितरित करना।
   - (ii) किसानों को उन्नत एवं वैज्ञानिक कृषि यन्त्रों की जानकारी देना।
   - (iii) रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों का वितरण करना।
   - (iv) कृषि के लिए वित्तीय सहायता जैसे–ऋण आदि उपलब्ध कराना।
   - (v) दलदल या बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना।
   - (vi) भू–संरक्षण (Soil Conservation) या भूमि कटाव पर रोक लगाना।
   - (vii) खाद्यान्न उत्पादन की नई विधियों की जानकारी देना।
   - (viii) प्राकृतिक अथवा देसी खाद को कृषि के लिए बढ़ावा देना, विशेषतः हरी और गली–सड़ी खाद (farm yard manure)

में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।

(ix) पेड़–पौधों की सुरक्षा सम्बन्धी उपायों की जानकारी देना।

(x) कृषि कार्यों में अधिक शक्ति का प्रबन्ध करना।

(xi) फलों और सब्ज़ियों की खेती को बढ़ावा देना।

(xii) वृक्षारोपण (Afforestation) को बढ़ावा देना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्ष लगाने पर बल देना।

(xiii) कृषि मेलों, प्रदर्शनियों आदि की व्यवस्था करना।

(xiv) कृषि के विकास के लिए सिंचाई के साधनों में सरकार और ज़िला परिषद् की मदद करना।

(xv) राज्य सरकार द्वारा चलाए जानेवाले भूमि सुधार तथा भू–संरक्षण (Land reformation and soil conservation) कार्यक्रमों में राज्य सरकार तथा ज़िला परिषद् की सहायता करना।

(xvi) व्यक्तिगत तथा सामूहिक सिंचाई सम्बन्धी कार्यक्रम लागू करना।

3. **पशु पालन (Animal Husbandry)** -

(i) पशु चिकित्सा और पशु पालन सेवाओं की व्यवस्था करना।

(ii) पशुओं, मुर्गियों तथा अन्य पालतू जीवों की नस्ल सुधारना।

(iii) पालतू पशुओं और पक्षियों आदि को महामारी से बचाना।

(iv) दुग्ध उत्पादन के लिए डेयरियों को बढ़ावा देना। इसके अतिरिक्त मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, सुअर पालन, मछली पालन इत्यादि को प्रोत्साहित करना।

4. **शिक्षा (Education)** -

(i) अपने क्षेत्र में शिक्षा के विकास की ओर ध्यान देना।

(ii) प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को बढ़ावा देना।

(iii) प्राथमिक विद्यालयों के लिए भवन निर्माण, मरम्मत तथा देख–रेख करना।

(iv) युवा केन्द्रों तथा महिला मण्डलों द्वारा सामाजिक शिक्षा का प्रसार करना।

(v) प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा को बढ़ावा देना।

(vi) ग्रामीण कारीगरों, शिल्पियों आदि को व्यावसायिक व तकनीकी प्रशिक्षण देना।

(vii) पुस्तकालयों, वाचनालयों (reading rooms) इत्यादि का निर्माण, देख–रेख और विकास करना।

5. **स्वास्थ्य और परिवार कल्याण (Health and Family welfare)** -

(i) अपने क्षेत्र की सफाई और स्वास्थ्य का उचित प्रबन्ध करना।

(ii) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।

(iii) बीमारियों की रोकथाम के लिए टीकाकरण तथा अन्य उपाय करना।

(iv) महिलाओं तथा शिशुओं के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों तथा टीकाकरण के कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।

(v) प्रसूति गृह तथा बाल–कल्याण केन्द्र स्थापित करना।

(vi) स्त्रियों और बाल–कल्याण कार्यक्रमों में स्वयंसेवी संगठनों को उत्साहित करना।

(vii) स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण सम्बन्धी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।

(viii) मेलों तथा उत्सवों आदि सार्वजनिक प्रदर्शनियों में सफाई का विशेष ध्यान रखना।

(ix) जन्म, मृत्यु और शादियों का पंजीकरण करना।

(x) अनाथालयों का प्रबन्ध करना।

(xi) लावारिस लाशों का दाह संस्कार करना।

6. पीने का पानी (Drinking Water) -

(i) स्वच्छ और पीने योग्य पानी की व्यवस्था करना।

(ii) पानी को प्रदूषित होने से बचाना तथा जल प्रदूषण के खतरों से अवगत कराना।

(iii) ग्रामीण जल संशोधन योजनाएँ लागू करना।

(iv) ग्रामीण क्षेत्रों में जलापूर्ति योजनाओं को लागू करना और उनकी देख–रेख करना।

7. वृक्षारोपण (Afforestation) -

(i) वनों व पेड़ों के विकास के लिए नर्सरियों (nursaries) का विकास करना।

(ii) वृक्षारोपण के कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना।

(iii) अपने अधिकार क्षेत्र में आनेवाले राज मार्गों के किनारे पेड़ लगवाना तथा उनकी देख–रेख करना।

(iv) ईंधन तथा चारे के लिए वृक्ष लगवाना।

8. कमज़ोर वर्गों का कल्याण (Welfare of the Weaker Sections) -

(i) अनुसूचित जातियों, जन–जातियों व पिछड़ी श्रेणियों और समाज के अन्य दुर्बल वर्ग के लोगों को सामाजिक अन्याय व शोषण से बचाना।

(ii) अपाहिजों, अनाथों, दिमागी तौर पर असंतुलित व्यक्तियों के कल्याण के लिए कार्यक्रम बनाना।

(iii) अनुसूचित जातियों, जन–जातियों और समाज के अन्य कमज़ोर वर्गों के लोगों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रम लागू करना।

(iv) वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन व अपंगों के लिए पेंशन या आर्थिक मदद करना।

(v) दहेज व अन्य सामाजिक कुरीतियों को रोकना।

(vi) गन्दे और खतरनाक व्यापार तथा प्रथाओं पर रोक लगाना।

9. सामूहिक सम्पत्ति, सहकारिता तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Community assets, Co-operatives and Public Distribution System) -

(i) सरकारी सम्पत्ति का प्रबन्ध तथा उसकी देखभाल करना।

(ii) सामूहिक सम्पत्तियों सामुदायिक केन्द्रों आदि की देखभाल करना।

(iii) सहकारी समितियों को प्रोत्साहन देना।

(iv) सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत आवश्यक वस्तुओं का वितरण।

10. विकासात्मक कार्य (Development Functions) -

(i) लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देना।

(ii) सामुदायिक विकास कार्यक्रमों (Community development projects) को लागू करना।

(iii) अपने क्षेत्र के विकास के लिए ऊर्जा के गैर–परम्परागत स्रोतों को बढ़ावा देना।

(iv) लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए सम्मेलन, गोष्ठियाँ तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों का आयोजन करवाना।

(v) कृषि औद्योगिक प्रदर्शनियाँ लगवाना।

(vi) मकानों के लिए प्लाटों के आबंटन तथा गृह निर्माण कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना।

(vii) ग्रामीण जल प्रदूषण रोकना तथा ग्रामीण स्वच्छता परियोजनाओं को लागू करना।

(viii) अपने क्षेत्र में सड़कों, पुलों, नालों, जलमार्गों तथा आवागमन के अन्य साधनों इत्यादि का निर्माण, देख–रेख व मरम्मत करना।

(ix) सार्वजनिक नौका घाटों का प्रबन्ध करना।

(x) यातायात के साधनों का प्रबन्ध करना।

(xi) पंचायत समिति सार्वजनिक हित के लिए सम्पत्ति के अधिग्रहण का अधिकार भी रखती है।

11. मनोरंजन खेल-कूद कला और संस्कृति (Entertainment, Games, Art and Culture)-

(i) पंचायत समिति लोगों के मनोरंजन के लिए सर्कस, चल–चित्र, नाटक, मेलों, दंगल प्रदर्शनियों आदि का आयोजन करती है।

(ii) उत्सवों का आयोजन करना।

(iii) खेलों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न खेल–कूद कार्यक्रमों का आयोजन करना तथा खेल सामग्री वितरित करना।

(iv) मनोरंजन केन्द्रों, थियेटरों, मंचों आदि की व्यवस्था करना।

(v) कलाकारों को प्रोत्साहन देना।

(vi) कला तथा संस्कृति के विकास के लिए अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करना।

(vii) परम्परागत ग्रामीण खेल को लोकप्रिय बनाना।

12. आपात् सेवाएँ (Emergency Services) -

(i) अकाल, बाढ़ व आग लगने जैसी विकट स्थितियों में सहायता करना।

(ii) आपात् अग्निशमन सेवा प्रदान करना।

(iii) महामारियों की रोकथाम के लिए प्रभावी कदम उठाना।

13. ग्रामीण विद्युतीकरण (Rural Electrification) -

(i) ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण को प्रोत्साहित करना।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यक स्थानों पर रोशनी की व्यवस्था करना।

14. अन्य कार्य (Other Functions) – उपर्युक्त कार्यों के अलावा पंचायत समिति उन सब कार्यों को भी करती है जो समय–समय पर राज्य सरकार इसको सौंपती है। यदि ऐसे कार्य करने के लिए पंचायत समिति को अतिरिक्त धनराशि खर्च करनी पड़ती है तो उसको राज्य सरकार वहन करेगी।

15. उप-नियम बनाने सम्बन्धी शक्तियाँ (Powers to makes Bye-laws) – पंचायत समिति को निम्नलिखित विषयों में

उप–नियम बनाने का अधिकार प्राप्त है--

(i) बस अड्डों पर नियन्त्रण।

(ii) सड़कों और गलियों को नुकसान तथा अवैध कब्ज़ों से बचाना।

(iii) राज्य सरकार द्वारा सौंपी गई सम्पति तथा पंचायत समिति की सम्पत्ति को नुकसान और हस्तक्षेप से बचाना।

(iv) किसी औद्योगिक या व्यापारिक प्रदर्शनी, मेले आदि की सीमा निर्धारित करना, उसका प्रबन्ध करना तथा सफाई बनाए रखना।

(v) क्रीड़ा स्थलों, मनोरंजन स्थलों तथा व्यायामशालाओं का प्रबन्ध करना।

(vi) मोटर गाड़ियों या बैलगाड़ियों के अलावा गाड़ियों का पंजीकरण करना, लाईसेंस देना और गाड़ियों के यातायात का प्रबन्ध करना।

(vii) चरागाहों का प्रबन्ध और देख–रेख करना।

(viii) स्वच्छ हवादार मकान बनाने की व्यवस्था करना।

(ix) खाने–पीने के सामान की बिक्री के सम्बन्ध में।

(x) तालाबों, झीलों, झरनों आदि की सफाई और देख–रेख करना।

(xi) पशुशालाओं का प्रबन्ध और निरीक्षण।

(xii) पशुओं के स्वास्थ्य का ध्यान रखना, उनकी नस्ल सुधारना तथा उन्हें रोगों आदि से बचाना।

(xiii) सार्वजनिक प्रदर्शनियों, मेलों, मण्डियों आदि में पशुओं की बिक्री दर्ज करने के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति और उनके द्वारा लगाए जानेवाला शुल्क निर्धारित करना।

(xiv) पागल और आवारा कुत्तों को मारना, चूहों, टिड्डियों एवं अन्य कीड़े–मकौड़ों को खत्म करना।

(xv) प्लेग, हैजा, इत्यादि विरोधी उपाय करना तथा छूत के रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए आवास का प्रबन्ध करना।

(xvi) पंचायत समिति के क्षेत्र में घूमनेवाले आवारा और लावारिस पशुओं का निवारण करना।

(xvii) पंचायत समिति के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत लगाई जानेवाली चुंगी, कर, शुल्क आदि का निर्धारण और एकत्रिकरण करना।

(xviii) सरायों, आरामगृहों, होटलों, बेकरियों, धोबी घाटों, बूचड़खानों, धुआं रहित चूल्हों इत्यादि का निरीक्षण ओर सही व्यवस्था करना।

(xix) मलेरिया के बचाव के लिए उपाय करना।

(xx) श्मशान घाटों और कब्रिस्तानों का प्रबन्ध व देख–रेख करना।

उल्लेखनीय है कि यदि कोई व्यक्ति पंचायत समिति द्वारा बनाए इन उप–नियमों का उल्लंघन करता है तो उस पर 500 रुपये जुर्माना किया जा सकता है।

(1) अस्पताल, औषधालय, स्कूल, धर्मशाला, विश्राम गृह तथा अन्य लोक संस्थाओं के प्रयोग के बदले में ली गई फीस,

(2) पानी की सप्लाई प्रदान करने पर लिया गया पानी कर,

(3) दलदल, मिट्टी, कीचड़ आदि का पुनरुद्धार करने पर फीस,

(4) खेती–बाड़ी से तथा उद्योग से सम्बन्धित आयोजित प्रदर्शनियों से प्राप्त आय,

(5) सरकार की स्वीकृति से समय–समय पर लगाए गए कर; जैसे व्यवस्था कर, सम्पत्ति कर व मार्ग कर,

(6) समिति की सम्पत्तियों से प्राप्त आय,

(7) समिति की भूमि व आय सम्पत्तियों से प्राप्त किराया,

(8) सरकार से लिया गया ऋण,

(9) भारत सरकार द्वारा शुरू की गई रोज़गार आश्वासन योजना के तहत दी जानेवाली राशि में से अपने हिस्से की 15 प्रतिशत प्राप्त राशि। विदित है कि शेष धनराशि पंचायत तथा ज़िला–परिषद् (70 प्रतिशत तथा 10 प्रतिशत) को आबंटित की जाती है,

(10) भारत सरकार के वित्त आयोग द्वारा दिया जाने वाला पंचायती राज संस्था अनुदान,

(11) राज्य सरकार द्वारा सामुदायिक विकास व अन्य कार्यों के लिए दिया जानेवाला अनुदान।

जिला परिषद्

जिला परिषद् भारत के ग्रामीण स्थानीय स्व शासन की पंचायती राज व्यवस्था का शिखर है। इसकी स्थापना सभी राज्यों में जिला स्तर पर की गई है। इससे पहले प्रत्येक जिले में बोर्ड होते थे जो ग्रामीण क्षेत्रों के स्थानीय मामलों की देख रेख या निपटारा करते थे। परन्तु वर्तमान समय में जिला बोर्डों के स्थान पर जिला परिषद् कार्यरत हैं। जिला परिषद् को विभिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, उड़ीसा, सिक्किम, असम, आन्ध्रप्रदेश, मणिपुर, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र तथा मध्यप्रदेश में इसे जिला परिषद् कहते हैं। उत्तर प्रदेश, गोवा तथा कर्नाटक में जिला पंचायत जबकि केरल, तमिलनाडु तथा गुजरात में इसे डिस्ट्रिक्ट पंचायत (District Panchayat) के नाम से पुकारा जाता है।

हरियाणा में ज़िला परिषद् की स्थापना एवं रचना
(Establishment and Composition of the Zila Parishad in Haryana)

हरियाणा पंचायती राज अधिनियम, 1994 की धारा 117 के अनुसार राज्य सरकार अधिसूचना के द्वारा जिला–परिषद् की स्थापना कर सकती है। ज़िला--परिषद् के अधिकार क्षेत्र में नगरपालिका और छावनी बोर्ड नहीं आते। सरकार यदि चाहे तो ज़िला–परिषद् की सलाह पर किसी पंचायत या खण्ड को ज़िला–परिषद् के अधिकार–क्षेत्र में सम्मिलित या निष्कासित कर सकती है।

रचना (Composition) –प्रत्येक ज़िला–परिषद् में शामिल होंगे–

(1) ज़िले के अधीन बनाए गऐ वार्डों में से प्रत्यक्ष चुने गए सदस्य।

(2) ज़िले के अधीन सभी पंचायत समितियों के अध्यक्ष पदेन सदस्यों (ex-officio members) के रूप में।

(3) लोकसभा के सदस्य, जिनका चुनाव क्षेत्र या उसका कुछ भाग ज़िले के साथ लगता हो, पदेन सदस्य के रूप में।

(4) ज़िला–परिषद् के निर्वाचित सदस्यों के द्वारा चुना गया अध्यक्ष व उपाध्यक्ष।

उल्लेखनीय है कि ज़िला–परिषद् के सभी पदेन सदस्यों को ज़िला–परिषद् की बैठकों में मत देने का अधिकार तो प्राप्त होता है परन्तु वे अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के चुनाव और पदच्युति में भाग नहीं ले सकते। ज़िला–परिषद् के प्रत्यक्ष चुने गए सदस्यों की संख्या 10 से कम और 30 से अधिक नहीं हो सकती। राज्य सरकार के द्वारा बनाए गए नियम के अनुसार एक सदस्य 40,000 की जनसंख्या वाले क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। चुनाव के लिए ज़िले के सभी वार्डों का विभाजन समरूप विधि के अनुसार होगा। प्रत्येक वार्ड में से एक सदस्य चुना जाएगा। अम्बाला ज़िले के मोरनी खण्ड और यमुनानगर के संढ़ौरा खण्ड के लिए निर्वाचित एक सदस्य को चुनने के लिए वास्तविक जनसंख्या 40,000 से कम हो सकती है।

आरक्षण
(Reservation)

ज़िला–परिषद् के चुनाव में निम्नलिखित प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था की गई है–

1. **अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए आरक्षण (Reservation for Scheduled Castes and Scheduled Tribes)** -- ज़िला–परिषद् की कुल सीटों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए उनके ज़िले में जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से आरक्षण किया गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि उनकी जनसंख्या एवं अन्य जातियों की संख्या में और ज़िला–परिषद् की कुछ सीटों की संख्या और उनके लिए आरक्षित सीटों की संख्या में एक समान अनुपात होगा। इन आरक्षित सीटों में से एक–तिहाई सीटें इस जाति की महिलाओं के लिए आरक्षित की जाएँगी।

2. **महिलाओं के लिए आरक्षण (Reservation of Women)** – ज़िला–परिषद् के प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा भरी जानेवाली कुछ सीटों में से 1/3 सीटें (इनमें अनुसूचित जाति की महिलाएँ भी सम्मिलित हैं) महिलाओं हेतु आरक्षित की जाएँगी। इन सीटों का विभाजन क्रमवार (By rotation) किया जाएगा।

3. **पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण (Reservation for Backward Classes)** – ज़िला–परिषद् में कम–से–कम एक सीट पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षित की गई है। यह सीट उस वार्ड में से भरी जाएगी जिसमें पिछड़ी जातियों (BC) की जनसख्या सबसे ज्यादा है।

4. **अध्यक्ष के पद का आरक्षण (Reservation of the Office of Chairman)** -- ज़िला–परिषद् के अध्यक्ष के पद का भी आरक्षण किया गया है। राज्य के कुल ज़िला–परिषद् अध्यक्ष में से 1/3 स्थान महिलाओं के लिए (SC महिलाएँ भी शामिल हैं) एवं जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जातियों के लिए भी स्थान आरक्षित किए गए हैं।

ज़िला-परिषद् की सभाएँ
(Meetings of Zila Parishad)

ज़िला–परिषद् के सदस्यों के औपचारिक चुनाव हो जाने की प्रक्रिया की सूचना राज्य चुनाव आयुक्त या उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी के द्वारा प्रकाशित की जाती है। ज़िला–परिषद् का औपचारिक गठन हो जाने के बाद चार सप्ताह के भीतर प्रथम बैठक का आयोजन किया जाता है। जिसमें ज़िला–परिषद् के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। ज़िला–परिषद् की एक वर्ष में 6 बैठकें बुलानी आवश्यक होती हैं और दो बैठकों के बीच का समय दो माह से ज्यादा नहीं होना चाहिए। ज़िला–परिषद् का अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष बैठकें बुलाए जाने की तिथि, स्थान व कार्यसूची का निर्णय करता है। ज़िला–परिषद् की बुलाई गई बैठकों की सूचना प्रत्येक सदस्य को साधारण बैठक शुरू होने से 10 दिन पहले और विशेष बैठक शुरू होने से 4 दिन पहले दी जाती है। ज़िला–परिषद् का अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में कार्यकारी अधिकारी, यदि आवश्यक समझें तो ज़िला–परिषद् के 1/3 सदस्यों के आग्रह पर विशेष बैठक आमन्त्रित कर सकते हैं।

प्रत्येक बैठक की अध्यक्षता ज़िला–परिषद् के अध्यक्ष द्वारा तथा उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष द्वारा एवं उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में सदस्यों के द्वारा चुने गए किसी एक सदस्य के द्वारा की जाती है। सभा में निर्णय सदस्यों के बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं और यदि किसी विषय पर मत बराबर पड़ें तो सभा के अध्यक्ष को निर्णायक मत (Casting Vote) का अधिकार प्राप्त होता है। परन्तु अध्यक्ष के चुनाव व हटाने की विधि के दौरान उसे निर्णायक मत का अधिकार प्राप्त नहीं होता। ज़िला–परिषद् के द्वारा लिए गए किसी अन्तिम निर्णय को तब तक बैठक मे दोबारा प्रस्तुत (Reconsideration) नहीं किया जाएगा जब तक कि परिषद् के 3/4 सदस्यों की स्वीकृति न मिल जाए या सरकार ऐसा कोई आदेश (Order) न दे।

ज़िला–परिषद् की प्रत्येक बैठक की कार्रवाइयों (Minutes of Proceedings of Meeting) का रिकॉर्ड (Record) रखा जाता है। जिसका निरीक्षण कोई भी सदस्य कर सकता है। ज़िला–परिषद् में पारित किए गए प्रस्ताव की प्रति (Copy) 3 दिन के भीतर सरकार को भेजी जाती है।

गणपर्ति (Quorum) – ज़िला–परिषद् की कार्रवाई चलाने के लिए आवश्यक गणपूर्ति इस प्रकार निश्चित की गई है–

1. साधारण बैठक के लिए कुल सदस्यों में से 1/3 सदस्यों की उपस्थिति एवं
2. विशेष बैठक के लिए कुल सदस्यों में से 1/2 सदस्यों की उपस्थिति।

जिला–परिषद् की कोई भी बैठक 1/2 सदस्यों की स्वीकृति से किसी आगामी दिनांक तक स्थगित की जा सकती है। आगामी बैठक, में, स्थगित की गई बैठक के अनिर्णयित विषय पर विचार नहीं किया जाएगा।

जिला परिषद् के कार्य

(i) **पंचायत समितियों का निरीक्षण (Supervison over Panchayat Samities)** – सभी राज्यों में जिला परिषदों पंचायत समिति की कार्य शैली के निरीक्षण (Supervision) के लिए उत्तरदायी (Responsible) हैं। समितियों को समय–समय पर पारित सभी प्रस्तावों की नकल जिला परिषदों को सौंपनी होती है। जिला परिषद् से आशा की जाती है कि वह इन प्रस्तावों का पर्यवेक्षण (Screen) करके यह देखने की कोशिश करें कि कहीं पंचायत समिति अपनी सीमा रेखा से बाहर तो नहीं आ गई, उन्होंने अपने अधिकारों का दुरुपयोग तो नहीं किया और कोई अनियमितता (Irregularity) तो नहीं की। पंजाब और हिमाचल प्रदेश जैसे कुछ राज्यों में बने कानूनों के अनुसार पंचायत समिति के लिए अनिवार्य है कि वह जिला परिषद् के निर्देशों का पालन करे। जिला परिषद् पंचायत समिति के बजट की जाँच भी करती हैं और उसे स्वीकृति भी देती है यह पंचायत समिति का कोई भी रिकार्ड, वक्तव्य (Statement) या जानकारी मँगवा सकती है। यह पंचायत समिति द्वारा की गई किसी भी अनियमितता (Irregularity) की रिपोट कलैक्टर य डिविजनल कमिश्नर को भेज सकती है।

(ii) **परामर्श सम्बन्धी कार्य (Advisory Functions)**– पंचायत समितियों को सलाह देने के साथ–साथ वह जिले में होनेवाले सभी कार्यों के सम्बन्ध में राज्य सरकार को भी परामर्श देती है। यह राज्य सरकार को जिले में पंचायत समितियों और पंचायतों के बीच के बंटवारे के बारे में मंत्रणा भी देती है।

(iii) **समन्वयशील कार्य (Co-ordinative Functions)**– जिला परिषद् का एक महत्त्वपूर्ण काम पंचायत समितियों और समिति तथा पंचायत के बीच समन्वय (Co-ordination) स्थापित करना है। यह पंचायत समितियों द्वारा तैयार विकास योजनाओं के लिए सहयोग भी देती हैं और उन्हें दृढ़ भी करती है। यह इन योजनाओं या अन्य स्कीमों या प्रयोजनाओं को पूरा करने में मदद करती है जो दो या दो से अधिक पंचायत समितियों से सम्बन्धित हों।

(iv) **प्रशासकीय कार्य (Administrative Functions)**– उन राज्यों में भी जहाँ पंचायत समिति केन्द्रीय भूमिका निभाती है, जिला परिषदों को कुछ प्रशासकीय कार्य दिए गए हैं। आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में जहाँ समितियाँ अधिक शक्तिशाली हैं, जिला परिषदों को निम्नलिखित विकास कार्यों जैसे कृषि, सिंचाई, शिक्षा, संचार आदि दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त इन राज्यों में जिला परिषदों को राज्य सरकार और भी प्रशासनिक कार्य सौंप सकती है। उत्तर प्रदेश में जिला परिषद् इन कार्यों से सम्बन्धित हैं– प्राथमिक स्तर (Primary Stage) से ऊपर शिक्षा का प्रबन्ध, पुस्तकालयों की स्थापना, अध्यापकों के प्रशिक्षण (Teacher's training) का इन्तजाम, सार्वजनिक सड़कों, पुलों को बनाना, मरम्मत करना तथा देखभाल करना, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के प्रशिक्षण के लिए केन्द्र, गरीबों के लिए आवास गृह, पागलखाने और अनाथालय खोलना और उनका प्रबन्ध करना, समिति की योजनाओं के पर्यवेक्षण (Review) के अतिरिक्त जिले के लिए योजना बनाना। महाराष्ट्र और गुजरात में जहाँ विकास एवं योजना के लिए जिला परिषद् मुख्य इकाई है यह विकास सम्बन्धी सभी कार्यों जैसे कृषि, पशु–पालन, वन, सामाजिक शिक्षा, समाज–कल्याण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, संचार, आवास, ग्राम्य उद्योग और सामुदायिक विकास आदि के प्रति उत्तरदायी है।

(v) **विविध कार्य (Miscellaneous Functions)**– कुछ राज्यों में जिला परिषदों को उप नियम बनाने; प्रस्ताव पास करने, यहाँ तक कि अपील सुनने के भी अधिकार हैं। आखिरी मामले में यह पंचायत समितियों या दो ग्राम पंचायतों या पंचायत समिति एवं ग्राम पंचायतों के विवाद (Disputes) निपटाती है। यह ग्राम पंचायतों पर निरीक्षण (Supervisory) करने या प्रशासनिक नियन्त्रण (Control) भी रखती है। एक जिला परिषद अपने अधिकार अध्यक्ष (Chairman), उपाध्यक्ष (Vice-Chairman) या सेक्रेटरी (Secretary) को हस्तांतरित (Delegate) कर सकती है। यह जिले के स्थानीय अधिकारियों के कार्यकलापों के आँकड़े भी इकट्ठे करती है। यह ऐसे अधिकार या कार्य करती है जिन्हें राज्य सरकार इसे समय–समय पर सौंपती है।

जिला-परिषद् की आय के साधन
(Sources of Income of Zila Parishad)

जिला–परिषद् की आय के साधन निम्नलिखित हैं–

(1) राज्य सरकार की स्वीकृति से समय–समय पर जिला–परिषद् द्वारा लगाए गए कर,

(2) गन्दगी, गोबर, कूड़ा–करकट के बेचने से प्राप्त आय,

(3) राज्य सरकार द्वारा विकास व पंचायत विभाग की योजनाओं के तहत 5: से 10: तक आबंटित फण्ड,

(4) राज्य सरकार द्वारा लिया गया ऋण,

(5) जिला–परिषद् की सम्पत्तियों से प्राप्त किराया,

(6) कुटीर उद्योग तथा लघु उद्योग की उन्नति के लिए अखिल भारतीय संस्थाओं द्वारा दिए गए अनुदान,

(7) पंचायत समितियों द्वारा दिए गए अनुदान,

(8) राज्य सरकार की स्वीकृति से पंचायत समितियों के लिए स्वीकृति धन में से ली गई धनराशि,

(9) भारत सरकार द्वारा आरम्भ की गई रोजगार आश्वासन योजना कुल राशि में से 10: हिस्से में आई धनराशि, शेष राशि पंचायतों व पंचायत समितियों में वितरित की जाती है,

(10) केन्द्रीय वित्त आयोग द्वारा दिया गया अनुदान,

(11) अस्पताल, स्कूल, औषधालय के प्रयोग के बदले में ली गई फीस,

(12) दलदल, मिट्टी, कीचड़ आदि का पुनरुद्धार करने पर ली गई फीस,

(13) खेती–बाड़ी व उद्योग–धन्धों पर दिखाई गई प्रदर्शनी पर ली गई फीस।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. पंचायत समिति क्या है? इसकी संरचना का वर्णन कीजिए।
2. पंचायत समिति की शक्ति तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. पंचायत समिति के आय की साधन क्या हैं?
4. जिला परिषद् का संगठन तथा संरचना की व्याख्या कीजिए।
5. जिला परिषद् के कार्य तथा आय के साधनों का वर्णन कीजिए।

अध्याय-14
पंचायती राज वित्त, क्रमिक प्रशासन, भर्ती एवं प्रशिक्षण
(Panchayati Raj Finances, Personnel Administration, Recruitment and Training)

कोई भी सरकार बिना वित्त के कार्य नहीं कर सकती है। वित्त शासन के लिए जीवन–रक्त होता है। वित्त किसी भी सरकार के लिए उतना ही महत्त्व रखता है जितना वातावरण में आक्सीजन। इसी सन्दर्भ में कौटिल्य ने लिखा था कि सभी उद्यम वित्त पर निर्भर करते हैं अतः कोष की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। सरकारों, केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय–की कार्य कुशलता के लिए अच्छी वित्तीय व्यवस्था आधारस्तम्भ है। लोक प्रशासन में वित्तीय प्रशासन का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। वित्तीय प्रशासन शब्द का व्यापक अर्थ लिया जाता है, जिसमें बजट, लेखांकन, सार्वजनिक धन का खर्च, आय, व्यय, लेखा परीक्षण तथा सरकार की वित्तीय लेन–देन सम्मिलित किया जाता है। हूवर आयोग ने वित्तीय प्रशासन की परिभाषा देते हुए लिखा– "आधुनिक सरकार के द्वारा लोक सेवाओं के लिए धनराशि का संग्रहण, खर्च एवं लेखांकन की प्रक्रिया मशीनरी वित्तीय प्रशासन कहलाती है।"

पंचायती राज संस्थाएँ अपने प्रजातान्त्रिक क्रिया कलापों एवं ग्रामीण जनता के साथ प्रत्यक्षतः जुड़ी हुई होने के कारण अन्य संस्थाओं से महत्त्वपूर्ण बन गई है। ग्रामीण विकास एवं लोक कल्याण से सम्बन्धित पंचायती राज हमारे जीवन का महत्त्वपूर्ण पहलू है। ग्रामीण स्थानीय शासन एवं प्रशासन में जन सहभागिता के संस्थागत स्वरूप में पंचायती राज संस्थाएँ भारतीय लोक–प्रशासन की एक मौलिक विशेषता है। स्थानीय शासन की महत्त्वपूर्ण समस्या वित्त की है। भारत में साधनों की सीमितता सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए चुनौती है, स्थानीय निकायों के लिए स्थिति और भी दयनीय है। स्थानीय स्तर पर साधनों की कमी एवं सीमितता का आभास असन्तोष को जन्म देता है। वर्तमान समय में लगभग सभी राज्यों में पंचायती राज की आलोचनाओं में एक प्रमुख आलोचना पंचायती राज की कुशल वित्तीय प्रबन्ध व्यवस्था के अभाव की है। यद्यपि 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय संसाधनों के समुचित प्रबन्ध के लिए एक राज्य स्तरीय वित्त आयोग का प्रबन्ध किया गया है, परन्तु इस दिशा में कारगर कदम उठाने के प्रयास अभी प्रारम्भ नहीं हुए हैं।

पंचायती राज वित्त का विकास

भारत में स्थानीय वित्त का विकास ब्रिटिश शासनकाल से आज तक कई प्रकार के प्रभावों से प्रभावित रहा है। ब्रिटिश शासनकाल में 1793 में ब्रिटिश स्थानीय शासन में प्रचलित स्थानीय वित्त प्रणाली को भारत में प्रारम्भ किया गया। सन् 1850 में एक विस्तृत नगरपालिका प्रशासन से सम्बन्धित व्यवस्थापन किया गया। मेयो योजना 1870 के द्वारा कुछ संशोधन किए गए। मेयो योजना द्वारा प्रशासन में विकेन्द्रीयकरण की योजना का ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय संस्थाओं पर व्यापक प्रभाव रहा। लार्ड रिपन का 1882 का स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी प्रस्ताव स्थानीय स्वशासन के विकास में एक महत्त्वपूर्ण चरण रहा है। रिपन प्रस्ताव में स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय संसाधनों के क्षेत्र को व्यापक बनाया गया, परन्तु वित्तीय प्रशासन पर कड़ा नियन्त्रण भी रखा गया। 1907–09 के विकेन्द्रीयकरण आयोग ने स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय एवं प्रशासनिक पहलुओं की विस्तृत समीक्षा की गई। 1919 के भारत अधिनियम के अन्तर्गत स्थानीय स्वशासन को प्रान्तीय सरकार के दायरे में लाया गया। इस अधिनियम द्वारा स्थानीय निकायों के क्षेत्राधिकार में रखे गए–

1. पथ कर, 2. भूमि मूल्य सम्बन्धी कर, 3. भवन कर, 4. गाड़ियों तथा नावों पर कर, 5. घरेलू नौकरों पर कर, 6. मवेशी कर, 7. चुंगी, 8. टरमिनल कर, 9. व्यापार व्यवसाय कर, 10. मंडियों पर कर, 11. सेवा शुल्क, जल शुल्क, विद्युत शुल्क इत्यादि।

1952 में नियुक्त कराधान समिति ने यह महसूस किया था कि स्थानीय निकायों द्वारा की जानेवाली सेवाओं की तुलना म उनक कराधान का क्षेत्राधिकार काफी सीमित है। 1935 के भारत सरकार अधिनियम के पारित किए जाने के समय समझा जा रहा था कि स्थानीय स्वशासन को व्यापक बनाया जाएगा, परन्तु इस अधिनियम के द्वारा 1919 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा किए गए प्रावधानों एवं उनके अन्तर्गत बनाए गए नियमों को वापस ले लिया गया। स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक दर्जा नहीं दिया गया। यह अपेक्षा की गई स्थानीय निकाय प्रान्तीय कानूनों द्वारा संचालित किए जाएँगे, परन्तु प्रान्तीय स्वायत्तता के ठीक क्रियान्विति के अभाव में इस दिशा में कोई कारगर कदम नहीं उठाया गया। 1951 में नियुक्त जाँच समिति का इस सन्दर्भ मे यह निष्कर्ष था कि यह अधिनियम स्थानीय स्वशासन के लिए अपर्याप्त था। इसने कराधान के क्षेत्र को स्थानीय निकायों से हटकर प्रान्तीय सरकारों के दायरे में ला दिया। स्थानीय निकायों के वित्तीय आधार को कमजोर बना दिया जिससे उनकी प्रान्तीय सरकारों के सहायता अनुदानों पर निर्भरता बहुत अधिक हो गयी। इसके परिणामस्वरूप स्थानीय स्वशासन के विकास को ठेस पहुँची। स्वतन्त्रता के बाद भी संविधान में स्थानीय स्वशासन के बारे में कोई ठोस व्यवस्था नहीं रखी गयी। संविधान में केवल राज्य नीति निर्देशन तत्त्वों में धारा 40 के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया कि "राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह ग्राम पंचायतों का इस ढंग से संचालन करें कि वे स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।"

बलवन्त राय मेहता समिति प्रतिवेदन

ग्रामीण स्थानीय शासन का आधार बलवन्त राय मेहता समिति प्रतिवेदन है। इस समिति का गठन प्लान प्रोजेक्ट कमेटी द्वारा किया गया था। 1957 में समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। समिति ने ग्रामीण स्वशासन के लिए त्रिस्तरीय संगठनात्मक ढाँचे की स्थापना का सुझाव प्रस्तुत किया। समिति ने विस्तार से पंचायत राज वित्त के बारे में अपने सुझाव प्रस्तुत किए।

ग्राम पंचायत

इस समिति ने ग्राम पंचायतों के आय के निम्नलिखित साधन बतलाए–

1. सम्पत्ति कर अथवा गृह कर।
2. हाटों तथा बाजारों पर कर।
3. गाड़ियों, साइकिलों, नावों, बोझा ढोनेवाले वाहनों पर कर।
4. चुंगी या सीमा कर।
5. सफाई कर।
6. प्रकाश शुल्क।
7. जल कर।
8. मवेशीखाने से आय।
9. स्थानीय क्षेत्र में बिकनेवाले पशुओं पर पंजीकरण शुल्क।
10. कसाई खानों पर शुल्क।
11. पंचायत समिति से अनुदान।

बलवन्त राय मेहता समिति के प्रतिवेदन की सिफारिशें अलग–अलग राज्यों ने अलग–अलग प्रकार से लागू की। अतः सभी राज्यों के पंचायती–राज के स्वरूप एवं उनकी आय के साधनों में अन्तर है। परन्तु देश की सभी पंचायतों में एक चीज सामान्य रूप से मिलती है वह पंचायत राज संस्थाओं के आय के साधनों की न्यूनता।

पंचायत समिति

1. विकास खण्ड के क्षेत्र में वसूल किए गए भू–राजस्व का निश्चित प्रतिशत भाग।

2. भू–राजस्व, जल कर आदि पर उप कर (महसूल)।
3. व्यवसायों तथा उद्यमों पर कर।
4. अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर लगाए गए शुल्क पर अधिकार।
5. सम्पत्ति जैसे घाटों, मत्स्य क्षेत्रों आदि से मिलनेवाला किराया।
6. सड़कों एवं पुलों पर चुंगी कर।
7. तीर्थयात्री कर।
8. मनोरंजन के साधनों पर कर।
9. प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी उप कर।
10. मेलों एवं हाटों से आय।
11. मोटरगाड़ी कर का एक भाग।
12. ऐच्छिक सार्वजनिक चन्दे।
13. सरकार से अनुदान।

जिला परिषद्

जिला परिषद् की आय के स्रोत के सम्बन्ध में भी सभी राज्यों में भिन्नता दिखाई देती है। जिला परिषद् की आय के साधनों को चार भागों में बाँटा जा सकता है– 1. कर, 2. करों से इतर साधन, 3. राज्य सरकार द्वारा अनुदान, 4. अन्य साधन।

महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि में जिला परिषदों को कर लगाने की शक्तियाँ दी गई हैं। लगभग सभी राज्यों में जिला परिषद् को अपने व्यय के लिए राज्य सरकारों पर निर्भर करना पड़ता है क्योंकि जो आय जिला परिषदें कर या उपकरों से जुटाती हैं वह मात्रात्मक रूप में महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

अशोक मेहता समिति प्रतिवेदन

अशोक मेहता समिति (पंचायती राज संस्थाओं से सम्बन्धी समिति) ने अपना प्रतिवेदन भारत सरकार को अगस्त 1978 में प्रस्तुत किया। समिति ने विस्तार से पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय व्यवस्था का मूल्यांकन किया एवं गहन अध्ययन के पश्चात् अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं। यद्यपि समिति ने सम्पूर्ण पंचायती राज्य व्यवस्था का मूल्यांकन किया था, वित्तीय व्यवस्था के बारे में दी गई सिफारिशें इस अध्याय की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। इस समिति का यह विचार था कि किसी प्रकार की वित्तीय विकेन्द्रीयकरण या वित्तीय विभाजन पंचायती राज वित्तीय व्यवस्था के परम्परागत दृष्टिकोण से दूर हटकर नहीं किया जाना चाहिए। अशोक मेहता समिति ने सुझाव प्रस्तुत किया था कि राज्य सरकार से बजटीय विभाजन के अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं को अपने स्वयं संसाधन विकसित करने चाहिए। कोई भी प्रजातान्त्रिक संस्था बाहरी वित्तीय निर्भरता पर लम्बे समय तक नहीं चल सकती। इस मान्यता को कि "बिना कर, प्रतिनिधित्व" को त्यागा जाना चाहिए। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पंचायती राज संस्थाओं को अनिवार्य कराधान की शक्तियाँ दी जानी चाहिए।

पंचायती राज के अनिवार्य कराधान के अन्तर्गत गृह कर, व्यवसाय कर, मनोरंजन कर, भूमि एवं भवनों पर विशेषकर इत्यादि रखे जाए। ऐच्छिक करों के सम्बन्ध में प्रोत्साहन की व्यवस्था रखी जाए। इन करों के अतिरिक्त फीस या सेवा कर भी लगाए जाएँ। ये कर बिजली, सफाई, पानी आपूर्ति इत्यादि से सम्बन्धित हों। इसके अतिरिक्त भू–राजस्व, भू–कर, स्टाप ड्यूटी पर सरचार्ज, मनोरंजन कर इत्यादि पंचायती राज कराधान के क्षेत्राधिकार में रखा जाए। समिति ने यह सुझाव भी प्रस्तुत किया कि भू–राजस्व को चरणबद्ध तरीके से पंचायती राज को हस्तान्तरित कर दिया जाए।

ग्रामीण विकास के साथ–साथ मत्स्य क्षेत्र, मेले, हाट, जंगल, चारागाह, सार्वजनिक भूमि इत्यादि को भी पंचायती राज के क्षेत्राधिकार में रखा जाए। मण्डल पंचायत अपने व्यापक जनसंख्या एवं क्षेत्रीय आधार पर अधिक संसाधन जुटा सकती है। राज्य सरकार भी सहायता देकर पंचायती राज संस्थाओं के संसाधनों में वृद्धि में सहयोगी बन सकती हैं। ऐसी सहायता बाजारों के विकास जैसे क्षेत्रों

में भी की जा सकती है। करों के अतिरिक्त वार्षिक स्थायी सहायता अनुदान की राशि 2.50 रुपए प्रति केपिटल मण्डल पंचायत को दी जानी चाहिए।

अशोक मेहता समिति ने राज्य वित्त आयोग की कोई उपयोगिता नहीं समझी। उसने केवल योजना में समान वितरण पर जोर दिया। इसी प्रकार पंचायत राज वित्त निगम जैसे एजेन्सियों की भी कोई सार्थकता नहीं समझी गई केवल वर्तमान मे कार्यरत् वित्तीय संस्थाओं को ग्रामीण विकास पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता बतलाई गई।

अशोक मेहता समिति के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं का वित्तीय प्रबन्ध

अशोक मेहता समिति में विस्तार से पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय प्रबन्ध की विवेचना भी की गई। अच्छी वित्तीय प्रबन्ध व्यवस्था पंचायती राज की सफलता का महत्त्वपूर्ण आधार है। इस सम्बन्ध में समिति ने यह सिफारिश की कि राज्य सरकार एक ऐसी बजटीय प्रक्रिया विकसित करेगा जो राज्य सरकार स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एक ऐसा दिशा निर्देशन तैयार कर जिस पंचायती राज संस्थाओं एवं सरकार के अधिकारियों के द्वारा बजट निर्माण एवं उसकी स्वीकृति मे आयोग में लाया जाएगा। बजट में कमजोर वर्ग के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान रखे जाएँ। पंचायती राज संस्थाओं में बजट की उच्च सत्ता द्वारा स्वीकृति की प्रक्रिया भी आवश्यक है क्योंकि इससे उच्च स्तर तथा निम्न स्तर में एक सम्पर्क बना रहता है तथा दिशा निर्देशन मिलता रहता है। जिला स्तर पर उच्च स्तर का वित्तीय अधिकारी नियुक्त किया जाए, जिसकी देख–रेख पर योजनागत एवं गैर योजनागत खर्च किया जाता रहे। प्रत्येक राज्य अपनी पंचायती राज से सम्बन्धित एक वित्तीय लेखांकन राज्य विधानमंडल को प्रस्तुत करे। शीघ्र लेखा परीक्षण की व्यवस्था की जाए।

पंचायती राज वित्त-व्यावहारिक निष्कर्ष

पंचायती राज संस्थाओं के कार्य क्षेत्र विस्तार के पश्चात् वित्त की समस्या उतरोत्तर महत्त्वपूर्ण बनती गई है। पंचवर्षीय योजनाओं म ग्रामीण विकास को पंचायती राज के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा रहा है। अशोक मेहता समिति ने विस्तार से पंचायती राज वित्त का अध्ययन करके सुझाव प्रस्तुत किए थे। कुछ राज्य सरकारों द्वारा समिति की सिफारिशों के अनुरूप पंचायती राज के संगठनात्मक स्वरूप को बदला गया, उसे अनेक नए उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं। कर्नाटक, महाराष्ट्र, आन्ध्र तथा गुजरात राज्यों में पंचायती राज को प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया गया है परन्तु पंचायती राज की असफलताओं का एक महत्त्वपूर्ण कारण सभी राज्यों म सीमित वित्तीय संसाधनों का होना है। पंचायती राज वित्त के बारे में अध्ययन दल ने इस सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। पंचायती राज संस्थाओं के कार्यक्षेत्र विस्तार के साथ उस पानी, विद्युत, हाटों के निर्माण, सड़क, कृषि के लिए वैज्ञानिक यत्रों का निर्माण इत्यादि महत्त्वपूर्ण कार्य एवं सेवाएँ प्रदान करनी होती हैं। इन कार्यों के लिए पंचायती राज संस्थाओं को ऋण लेना पड़ता है, राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त ऋण पर्याप्त नहीं है। अतः एक पंचायती राज वित्त निगम के गठन का सुझाव दिया जाता है।

भारत में वित्तीय संसाधन केन्द्रीय सरकार के पास अधिक हैं। राज्य तथा स्थानीय सरकारों को सीमित साधनों तथा केन्द्रीय वित्तीय सहायता पर निर्भर करना पड़ता है। केन्द्र सरकार का राज्य सरकारों के प्रति वित्तीय व्यवहार का सबसे ज्यादा प्रभाव स्थानीय सरकारों पर पड़ता है। पंचायती राज को कराधान का जो क्षेत्र सौंपा गया वह बहुत ही सीमित है, भू–कर या भवन कर जसे करा द्वारा पंचायत राज संस्थाएँ अपनी वित्तीय आंवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती। अतः आवश्यकता केन्द्र–राज्य–स्थानीय वित्तीय सम्बन्धों के पुनः निर्धारण की हैं

पंचायती राज संस्थाओं के अन्तर्गत विभिन्न स्तरों के बीच वित्तीय संसाधनों का समुचित वितरण भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। पचायती राज संस्थाओं के वित्तीय संसाधनों का इन स्तरों पर किस प्रकार विभाजन किया जाए। इस सम्बन्ध में अलग–अलग व्यवस्थाएँ प्रचलन में रही हैं। मध्यप्रदेश, गुजरात तथा केरल ने सहायता अनुदान कोड का निर्माण किया है। इस सन्दर्भ में कार्यों के अनुपात मे साधना के वितरण की आवश्यकता है।

राज्य वित्त आयोग

पंचायती राज वित्त के लिए राज्य वित्त आयोग के गठन के सुझाव पहले भी समय–समय पर आते रहे थे। केरल कराधान जॉच समिति ने केरल के लिए स्थानीय संस्थाओं के लिए वित्त आयोग के गठन की सिफारिश की थी, जिसे भू करों का स्थानीय निकायों में विभाजन

तथा सहायता अनुदान की राशि का निर्धारण करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाए। परन्तु इस दिशा में कारगर कदम 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा ही उठाया गया है। इस संवैधानिक संशोधन में यह प्रावधान किया गया है कि वित्तीय संसाधन बढ़ाने एवं वित्तीय व्यवस्था सुदृढ़ करने के लिए राज्यों में हर पाँचवें वर्ष एक वित्त आयोग नियुक्त किया जाएगा। राज्य ऐसे आयोग गठित करें और 1994–95 की अवधि के लिए अपनी सिफारिशें दें:

1. राज्य और पंचायती राज संस्थाओं तथा नगरपालिकाओं के बीच ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों तथा फीसों की विशुद्ध आय का विवरण जो संविधान के अनुसार उनके बीच विभाजित किया जा सकता है एवं विभिन्न पंचायती राजसंस्थाओं एवं नगरपालिकाओं के कारण उनके अपने–अपने अंशों का आबंटन।
2. ऐसे शुल्क, कर, पथकर और फीस जो पंचायतों और नगरपालिकाओं को सौंपे जा सकें तथा जिन्हें उक्त संस्थाएँ विनियोजित कर सकें।
3. राज्य की संचित निधि से विभिन्न स्तरों की पंचायतों तथा नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान।
4. ऐसे अतिरिक्त उपाय जिनके द्वारा पंचायतों/नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार किया जा सके।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संघीय वित्त आयोग की तुलना में राज्य वित्त आयोग का कार्य अधिक जटिल है। संघीय वित्त आयोग को केवल 25 राज्यों के बीच कतिपय करों के अंश एवं सहायता अनुदानों के वितरण की समस्या को देखना होता है, जबकि राज्य वित्त आयोग पर राज्यों के करों, राजस्वों, शुल्कों, फीसों आदि से प्राप्त आय से आबंटित तथा संचित कोष से धनराशि के हजारों पंचायती राज्य संस्थाओं एवं नगरपालिकाओं में वितरण का कार्य करना होगा। विभिन्न राज्यों में राज्य वित्त आयोग गठित किए जा रहे हैं। उनके कार्य एवं व्यावहारिक उपयोगिता पर अभी कुछ नहीं कहा जा सकता, यह तो आगे आनेवाला समय ही बतलाएगा।

मूल्यांकन

यद्यपि 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायती राज की वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ एवं व्यवस्थित बनाने के लिए राज्य वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, परन्तु कुछ व्यावहारिक कठिनाईयाँ अभी भी दिखाई दे रही हैं। पंचायती राज संस्थाओं को जो वित्तीय अधिकार दिए जा रहे हैं, तथा वित्तीय संसाधन उपलब्ध करवाए जाने के प्रावधान हैं, उन्हें व्यावहारिक रूप देना काफी कठिन कार्य होगा। पंचायती राज संस्थाओं को भवन कर, वाणिज्य फसल कर, पेय–जल कर, तीर्थयात्री कर, यातायात कर तथा चुंगी लगाने का अधिकार दिए गए हैं। भवन कर लगाने एवं वसूल करना अति दुष्कर कार्य है। स्वयं राज्य सरकारें एवं नगरपालिकाएँ भी इस कर को ठीक प्रकार से वसूल नहीं कर पा रही हैं, ऐसी स्थिति में पंचायतों द्वारा भवन कर का निर्धारण एवं वसूली ठीक प्रकार से हो, यह असम्भव लगा है। जहाँ तक वाणिज्य फसलों पर कर लगाने का प्रस्ताव है, जबकि राज्य सरकार आज कृषि आय कर नहीं लगा पाई है तो पंचायतें क्या फसल कर लगाएगी? चुंगी एक ओर राज्य सरकार समाप्त करने जा रही है दूसरी ओर पंचायतों से यह अपेक्षा की जा रही है कि चुंगी लगाकर अपनी वित्तीय संसाधन जुटाएँगी, सम्भव नहीं लगता। इसी प्रकार तीर्थ–यात्री कर या वाहन कर भी लगाना या वसूल करना सम्भव नहीं है। अतः पंचायती राज संस्थाओं को राज्य के वित्तीय अनुदानों पर निर्भर करना होगा। पंचायतों के खर्चे दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। ग्रामीण पंचायतों से रोशनी, सफाई, शुद्ध पानी की अपेक्षा करती है, परन्तु इनकी व्यवस्था करने के लिए पंचायतों के पास पर्याप्त साधन नहीं हैं। ऐसी स्थिति में राज्य वित्त आयोग का यह कार्य काफी चुनौती भरा है कि वह पंचायती राज संस्थाओं को वित्तीय साधनों की आपूर्ति कैसे करवाये। राज्य सरकारें वैसे भी बजटीय घाटे में चल रही हैं, ऐसी स्थिति में वित्तीय संसाधन कैसे जुटाए जाएँगे। पंचायती राज के प्रति राज्य स्तरीय राजनीतिज्ञ भी इतनी इच्छा शक्ति नहीं रखते हैं कि ये सफलतापूर्वक कार्य करे। इन सभी परिस्थितियों में पंचायती राज वित्त के बारे में गम्भीरता से सोचना होगा।

पंचायती राज संस्थाओं का कार्मिक प्रशासनः वर्गीकरण, भर्ती तथा प्रशिक्षण
(Personnel Administration of Panchayati Raj: Classification, Recruitment and Training)

यदि किसी संगठन का कार्यभार कुशल कर्मचारियों के हाथों में नहीं है तो वह न तो अपना उद्देश्य पूरा कर सकता है, और न जनता के सम्मान तथा विश्वास का पात्र बन सकता है। यह एक सुविदित तथ्य है कि किसी भी राष्ट्र की प्रशासनिक व्यवस्था की कुशलता कार्मिक व्यवस्था की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। लोकप्रशासन के क्षेत्र में हरबर्ट साइमन के पदार्पण के पश्चात् संगठन में मानव व्यवहार की भूमिका को लेकर अनेक शोध कार्य किए गए हैं, जिनका निष्कर्ष है कि प्रशासनिक संगठनों के सुचारु रूप से सचालन हेतु निर्णय लेने तथा कार्यान्वयन में योग्य, सक्षम, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं सदाशयी कार्मिकों की उपलब्धि एक मूलभूत आवश्यकता है। किसी भी प्रशासन में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग अथवा दुरुपयोग मूलतः मानवीय कार्मिकों पर निर्भर होता है। ग्रामीण स्वायत्त शासन संस्थाओं अर्थात् पंचायती राज संस्थाओं के कार्य संचालन में भी कार्मिक वर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है तथा इन ग्रामीणों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति पंचायती राज संस्थाओं में नियुक्त कार्मिका द्वारा की जाती है। 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् ग्रामीण स्थानीय शासन के कार्यक्षेत्र में वृद्धि हुई है अतः पंचायती राज संस्थाआ में कुशल एवं पर्याप्त कर्मचारी वृन्द का होना आवश्यक हैं

वर्गीकरण
(Classification)

आज प्रायः सभी देशों की सभी स्तरों की सरकारें अपनी प्रशासनिक संरचनाओं में सेवा वर्गीकरण की व्यवस्था को अपनाती ह। सेवा वर्गीकरण की व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न पदाधिकारियों को उनके कर्त्तव्यों एवं दायित्वों के आधार पर विशेष वर्ग समूहों म समायोजित कर लिया जाता है। यह व्यवस्था प्रशासनिक कार्यकुशलता, कर्त्तव्यों की स्पष्टता और कर्मचारियों के उपयुक्त प्रबन्ध क साथ–साथ उनके वेतन निर्धारण तथा अन्य सेवा की शर्तों के निर्धारण में भी उपयोगी सिद्ध होती हैं

भारत में पंचायती राज संस्थाओं के कार्मिक वर्ग की दो श्रेणियाँ हैं–

1. वे अधिकारी एवं कर्मचारी जो कि राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं में प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाते हैं– इस श्रेणी की सेवाओं की नियुक्ति, पदोन्नति एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में होती है। प्रतिनियुक्ति पर भेजे जानेवाले कर्मचारी/अधिकारी को राज्य सरकार पुनः मूल विभाग में भेजती है तब रिक्त पद को पुनः नियुक्ति या प्रतिनियुक्ति द्वारा राज्य सरकार द्वारा भरा जाता है।
2. वे सेवाएं जिनका पंचायत समिति एवं जिला परिषद् सेवाओं में स्तरीकरण कर दिया गया हो– इस श्रेणी की सेवाओं में नियुक्ति, पदोन्नति एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही पंचायती राज संस्थाओं के अधिकार क्षेत्र में होती है।

ग्राम सेवक
Gram Sevak

आरम्भ से ही इस बात पर बल दिया गया कि ग्राम सेवकों का चयन बहुत सावधानी से करना चाहिए। अभ्यर्थी की प्राथमिक याग्यता उसका ग्रामीण जीवन का अनुभव तथा उसमें रुचि होनी चाहिए। वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो गाँववालों से परिचित हो क्योंकि उसे उनका विश्वास अर्जित करना होता है और उन्हें पुरानी प्रथाओं तथा आचरण को त्यागकर विकास कार्यक्रमों को अपनाने के लिए रजामन्द करना होता है। इन कार्यक्रमों के चयन में एक समानता लाने की दृष्टि से केन्द्रीय समिति ने राज्य सरकारों का यह सुझाव दिए थे कि एक ग्राम सेवक की ये योग्यताएं निर्धारित की जाएँ–

(i) ग्रामीण परिस्थितियों का अन्तरंग ज्ञान तथा ग्रामीणों को मार्गनिर्देश बढ़ाने की योग्यता।

(ii) गाँव में सच्ची रुचि तथा ग्रामीणों के बीच कार्य करने का अनुभव।

(iii) कृषि में किसी कृषि विद्यालय अथवा उच्च विद्यालय में डिप्लोमा अथवा मैट्रिक या उच्च शिक्षा के अन्तिम वर्ष का प्रमाण–पत्र

जिसमें उसने कृषि को ऐच्छिक विषय के रूप में लिया हो।

समिति ने यह भी सुझाव दिया था कि जहाँ तक सम्भव हो सके, स्थानीय प्रतिभाओं को यथासम्भव अवसर प्रदान करने चाहिए ताकि क्षेत्र के लोगों के उत्साह का लाभ उठाया जा सके।

राज्यों ने ग्राम सेवकों की भर्ती के लिए विभिन्न पद्धतियों को अपनाया है। पंजाब में ग्राम सेवक के पद के लिए मैट्रिक परीक्षा के साथ–साथ ग्रामीण पृष्ठभूमि का अनुभव आवश्यक है। कई मामलों में शिक्षा की शर्त में कुछ ढील दे दी जाती है। व्यवहार में परिस्थिति इसके विपरीत है क्योंकि इसके लिए नई भर्तियाँ स्नातकों तथा स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों की होती है। कारण स्पष्टतः व्यापक बेरोजगारी है। ग्राम सेवकों की भर्ती सीधे अधीनस्थ सेवा चयनबोर्ड द्वारा की जाती है।

प्रशिक्षण (Training)– लगभग सभी राज्यों में ग्राम सेवकों को व्यापक प्रशिक्षण दिया जाता है। और इसके लिए व्यापक प्रशिक्षण सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। ग्राम सेवकों के प्रशिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं–

(i) ग्राम स्तर के कार्यकर्त्ताओं में नए भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्रकृति तथा महत्त्व का स्पष्ट तथा चुनौतीपूर्ण बोध उत्पन्न करना।

(ii) उनमें सेवा की भावना तथा दर्शन उत्पन्न करने के लिए ताकि वे सभी कर्मियों की भांति प्रभावी रूप से कार्य कर सकें तथा ग्रामीण लोगों की सहायता कर सकें कि वे अपनी सहायता स्वयं कर सकें, तथा

(iii) उन्हें प्रभावी ग्रामीण कार्यों में निजी–अनुभव प्राप्त करने में निर्देश दे सकें।

पंजाब में, ग्राम सेवकों को दो विभागीय प्रशिक्षा केन्द्रों, ग्रामसेवक प्रशिक्षण केन्द्र, नाभा तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल सामुदायिक कार्यक्रम प्रशिक्षण केन्द्र, बटाला में प्रशिक्षण दिया जाता है।

यहाँ संस्थागत प्रशिक्षण तथा कार्य–प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। उन्हें कृषि–फार्मों पर भी काम करना पड़ता है, ग्रामीण सर्वेक्षण में करना पड़ता है तथा दृश्य श्रवण–सामग्री के प्रयोग को भी सीखना पड़ता है। संस्थागत प्रशिक्षण में व्याख्यानों की श्रृंखलाओं के अतिरिक्त कृषि, पशु–पालन, बागबानी, वनस्पति संरक्षण, स्वास्थ्य तथा सफाई, सहकारिता, सामाजिक शिक्षा, ग्रामीण उद्योग तथा पंचायती राज जैसे विषयों पर परीक्षाएँ देनी होती हैं।

कार्य (Functions)– एक ग्राम सेवक की "नियुक्ति प्रति पाँच से दस गाँवों के पीछे की जानी चाहिए" अधिक अन्न उगाओ समिति में यही सिफारिश की गई थी। हालाँकि वास्तविक व्यवहारानुसार एक ग्राम सेवक को 5–10 से भी ज्यादा गाँवों की देखभाल करनी होती है। इन गाँवों में वह वहाँ के विकास में ग्रामीण लोगों को उनकी संस्थाओं से अवगत कराकर, अच्छे स्तर को अर्जित करने के लिए प्रोत्साहित करके, उन्हें यह बोध करवाकर कि वे अपनी मेहनत तथा सतत प्रयासों से अपनी परिस्थितियों में परिवर्तन ला सकते हैं; उन्हे उनकी जानकारी दिलवाकर, उनके संसाधनों का मूल्यांकन कर तथा सरकार द्वारा उपलब्ध करवाई जानेवाली आपूर्तियों तथा सेवाओं को नियत कार्यक्रमानुसार उन्हें प्रदान करवाकर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्राम सेवक के अग्रलिखित कार्य स्वीकार किए गए हैं–

(1) ग्रामीणों को तकनीकी सहायता की माँग की पहचान करवाने में सहायता करना।

(2) तकनीशियन के आगमन का सर्वोत्कृष्ट लाभ उठाने के लिए तैयार करना तथा अपनी सिफारिशों को लागू करवाने में उनकी सहायता करना।

(3) तकनीशियन को ग्रामीणों की कार्य करने की तत्परता के प्रति पूरी तरह से सूचित रखना जिससे विभागीय लक्ष्यों को प्रतिपादित करने तथा अधिक उत्पादक विस्तार प्रयत्नों को करते रहना।

(4) वैसी समस्याओं की निशानदेही जिनके समाधान के लिए विस्तार, ज्ञान, सतत प्रयत्न अथवा तकनीशियन द्वारा देखभाल करवाना।

(5) ग्रामीणों की कम तकनीकी समस्याओं का समाधान करने में सहायता देना।

(6) ग्रामीणों को तकनीशियन की क्षमता से बड़ी समस्याओं को सुलझाने में सबसे अधिक महत्त्व देने तथा इस तरह से योजनाओं

में, जिन्हें वे महत्त्वपूर्ण समझते हैं, अधिक प्रभावी भागीदारी में उनका मार्ग प्रशस्त करते हैं।

(7) स्वावलम्बन योजनाओं में ग्रामीणों को प्रेरित करना जिससे तकनीकी मार्गदर्शन के अवसर उत्पन्न होते हैं।

ग्राम सेवकों के व्यापक कर्त्तव्यों में कृषि उत्पादन से लेकर सांस्कृतिक विकास तक आ जाते हैं। एक बहु उद्देश्यीय कार्यकर्त्ता होने के नाते ग्राम सेवक ग्राम विकास से विभिन्न पहलुओं से जुड़ा होता है। इस संदर्भ में वह परिष्कृत कृषि तकनीकों को लोकप्रिय करवाकर कृषि उत्पादक में वृद्धि करने को अच्छी खादों कीटनाशकों, परिष्कृत बीजों के उपयोग में लोगों को उन्मुख करने तथा कृषकों की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने में पूरी तरह संलिप्त होता है। पशु–पालन, सूअर पालन, मत्स्य पालन, दुग्धशालाओं तथा इसी तरह के अन्य धंधों में प्राथमिक जानकारी उपलब्ध करवाता है और लोगों को विशेषज्ञों के परामर्श, ऋण तथा उपयुक्त स्रोतों से सामग्री प्राप्त करने में सहायक होता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में वह एक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता के रूप में निरोधक दवाओं, परिवार कल्याण कार्यक्रमों को लोकप्रिय करने तथा महामारियों की रोकथाम आदि करने में कार्य करता है। वह युवासंघों, रडिया संघों, महिला मण्डलों, खेल कूद संघों आदि का आयोजन करने में सहायता करता है। इन सबके अतिरिक्त वह सरकार द्वारा दिए गए कर्त्तव्यों को पूरा करता है।

ग्राम सचिव

Village Secretary

प्रशिक्षण– पंजाब में नाभा तथा बटाला के प्रशिक्षण केन्द्रों में पंचायती राज कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण दिया जाता है। पचायत सचिवों को प्रशिक्षण देने में बटाला प्रशिक्षण केन्द्र का बड़ा हाथ है। प्रशिक्षणार्थी यहाँ पर प्रायः सचिवीय प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं ताकि बही–खाते सम्भाल सकें, अभिलेख रख सकें तथा इसी तरह के अन्य कार्य भी कर सकें। उनके ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण विकास, पंचायती राज आदि विषयों पर व्याख्यान दिए जाते हैं। भौतिक प्रशिक्षण के अतिरिक्त कई अल्पकालिक पाठ्यक्रम भी समय–समय पर चलाए जाते हैं।

कार्य (Functions)– एक पंचायत सचिव को बहुत सी किस्मों के कार्य करने होते हैं। वह ग्राम पंचायतों के अभिलेख तथा खाते सम्भालता है तथा पंचायत सभाओं के कार्यवृत्त रखता है। हरियाणा में ग्राम सचिव के वैधानिक कर्त्तव्य कुछ इस प्रकार हैं–

(1) खाते सम्भालता है, अभिलेख तथा ग्राम सभा तथा सरपंच के निरीक्षण में ग्राम पंचायत की सम्पत्ति की देखभाल करता है तथा ग्राम पंचायत की अधिनियम अथवा किसी भी अन्य विद्यमान कानून के अंतर्गत कर्त्तव्य निभाने का कार्य करने में सहायता करता है।

(2) ग्राम पंचायत के प्रस्तावों को लागू करता है–

पंजाब में पंचायत सचिव के कर्त्तव्य इस प्रकार माने जाते हैं–

(1) ग्राम सभा तथा पंचायत के खाते, अभिलेख, रजिस्टर तथा सम्पत्ति आदि सम्भालना।

(2) सभाओं की सूचनाओं को प्रेषित करना, ग्राम सभा तथा पंचायत द्वारा पारित प्रस्तावों को लागू करना।

(3) ग्राम सभा तथा पंचायत की ओर से सभी प्रकार का धन प्राप्त करना तथा उनका पूरा खाता रखना।

(4) ग्राम पंचायत द्वारा समय–समय पर लगाए गए गृह–कर तथा अन्य करों तथा शुल्कों का सही मूल्यांकन तथा उनकी वसूली का प्रबन्ध करना।

(5) ग्राम पंचायत के बैंक खातों का सरपंच के साथ संयुक्त रूप से प्रचालन तथा सरकार के लेखा परीक्षकों द्वारा खातों की जाँच पड़ताल करवाना।

(6) लेखा परीक्षक की जाँच तथा रिपोर्ट में उठाई गई आपत्तियों के उत्तर देना।

(7) सामान्य अभिलेख कक्ष को ग्राम पंचायतों द्वारा निपटाए गए मामलों की जानकारियाँ भेजना।

(8) ग्राम पंचायत के न्यायिक अथवा अन्यायिक अभिलेखों की प्रतियाँ उपलब्ध करना तथा उनकी दलों/व्यक्तियों द्वारा उपयुक्त

शुल्क लेने के उपरांत जांच पड़ताल करवाना।

(9) ग्राम पंचायतों को न्यायिक कर्त्तव्यों तथा कार्यों को निपटाने में सहायता प्रदान करना।

खण्ड विकास अधिकारी की नियुक्ति, प्रशिक्षण, कार्य तथा शक्तियाँ
(B.D.O—Appointment, Training, Power and Functions)

नियुक्ति (Appointment)– खण्ड विकास अधिकारी राज्य सरकार का कर्मचारी होता है और उसका चयन प्रायः राजस्व अथवा विकास विभागों में से ही किया जाता है। वह राज्य का राजपत्रित अधिकारी होता है। B.D.O. द्वारा खण्ड स्तर पर केन्द्रीय स्थान सम्भाले होने के कारण यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वह अधिकारी सन्तोषजनक योग्यताओं, पर्याप्त योग्यता तथा अनुभव का स्वामी हो। बलवंतराय मेहता दल ने यह सुझाव दिया था कि कम से कम 25% B.D.O. के पद कृषि, सहकारिता तथा पंचायतों विभागों से पदोन्नतियाँ करके प्रदान करने चाहिए। वर्तमान प्रबन्ध के अनुसार ये प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा भरे जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये पद राज्य प्रशासनिक सेवाओं से डैपूटेशन द्वारा या निम्न दर्जों से पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। पंजाब तथा हरियाणा में लगभग 50% पद राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा भरे जाते हैं जबकि शेष पदों के लिए भर्ती निम्न स्तरों से पदोन्नति देकर या फिर लोकसेवा आयोग से बाहर छोटे–मोटे पदों को भर कर की जाती है। आन्ध्र प्रदेश में राजस्व अथवा गैर–राजस्व विभागों में से 40 : 60 के आधार पर भर्ती की जाती है। उत्तरप्रदेश में राज्य लोक सेवा संघ द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर सभी पदों के लिए भर्ती की जाती है। इस पद के लिए कम से कम शैक्षणिक योग्यता स्नातक परीक्षा रखी गई है।

प्रशिक्षण (Training)– खण्ड विकास अधिकारी को एक सामुदायिक विकास कार्यकर्त्ता तथा एक प्रशासक के रूप में कार्य करने के लिए व्यापक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण काल प्रत्येक राज्य में अलग–अलग अवधि का होता है। सामान्यतः प्रशिक्षण कार्यक्रम में एक या दो महीने के अभिविन्यास पाठ्यक्रम के बाद कार्य–प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सम्मिलित होते हैं। अभिविन्यास पाठ्यक्रम बहुत सामान्य तथा प्राथमिक प्रकृति का होता है। इसके प्रशिक्षणार्थियों को दर्शन इतिहास, सामुदायिक विकास कार्यक्रम के संगठन तथा कार्यक्रम विषयों तथा विस्तार की कार्यविधि तथा ग्रामीण परिस्थितियों के विश्लेषण की जानकारी दी जाती है। अनुदेशों की विधि दो प्रकार की होती है– व्याख्यान तथा अभिषद् अध्ययनों द्वारा। प्रशिक्षणार्थियों को दो छोटे–छोटे वर्गों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक को एक विषय पर ब्यौरेवार चर्चा करने तथा चिंतन करने को कहा जाता है ताकि विषय का गहन ज्ञान हो सके जो अन्ततः इस क्षेत्र में काफी सहायक सिद्ध होता है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षाणार्थियों को उनके पद से सम्बद्ध कार्यक्रम की योजना बनाने तथा इसके क्रियान्वयन, प्रशासन, समन्वय, कार्यालय के अभिलेखों का रख–रखाव तथा मूल्यांकन आदि करने में बहुत गहन प्रशिक्षण दिया जाता है।

शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and Functions)– खण्ड विकास अधिकारी पंचायत समिति का सचिव ही होता है और मुख्य कार्यपालिका अधिकारी भी। पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना के बाद उसके कर्त्तव्यों को इस प्रकार कल्पित किया गया है–

(i) खण्ड अभिचरण तथा प्रशासन के उच्च स्तरों में सम्पर्क स्थापित करके खण्ड संगठन की एकता तथा दल–चरित्र को सुरक्षित रखना।

(ii) एक प्रमुख कार्यकर्त्ता समिति की व्यवस्था में एक मूल अधिकारी के रूप में प्रशासकीय कर्त्तव्यों का बड़ा भाग स्वयं निभाता है।

(iii) सामुदायिक विकास कार्यक्रम के उद्देश्य तथा विधि के मुख्य प्रवक्ता के रूप में कार्य करना तथा यह सुनिश्चित करना कि उसका पूरा दल उन्हें समझता है तथा उसका अनुसरण करता है। खण्ड विकास अधिकारी के कार्यों तथा शक्तियों का इस प्रकार विश्लेषण किया जा सकता है–

1. **मुख्य कार्यपालिका अधिकारी (As the Chief Executive Officer) के रूप में**– खण्ड विकास अधिकारी जो उपयुक्त अधिकारी द्वारा अनुमोदित हो उन कार्यक्रमों तथा योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है। उसके कर्त्तव्यों में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू करना तथा पंचायत समिति तथा उसकी स्थायी समिति द्वारा पारित प्रस्तावों को लागू करना भी शामिल होता है। इस दृष्टि से उसे पंचायत समिति को उसके द्वारा पारित प्रस्तावों को निर्देशानुसार लागू करने की प्रगति की समय–समय पर रिर्पोट देना होता है।

2. ***प्रसार अधिकारियों के दल का नेता* (As the Leader of the Team)**– होने की दृष्टि से वह अपने खण्ड में विकास

कार्यक्रमों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने में अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर प्रशासकीय नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण रख सकता है। वह विभिन्न प्रसार अधिकारियों में समन्वय सुनिश्चित करता है तथा अनुशासन बनाए रखता है। वह खण्ड में बहुत से तकनीकी कार्यों में समन्वय स्थापित करता है तथा विकास विभागों के जिला स्तर के अधिकारियों से तथा उन क्षेत्रीय कर्मचारियों से पत्राचार भी करता है। वह विभिन्न प्रसार अधिकारियों तथा कार्यकत्ताओं की सभाएँ बुलाता है और उन्हें एक ही दृष्टिकोण के अनुसार कार्य करना सुनिश्चित करता है।

कार्याल्याध्यक्ष होने के नाते खण्ड विकास अधिकारी कार्यालय प्रबन्ध का कार्य देखता है, कार्यालय में प्राप्त बहुत से पत्रों का उत्तर देता है, उच्च अधिकारियों को असंख्य विवरण तथा रिपोर्टें भेजता है। ऐसा अनुमान है कि वह दिन में प्रायः 30 के लगभग पत्रों का उत्तर भेजता है या प्राप्त करता है और वर्ष में 200–300 तक रिपोर्टें तथा विवरण उच्च अधिकारियों को भेजता है। इस कार्य में एक सांख्यिकी सहायक उसकी सहायता करता है। राजस्थान में अब बिना किसी सहायक के ही जो पहले विभिन्न कार्यक्रमों की प्रगति सम्बन्धी सांख्यिकी जानकारियाँ संकलित किया करता था, खण्ड विकास अधिकारी तथा प्रसार अधिकारी समय–समय पर भेजे जानेवाले प्रगति–विवरण बनाने का बोझ उठाते हैं। उसकी वित्तीय शक्तियों में सम्मिलित होती हैं– समिति के बजट का वित्त एवं कराधान के लिए नियुक्त स्थायी समिति के परामर्श से निर्माण करना तथा उसके पारित हो जाने के उपरांत उसका लागू करना। एक लेखा–लिपिक की सहायता से वह पूरा लेखा–जोखा रखता है। पंजाब तथा हरियाणा अधिनियम के अनुसार "कार्यपालिका अधिकाकरी (खण्ड विकास अधिकारी) को पंचायत समिति के प्रत्येक वित्त–वर्ष का वार्षिक लेखा–जोखा बनाना होता है जिसमें पंचायत समिति के प्रत्येक वित्त–वर्ष का वार्षिक लेखा–जोखा बनाना होता है जिसमें पंचायत समिति की आय को प्राप्तियों के मुख्य शीर्षों के अन्तर्गत दर्शाना होता है, व्यवस्था के खर्चे, हाथ में लिए कार्य, प्रत्येक कार्य पर हुए व्यय तथा यदि हो तो, वर्ष के अन्त में किसी कोष में से बच रहा धन जो खर्च नहीं हुआ हो, का ब्यौरा निर्देशानुसार बनाना होता है और उसका एक सारांश पंचायत समिति के निर्देशानुसार सरकारी गजट में भी छपता है।"

"A statement of the accounts of the Panchayat Samiti for each financial year, showing the income of the Panchayat Samiti under each head of receipt, the charges of establishment, the works undertaken, the sums spent on each work and the balance, if any, of the fund remaining unnspent at the end of the year, shall be prepared by the Executive Office (B.D.O) in such a form as may be prescribed, and an abstract of the same shall be published with official Gazette and in such other manner as the Panchayat Samiti may direct." यह भी खण्ड विकास अधिकारी का ही कर्त्तव्य होता है, कि लेखों की जाँच करवाए तथा लेखापरीक्षक अधिकारियों को पूरा सहयोग दे तथा उनकी आपत्तियों का उपयुक्त उत्तर दे। देय रकमें वसूल करने के लिए खण्ड विकास अधिकारी पर सभी वसूलियां सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी भी होती है। यह खण्ड समिति के लिए धन प्राप्त करने तथा उसको व्यय करने का अधिकारी भी होता है।

3. **पंचायत समिति के सम्बन्ध** (In Relation to Panchayat Samiti) में उसके कार्यों तथा शक्तियों में समिति की विचारण सभाओं में सम्मिलित होना समिति की विशेष सभाओं को बुलाना, कार्य सूची, प्रचार करना, सभाओं के कार्यवृत लिखना तथा पीठासीन अधिकारी को सभाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए परामर्श देना तथा सहायता करना। वह वित्त तथा कराधान की स्थायी समिति के निर्णय प्रस्तुत करता है।

4. **एक बाह्य नियन्त्रक के रूप में** (As an Agent of External Control) खण्ड विकास अधिकारी खण्ड में विद्यमान पंचायतों पर अपना संस्थागत, प्रशासकीय तथा वित्तीय नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण लागू करना है। इस दृष्टि से उसे नियमित निरीक्षणों तथा दौरों पर जाना होता है तथा उसके पास सरपंचों के विरुद्ध अनुशासान्तमक कार्यवाही शुरू करवाने की शक्ति होती है।

इन सबके अतिरिक्त उसे पंचायत समिति के अध्यक्ष/सभापति से तथा उच्च अधिकारियों को किसी भी कानून के उल्लंघन, धोखाधड़ी, घांधली, धन की या पंचायत समिति या पंचायत की किसी और चीज की चोरी की जानकारी भी देनी होती है। उसे यह शक्ति प्राप्त होती है कि वह पंचायती समिति के लिए किसी सम्पत्ति को पंचायत समिति के नाम पर हासिल कर सके अथवा उसे बेच सके या फिर पंचायत समिति के नाम पर कोई बनुबंध कर सके।

अतः यह स्पष्ट है कि खण्ड विकास अधिकारी व्यापक शक्तियाँ रखता है इसलिए इसे "लघु कलेक्टर कहा जा सकता है। खण्ड में उसकी उपस्थिति की कोई उपेक्षा नही कर सकता है। खण्ड प्रशासन यहाँ तक नेता भी उसके मार्ग निर्देश तथा सहयोग पर निर्भर करते हैं। वह पंचायत संस्थाओं तथा उच्च अधिकारियों में एक महत्त्वपूर्ण संपर्क बनता है।

गैर-सरकारी अधिकारियों का प्रशिक्षण (Training of Non-officials): पंचायती राज संस्थाओं के सदस्य जो ग्रामीण जनता के प्रतिनिधियों के रूप में इन संस्थाओं में कार्य करते हैं, प्रायः अधिकांश रूप में अनपढ़, अकुशल तथा अप्रशिक्षित हैं। अप्रशिक्षित होने के कारण अपने उत्तरदायित्व को सही ढंग से नहीं निभा सकते। इसलिए जहाँ सरकारी अधिकारियों को प्रशिक्षण देना आवश्यक है वहाँ पर इन गैर–सरकारी अधिकारियों अथवा जनता के प्रतिनिधियों को प्रशिक्षित करना भी अति आवश्यक है। वे सरकारी अधिकारियों के पूरक हैं और पंचायती राज को सफल तथा असफल बनाने में उनका महत्त्वपूर्ण हाथ है क्योंकि ये दोनों वर्ग ही ग्रामीण क्षेत्रों के विकास तथा जनकल्याण के लिए उत्तरदायी हैं। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था के अन्तर्गत ग्रामीण जनता के इन प्रतिनिधियों पर बहुत भारी जिम्मेदारी हैं। इसलिए इनका प्रशिक्षित तथा अधिक कुशल होना अति आवश्यक है। प्रशिक्षण उनको कर्त्तव्य परायण बनाने में सहायक होता है और इससे उनमें पर्याप्त सुयोग्यता उत्पन्न होती है।

पंचायती राज के गैर–सरकारी अधिकारियों में ग्राम पंचायतों के पंच तथा सरपंच, पंचायत समितियों के सदस्य तथा अध्यक्ष, जिला परिषदों के सदस्य तथा अध्यक्ष आदि सम्मिलित किए जाते हैं। इनके प्रशिक्षण के लिए भी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा पग उठाए गए हैं। राष्ट्रीय सामुदायिक विकास संस्था, हैदराबाद का शिक्षा विंग पंचायत समितियों के अध्यक्षों के लिए समय–समय पर प्रशिक्षण कोर्सों का प्रबन्ध करता है। इस संस्था द्वारा विभिन्न राज्यों में पंचायती राज के गैर–सरकारी अधिकारियों के सम्मेलन भी आयोजित किए जाते हैं। राज्य सरकारों द्वारा भी इनको संस्थागत प्रशिक्षण तथा गैर–संस्थागत प्रशिक्षण देने के लिए भी व्यवस्था की गई है। राजस्थान में उदयपुर के स्थान पर इनके प्रशिक्षण के लिए एक केन्द्र खोला गया है। पंजाब में नाभा और बटाला के स्थान पर, हरियाणा में नीलोखेड़ी और राय के स्थान पर प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन केन्द्रों में पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों को भारतीय संविधान, पंचायती राज प्रणाली का ढाँचा, कार्य और उनके कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के बारे में जानकारी दी जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास और जनकल्याण के लिए किस प्रकार योजनाएँ बनाई जानी चाहिएँ, इस सम्बन्ध में भी उन्हें प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा इनके सम्मेलनों तथा अध्ययन दौरों (Study Tours) की भी व्यवस्था की जाती है। पंजाब सरकार ने चण्डीगढ़ में एक बहुत विशाल पंचायत भवन का निर्माण किया है। इस भवन में पंचायती राज के सरकारी अधिकारियों तथा गैर–सरकारी अधिकारियों के सम्मेलन तथा रिफरैशर कोर्स आयोजित किए जाते हैं। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, द्वारा किसान मेलों तथा कृषि, पशुपालन तथा ग्रामीण लोगों तथा पंचायती राज संस्थाओं के गैर–सरकारी अधिकारियों को विभिन्न प्रकार की जानकारी तथा प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है जिसका प्रयोग वे ग्रामीण क्षेत्रों की प्रगति के लिए कर सकते हैं।

पंचायती राज प्रणाली के अन्तर्गत कार्य कर रहे गैर–सरकारी अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए सरकार द्वारा यत्न तो किए गए हैं, परन्तु फिर भी इस क्षेत्र में सन्तोषजनक सफलता प्राप्त नहीं हुई, इसलिए प्रशिक्षण प्रणाली में सुधार लाने और इसे पूर्ण रूप से रचनात्मक बनाने की आवश्यकता है। पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों को प्रशिक्षण ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। उन्हें ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिसे वे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें और उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि हो। प्रशिक्षण कार्यक्रम का समय ऐसा नहीं होना चाहिए। जबकि प्रशिक्षणार्थियों के लिए निवास तथा भोजन की अच्छी व्यवस्था न की जा सके। उन्हें उनकी मातृ भाषा तथा राष्ट्रभाषा में पुस्तकें पढ़ने को दी जाएँ और प्रशिक्षण का माध्यम ऐसा सरल तथा रुचिकर हो जो प्रशिक्षणार्थियों की समझ में आसानी से आ सके। प्रशिक्षण केन्द्रों में अच्छे पुस्तकालय तथा वाचनालय होने चाहिए। प्रशिक्षण में पूर्ण रूप से सैद्धान्तिक दृष्टिकोण न अपनाकर व्यावहारिक दृष्टिकोण का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

पंजाब सरकार ने राजिन्द्र सिंह की अध्यक्षता में पंचायती राज प्रणाली में सुधार करने के लिए एक अध्ययन समिति (Study Team) नियुक्त की थी। इन समिति ने 1966 में अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों तथा कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए–

1. पंचायती राज सदस्यों और कर्मचारियों का प्रशिक्षण आवश्यक होना चाहिए।
2. प्रत्येक जिले के लिए अपना पंचायती राज केन्द्र होना चाहिए।
3. एकसारता लाने के लिए सरकार द्वारा पूर्ण नियन्त्रण का कार्य जिला परिषद् को दिया जाए।
4. सरकार पंचायती राज संस्थाओं के अधीन कर्मचारियों को शिक्षा देने की ओर पूरा ध्यान दे।

5. प्रशिक्षण में कुछ परिवर्तन भी करने चाहिए, जिससे कि कार्यकुशलता बढ़े।

उपरोक्त सुझाव काफी प्रशंसनीय हैं। यदि सभी सुझावों पर ध्यान दिया जाए तो पंचायती राज की सफलता में अधिक उन्नति होने की संभावना है। यदि पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों तथा अधिकारियों को योग्य प्रशिक्षण प्रदान किया जाए तो वह स्थानीय प्रशासन की कार्य विधि की जटिलता को समझ सकेंगे और अपनी शक्ति का सही प्रयोग करेंगे। इससे वे अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए गाँव स्तर पर प्रभावशाली तथा सक्रिय लोकतन्त्र स्थापित कर सकेंगे।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. पंचायती राज संस्थाओं के वित्त के विकास के बारे में वर्णन कीजिए।
2. पंचायती राज वित्त से सम्बन्धित समितियों के विचारों का विवेचन कीजिए।
3. पंचायती राज संस्थाओं के क्रमिकों के वर्गीकरण के बारे में आप क्या जानते हैं?
4. ग्राम सेवक के कार्यों का वर्णन कीजिए।
5. पंचायती राज संस्थाओं के क्रमिकों की भर्ती तथा प्रशिक्षण का वर्णन कीजिए।
6. B.D.O. के कार्य तथा शक्तियाँ क्या हैं? यह किस हद तक पंचायती राज संस्थाओं को सहयोग करता है?
7. ग्राम सेवक कौन हैं? इसके कार्य क्या हैं?

अध्याय-15

पंचायती राज संस्थाओं पर सरकार का नियन्त्रण (Government Control over Panchayati Raj Institutions)

पंचायती राज की संस्थाओं को बहुत सी शक्तियाँ तथा उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं ताकि यह ग्रामीण भारत का नव–निर्माण कर सकें। पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास, जन कल्याण तथा स्थानीय शासन का प्रबन्ध चलाने की शक्तियां राज्य सरकार द्वारा हस्तांतरित की जाती हैं।

ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण (State Control over Rural Local Bodies)

ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करनेवाले स्थानीय निकायों पर पर्याप्त पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है ताकि आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करके इन्हें कुशल एवं प्रभावशाली व्यवस्था की जा सके। पंचायती राज संस्थाओं के क्षेत्र में नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की व्यवस्था का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व है। कारण यह है कि ग्राम्य स्तर पर स्थानीय जनता को जो शक्ति सौंपी गई है उसका प्रयोग करनेवाले लोग प्रशिक्षित एवं पर्याप्त योग्य नहीं हैं और उनके द्वारा सत्ता के दुरुपयोग की सम्भावनाएँ प्रायः अधिक रहती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्रशासकीय संस्थाओं को शक्ति हस्तान्तरित करने के बाद सरकार जनता के विकास एवं कल्याण के उत्तरदायित्वों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाती। यह राज्य का एक स्वभाविक अधिकार एवं सक्रिय उत्तरदायित्व है। राज्य सरकार को यह देखना पड़ता है कि ये स्थानीय संस्थाएँ एक निश्चित स्तर के अनुसार कार्य करती रहें। पंचायती राज इकाइयाँ प्रशासन के एकीकृत भाग के रूप में विकसित होती हैं तथा ये राष्ट्रीय नीतियों एवं राज्य के संवैधानिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में सहयोग देती हैं। जब इन संस्थाओं पर नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की एक विकसित व्यवस्था लागू की जाती है तो वे स्वयं लाभान्वित होती हैं और नागरिकों को अधिकाधिक लाभ प्राप्त होते हैं।

नियन्त्रण की विधियाँ

ग्रामीण स्थानीय निकायों पर राज्य सरकार द्वारा निम्नानुसार नियन्त्रण स्थापित किया जाता है –

1. राज्य सरकार के विभिन्न अधिकारी वर्ग पंचायती राज संस्थाओं के निरीक्षण का कार्य करते हैं। यदि कोई संस्था ठीक प्रकार से काम नहीं कर रही है तो निरीक्षक का कर्त्तव्य है कि वह उसे उचित प्रकार से कार्य करना सिखाए। निरीक्षक स्थानीय निकायों की सम्पत्ति, निर्माण कार्य, कार्यालय, स्टोर आदि का निरीक्षण करते हैं। इन्हें अधिकार होता है कि रिकार्ड, लेख–पत्रों आदि की जाँच–पड़ताल करें। निरीक्षक अपनी रिपोर्ट निर्धारित प्रपत्र में अपने विभाग को देते हैं। राज्य स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं के निरीक्षण और पर्यवेक्षण के लिए कहीं तो स्थानीय स्वायत्त शासन विभाग है और कहीं पंचायत विभाग या पंचायती राज विभाग है। कहीं–कहीं पर इसे पंचायती राज निदेशालय कहा जाता है। निदेशालय की सहायता के लिए कहीं–कहीं परामर्शदात्री बोर्ड हैं जो पंचायतों की प्रगति की समीक्षा करते हैं। राज्य सरकार को पंचायतों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण नियुक्तियों पर परामर्श देते हैं एवं पंचायतों को उनके महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों की सलाह देते हैं आदि।

   राज्य सरकार पंचायती राज संस्थाओं से रिपोर्ट माँगती हैं। प्रशासकीय विभाग द्वारा अनेक प्रकार के विवरण–पत्र और प्रतिज्ञा–पत्र माँगे जाते हैं और संस्थाओं का कर्त्तव्य है कि वे निर्धारित प्रपत्रों में लेख प्रस्तुत करें। विभाग आवश्यक अध्ययन के बाद त्रुटियों की ओर स्थानीय निकायों का ध्यान आकर्षित करता है और त्रुटियों को ठीक करने के लिए समुचित निर्देश भेजता है। कुछ रिपोर्टें ऐसी हैं जो नियमानुसार समय–समय पर भेजी जाती रहती हैं, किन्तु विभाग

को अधिकार है कि वह आवश्यकतानुसार अन्य रिपोर्ट और सूचना की माँग अवश्य करे।

3. ऐसे मामलों में जहाँ अधिनियम के अधीन राज्य सरकार की स्वीकृति, सहमति या अनुमोदन आवश्यक हों, राज्य सरकार उचित जाँच का आदेश दे सकती है। राज्य सरकार को अधिकार है कि वह आवश्यक समझने पर अन्य किसी मामले में जाँच का आदेश दे। जाँच अधिकारी को यह अधिकार होता है कि वह आवश्यक समझने पर किसी व्यक्ति को अपने सामने पेश होकर बयान देने का आदेश दे। जाँच अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करके निर्णय देना सरकार का काम है।

4. राज्य सरकारों को अधिकार है कि वह पंचायत समितियों के निर्णयों, प्रस्तावों या आज्ञाओं को अनुचित समझने पर रद्द कर दे, लेकिन ऐसा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि राज्य सरकार पंचायत समिति को उत्तर में अपनी सफाई देने का उचित अवसर दे। राज्य सरकार की ओर से अधिकार का प्रयोग जिलाधीश भी कर सकता है, यदि वह आवश्यक समझे कि जनहित और शान्ति की दृष्टि से अविलम्ब कार्यवाही अनिवार्य है। जिलाधीश को अपने कार्य की रिपोर्ट शीघ्र ही राज्य सरकार को भेजनी होती है और राज्य सरकार का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होता है।

5. राज्य सरकार जिला परिषद् व पंचायत समितियों के निर्णय में परिवर्तन कर सकती है। यह पचायत समिति या जिला परिषद् के किसी निर्णय या आदेश सम्बन्धी कागजों को मँगाकर देख सकती है और अपना निर्णय दे सकती है। निर्णय देने से पूर्व जिला परिषद् या पंचायत को अपनी स्थिति स्पष्ट करने के समुचित अवसर दिए जाते हैं।

6. जिलाधीश को यह अधिकार होता है कि वह पंचायत समिति की अचल सम्पत्ति और उसके कार्यो आदि का निरीक्षण करे। पंचायत समिति के नियन्त्रण में चलनेवाली किसी संस्था के कागजात आदि के निरीक्षण करने का उसे अधिकार है।

7. कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें पंचायत या पंचायत समिति राज्य सरकार की स्वीकृति से ही कर सकती है। राज्य सरकार की सहमति के अभाव में किए गए ऐसे कार्यों को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। राज्य सरकार को अधिकार होता है कि वह प्रशासकीय आदेशों द्वारा ऐसे कार्यों के क्रियान्वयन पर रोक लगा दे।

8. महाराष्ट्र, राजस्थान और तमिलनाडु राज्यों में अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को अधिकार है कि यदि पचायती राज संस्थाएँ अपना कार्य न करें तो राज्य सरकारें अपने अधिकारियों से वह कार्य करवा लें। राज्य सरकार कार्य–व्यय इन संस्थाओं से वसूल कर सकती है। प्रायः इस प्रकार का कदम तभी उठाया जाता है जबकि पंचायती राज संस्थाएँ निरन्तर गलती करती रहें और राज्य सरकार के निर्देशों के बावजूद कार्य पूरा न करें अथवा निर्धारित समय के भीतर अपनी गलती न सुधारें।

9. यदि राज्य सरकार समझे कि कोई समिति या परिषद् अपने कार्य ठीक ढंग से नहीं कर रही है तो वह उसे भग करके प्रशासक की नियुक्ति कर सकती है। चेन्नई, राजस्थान और तमिलनाडु राज्यों के अधिनियमों में इस प्रकार की व्यवस्था है। राज्य सरकार को यह अधिकार है कि वह समिति या परिषद् को भंग करने के बजाय उसे तुरन्त नए चुनाव की आज्ञा दे।

10. यदि पंचायती राज संस्थाएँ, नियमों और उपनियमों का समुचित रूप से पालन न करें तो राज्य सरकार को अपील सुनने का अधिकार है। ऐसी अपीलों पर राज्य सरकार का निर्णय अन्तिम होता है। ये निर्णय न्यायालयों की अधिकारी सीमा से परे होते हैं।

11. पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य सरकार का पर्याप्त वित्तीय नियन्त्रण रहता है। इन संस्थाओं की आय का अधिकांश भाग राज्य सरकारें अनुदान के रूप में उपलब्ध कराती हैं, अतः संस्थाओं का कर्त्तव्य है कि वे राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों और निर्धारित प्रक्रियाओं के अनुसार आचरण करें। राजस्थान राज्य को लें तो राज्य सरकार के निरीक्षक प्रतिवर्ष उनके हिसाब–किताब की जाँच करते हैं। पंचायत को अपने वार्षिक बजट पर मुख्य पंचायत अधिकारी की मंजूरी लेनी पड़ती है। इस अधिकारी को बजट में संशोधन करने का अधिकार है। बजट के अलावा काई धनराशि इस अधिकारी की पूर्व अनुमति के बिना व्यय नहीं की जा सकती। राज्य सरकार के नियमों का अनुपालन न करने या राज्य सरकार को संतोष न होने की स्थिति में सरकारी अनुदान रोका जा सकता है। सरकारी अनुदान

के बिना पंचायती राज संस्थाओं का काम चल नहीं सकता अतः वित्तीय नियन्त्रण व्यवहार में काफी प्रभावी होता है। राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं के बजट निर्माण, करारोपण, ऋण सम्बन्धी शक्तियों आदि पर नियन्त्रण रखा जाता है। करों की दर और उनकी वसूली के नियम राज्य सरकार द्वारा बनाए जाते हैं।

12. मुख्य पंचायत अधिकारी पंचायत के किसी आदेश या प्रस्ताव को रोक सकता है। इस अधिकारी की आज्ञा में आवश्यक संशोधन या परिवर्तन राज्य सरकार कर सकती है।

13. राजस्थान, महाराष्ट्र और तमिलनाडु के अधिनियमों में राज्य सरकार को अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे निर्वाचित सदस्यों और पदाधिकारियों को हटा दे जो पंचायती राज व्यवस्था के कानून और नियमों का उल्लंघन करते हों। स्पष्टता के लिए हम राजस्थान राज्य की व्यवस्था को लें। राज्य सरकार दो पंच, सरपंच, पंचायत समिति के सदस्य, न्याय पंचायतों के सदस्यों और अध्यक्ष तथा पंचायत समिति के प्रधान को कतिपय परिस्थितियों में हटाने का अधिकार है। राज्य सरकार ऐसा कदम प्रायः तभी उठाती है जब शक्तियों के दुरुपयोग, अधिकार–सीमा का उल्लंघन, कदाचार आदि के स्पष्ट आरोप हों।

स्पष्ट है कि राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के नियन्त्रण की पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम, 1959 तथा राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1963 में इन संस्थाओं के सम्बन्ध में सुरक्षात्मक उपायों, नियन्त्रण और देख–रेख के प्रावधान हैं। आन्तरिक देख–रेख की प्रणाली में पंचायतों का विकास अधिकारी द्वारा निरीक्षण और योजनाओं के क्रियान्वयन का जिला स्तर के अधिकारियों द्वारा पर्यवेक्षण सम्मिलित है। राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 में विभिन्न ऐसे प्रावधान रखे गए हैं जो राज्य सरकार को पंचायती राज संस्थाओं के कार्य–कलापों पर हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण स्थापित करने की स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं।

नियन्त्रण व्यवस्था का मूल्यांकन

ग्रामीण स्थानीय शासन निकायों पर नियन्त्रण के विभिन्न साधनों की सूची पर्याप्त लम्बी और प्रभावोत्पादक है तथापि व्यवस्था में नियन्त्रण के साधन इन संस्थाओं को वांछित रूप में कार्यकुशल और प्रभावकारी नहीं बना पाए हैं। सादिक अली समिति ने स्थानी शासन निकायों और अन्य क्षेत्रों की नियन्त्रण व्यवस्था में जिन दोषों की ओर संकेत किया है वे मुख्यतः निम्नानुसार हैं–

1. पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण की शक्तियाँ राज्य स्तर पर केन्द्रीकृत कर दी गई हैं, अतः तुरन्त कार्यवाही करना प्रायः असम्भव हो गया है। जब तक कार्यवाही की जाती है उस समय तक स्थिति पूरी तरह बदल जाती है और किए गए कार्य का परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहता।

2. निर्वाचित प्रतिनिधियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की शक्ति राज्य सरकार में निहित है। राज्य सरकार के पास कार्य अधिक होता है। इसके अतिरिक्त वह स्थानीय निकायों से दूर रहती है अतः आवश्यक कदम तुरन्त नहीं उठा पाती।

3. अंकेक्षण का यन्त्र निरन्तर निर्देशन एवं रोकथाम करने के लिए पर्याप्त सिद्ध नहीं हुआ है। अंकेक्षण के ऐतराजों को पूरा करने तथा अनियमितताओं के सम्बन्ध में कार्यवाही करने की गति धीमी रहती है।

4. दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही का अधिकार निर्वाचित अधिकारियों को दिया गया है। कभी–कभी इस अधिकार का दुरुपयोग होता है जिससे अव्यवस्था फैलती है।

5. कई बार राज्य सरकार अपने वैधानिक अधिकारों का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करती है।

6. नियन्त्रण के साधन रचनात्मक और सुधारात्मक नहीं माने जा सकते। कितनी ही बार नियन्त्रण की कठोरता पंचायती राज संस्थाओं के उत्साह का ठण्डा कर देती है।

7. राज्य स्तर पर ऐसी संस्था का अभाव है जो ग्रामीण स्थानीय स्वायत शासन निकायों की समस्याओं पर विचार कर उन्हें उचित परामर्श दे।

सुझाव

उपर्युक्त दोषों को दूर करने के उचित प्रयास किए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो कि एक ओर तो निरन्तरता ला सके और दूसरी ओर शीघ्रतापूर्ण कार्यवाही की व्यवस्था कर सके। अनुशासनात्मक शक्तियाँ एवं नियन्त्रण की शक्तियाँ स्वतन्त्र निकायों द्वारा प्रस्तुत की जानी चाहिए और तुरन्त कार्यवाही के लिए उचित स्तर पर सत्ता हस्तान्तरित की जानी चाहिए। सादिक अली समिति ने एक जिला एवं राज्य पंचायत के संगठन का सुझाव रखा था जो कि पंचायती राज संस्थाओं के नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की संस्थाओं पर विचार कर सके। इस प्रकार का अधिकरण (Tribunal) इन संस्थाओं के कार्य की लगातार देखभाल रखेगा तथा उनके औचित्य एवं वैधानिकताओं की रक्षा करेगा, वह जनता और निर्वाचित प्रतिनिधियों में समान रूप से विश्वास की प्रेरणा देगा। राज्य स्तर पर पंचायती राज के लिए राज्य पंचायत बनायी जानी चाहिए। इसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश स्तर का एक न्यायिक सदस्य होगा, विकास आयुक्त होगा तथा राज्य की पंचायती राज परामर्शदाता परिषद् द्वारा नियुक्त एक सदस्य होगा, जो राज्य अधिकारी नहीं होगा। राज्य सरकार द्वारा वरिष्ठ स्तर के आर० ए० एस० अधिकारी राज्य पंचायत के सचिव का कार्य करने के लिए नियुक्त किया जा सकता है। पंचायत समिति एवं जिला परिषद् के प्रस्तावों की परीक्षा करने के लिए और अभिलेख रखने के लिए क्रमशः जिला एवं राज्य पंचायत के सचिव के नियन्त्रण में एक नियमित स्टाफ होना चाहिए।

पंचायती राज के सम्बन्ध में जो अंकेक्षण संगठन कार्य कर रहे हैं वे अधिक सशक्त नहीं हैं। सादिक अली समिति ने सशक्त बनाने की सिफारिश की थी। समिति ने बताया है कि इन संगठनों को न केवल अंकेक्षण करना चाहिए वरन् लेखा संधारण में सहायता एवं निर्देशन तथा अनियमितताओं को रोकने में सहयोग करना चाहिए। स्थानीय फण्ड अंकेक्षण के परीक्षकों द्वारा जो कार्य किया जाता है वह सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि उनका अधिकार क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। इसे जितना विकेन्द्रित किया जाए उतना ही उपयोगी रहेगा। एक या कुछ जिलों के लिए एक स्थानीय फण्ड अंकेक्षण का सहायक परीक्षक होना चाहिए। इसको जिलाधीश के साथ निकट संपर्क बनाए रखना चाहिए। अंकेक्षण प्रतिवेदन को पूरा करने की शक्तियाँ एवं कार्य विकेन्द्रित कर देने चाहिए। पंचायत एव पचायत समितियों को अंकेक्षण करने की शक्ति जिलाधीश को होनी चाहिए।

सारांशतः ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संस्थाओं पर राज्य सरकार का नियंत्रण तो आवश्यक है, लेकिन यह नियंत्रण उद्देश्यपरक और सार्थकता लिए हुए होना चाहिए।

पंचायती राज की प्रमुख समस्याएँ

पंचायती राज के उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में अनेक सामाजिक और प्रशासनिक समस्याएँ विद्यमान हैं, जिन्हें डॉ० चन्द्र प्रकाश भाम्भरी ने निम्नलिखित रूप में व्यक्ति किया है।

सामाजिक समस्याएँ

1. जनता में साक्षरता का अभाव।
2. राजनीतिक चेना का अभाव।
3. निःस्वार्थ नेतृत्व का अभाव।
4. जनता का आलस्य तथा उसकी क्रियाहीनता।
5. भारत का अलोकतन्त्रीय सामाजिक तथा पारिवारिक ढाँचा।
6. जातीय, धार्मिक तथा साम्प्रदायिक निष्ठाएँ।
7. ग्राम समुदाय में शक्तिशाली वर्गों का कमजोर वर्गों जैसे – अनुसूचित जातियों पर दृढ़ प्रभुत्व इत्यादि।

प्रशासनिक समस्याएँ

1. विकास सम्बन्धी गतिविधियों की आधारभूत इकाई क्या हो – खण्ड या जिला?

2. पंचायती राज के कार्यों में अधिकारियों या कर्मचारी वर्ग का क्या स्थान तथा दायित्व हो?
3. विकास कार्यों में जिला अधिकारियों का क्या स्थान तथा दायित्व हो?
4. पंचायती राज संस्थाओं तथा राज्य सरकारों में क्या सम्बन्ध हो?
5. क्या पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों के मूल्यांकन के लिए कुछ विश्वसनीय कसौटियाँ हो सकती हैं?
6. पंचायती राज के अन्तर्गत विभिन्न सेवाओं के पदाधिकारियों की नियुक्ति किस प्रकार हो सकती है?
7. पंचायती राज सम्बन्धी चुनावों में राजनीतिक दलों का व्यवहार कैसा हो?

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की समस्याएँ इन संस्थाओं के महत्त्व और उपयोगिता के आगे प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। पंचायती राज संस्थाएँ अभी तक विकास–अभिकरण के रूप में इतनी विकसित नहीं हुई हैं जितनी शक्ति एवं सत्ता हथियाने के रूप में। नेतृत्व में सत्ता के लिए अन्धी दौड़ पंचायती राज संस्थाओं के भविष्य के लिए अहितकर है।

सरकारी एवं गैर–सरकारी अधिकारियों का पारस्परिक सम्बन्ध एक महत्त्वपूर्ण समस्या बना हुआ है। जिला–स्तरीय अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे मित्र, दार्शनिक एवं सलाहकार के रूप में ग्रामवासियों के साथ कार्य करेंगे, किन्तु वास्तविकता यह है कि ये अधिकारीगण ग्रामवासियों पर अपनी राय थोपने का प्रयास करते हैं। पंचायती राज व्यवस्था में दलगत राजनीति का प्रवेश, चुनाव पर होनेवाले भारी व्यय और कटुता का वातावरण तथा पंचायतों की धनराशि के दुरुपयोग ने भी इन संस्थाओं की स्थिति को कमजोर किया है। राज्य सरकारों द्वारा इनके चुनाव नियमित समय पर नहीं कराने तथा राजनीतिक कारणों से इन संस्थाओं को भंग करने के निर्णय भी पंचायती राज संस्थाओं को कमजोर बनाते हैं। पंचायती राज संस्थाओं द्वारा घटिया निर्माण कार्य तथा सार्वजनिक धन का दुरुपयोग भी इनकी स्थिति को कमजोर बनाता है।

पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी और व्यावहारिक बनाने के सुझाव

पंचायती राज संस्थाओं को अधिक शक्तिशाली बनाने की दिशा में निम्नलिखित सुझाव कारगर सिद्ध हो सकते हैं –

1. पंचायती राज संस्थाओं को प्राणवान बनाने और प्रोत्साहित करने के लिए उन्हें अधिक कार्यकारी अधिकार दिए जाने चाहिए।
2. वे परियोजनाएँ और कार्य जो जिला परिषद् को सौंपे जा सकते हैं, राज्य स्तर के जिला परिषद् को सौंप दिए जाने चाहिए। पंचायत समितियों से वे परियोजनाएँ वापस ली जानी चाहिए जो जिला परिषद् स्तर पर अधिक कुशलता के साथ कार्यान्वित की जा सकती हैं।
3. जिला परिषद् के मुख्य कार्यपालक अधिकारी को कर्मचारियों में अनुशासन स्थापित करने और उनसे काम लेने के लिए प्रभावपूर्ण शक्तियाँ दी जानी चाहिए। कर्मचारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट उसके ठीक ऊपर के उस अधिकारी द्वारा लिखी जानी चाहिए जिसके अधीन वे कर्मचारी कार्य कर रहे हों। इस रिपोर्ट को मुख्य कार्यपालक अधिकारी को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
4. जिला स्तर के अधिकारियों को समूह भाव से काम करना चाहिए। उनका प्रमुख दायित्व जिला परिषद्, पंचायत समितियों, खण्ड विकास अधिकारियों तथा विस्तार अधिकारियों को सरकारी नीतियों और निर्देशों के अनुसार तकनीकी दृष्टि से सुव्यवस्थित योजनाएँ बनाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने में सहायता देना है।
5. लोगों की आम समस्याओं को हल करने के लिए पंचायतों को अधिकार और साधन प्रदान किए जाएँ। लोगों की अधिक से अधिक समस्याएँ पंचायत के क्षेत्राधिकार में लाई जाएँ ताकि लोग अपनी कठिनाइयों को दूर करा सकें तथा समस्याओं का समाधान पा सकें।

6. नियम और कार्यवाहियाँ सुगम बनाई जाएँ। नियम ऐसे होने चाहिएं जो आम आदमी भली–भाँति समझ सके।

7. राजस्व और पुलिस सेवाओं का सहयोग सुनिश्चित किया जाए।

8. ग्राम सभा को वैधानिक मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। ग्राम सभा की कार्यवाही जनता की भावना के अनुसार चलाई जानी चाहिए। ग्राम जीवन को प्रभावित करनेवाले सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर ग्राम सभा में विचार–विमर्श होने चाहिए। ग्राम सभा के विचारणीय विषयों में पंचायत का बजट, पंचायत के काम का विवरण, योजनाओं की प्रगति, ऋण और अनुदानों का उपयोग, स्कूल और सहकारी समितियों की व्यवस्था, लेखा परीक्षण की रिपोर्ट आदि शामिल की जानी चाहिए।

9. पंचायती राज में संस्थाओं के मार्ग–निर्देशन, देख–रेख और नियन्त्रण का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। राज्य सरकारों, उनके तकनीकी अभिकरणों और जिला अधिकारियों को पंचायती राज संस्थाओं का समुचित एवं उदार ढंग से मार्ग–निर्देशन कर उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। प्रशासनिक अधिकारियों को विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्रीय संस्थाओं के मित्र, दार्शनिक तथा पथ–प्रदर्शक के रूप में आगे आना चाहिए। उनका कार्य सही ढंग से सकारात्मक प्रवृत्ति का होना चाहिए।

10. राजनीतिक दलों की पंचायती राज के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए तथा इन संस्थाओं के चुनाव सर्वसम्मति के आधार पर हों।

11. पंचायती राज संस्थाओं को कर लगाने के कुछ व्यापक अधिकार दिए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओ के पास अपने स्वयं के साधन विकसित किए जाने चाहिए ताकि वे अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि कर अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विवेक के अनुसार कर्त्तव्यों का पालन कर सकें। राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं को दिए जाने वाले अनुदानों में वृद्धि करनी चाहिए। राज्य सरकार को पंचायती राज संस्थाओं को ब्याज रहित भारी ऋण देकर अपने खुद के लाभकारी व्यवसाय चलाने के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए। कर वसूल करनेवाली मशीनरी को प्रभावशाली बनाया जाना चाहिए।

12. प्रशासनिक व्यय में हर स्तर पर मितव्ययिता बरतनी चाहिए।

13. पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन नियत समय पर कराए जाने चाहिए।

14. राज्य सरकारों द्वारा अकारण पंचायती राज संस्थाओं को इनकी समयावधि के पूर्व ही भंग करने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

पंचायती राज की उपलब्धियाँ

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् नीति–निर्देशक सिद्धान्तों की भावना को साकार करने के लिए पंचायती राज को अपनाया गया। देश में इस व्यवस्था का सफल परीक्षण हुआ है। पंचायती राज, अपनी कमियों और दुर्बलताओं के बावजूद ग्रामवासियों की जीवन पद्धति बनता जा रहा है। अशिक्षित जनता, जातिगत और धर्मगत अन्धविश्वास, परम्परागत अलोकतान्त्रिक, सामाजिक और पारिवारिक ढाँचे, परिपक्व राजनीतिक प्रबुद्धता की कमी आदि के कारण पंचायती राज की उपलब्धियों का मूल्यांकन करने अथवा पंचायती राज की आलोचना करने की एक सामान्य प्रवृत्ति विकसित हो गई है अन्यथा इस बात से इंकार करना कठिन है कि पंचायती राज व्यवस्था ने देश के राजनीतिकरण तथा आधुनिकीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। पंचायत चुनाव के और पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकलापों ने ग्राम्य–जीवन में एक नया जागरण पैदा किया है। अब गाँववालों का उस तरह शोषण नहीं किया जा सकता जिस प्रकार पहले महाजन और जमींदार वर्ग करता था। वोट की कीमत समझी जाने लगी है। ग्रामीण जनता की राजनीतिक हिस्सेदारी बढ़ी है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकृत संस्थाएँ स्वशासन की इकाइयों के रूप में विकसित हो रही हैं। ग्राम नेतृत्व पनपता जा रहा है। गाँवों की स्त्रियाँ भी राजनीतिक कार्यकलापों में भाग लेने लगी हैं। राजनीतिक जागृति के साथ सामाजिक चेतना बढ़ी है। छुआछूत, अस्पृश्यता और भेदभाव की दीवारों को पंचायती राज ने जबरदस्त धक्का पहुँचाया है।

अध्याय-16
पंचायती राज में राजनीतिक दलों की भूमिका
(Role of Political Parties in Panchayati Raj)

भारत में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। अतः प्रभुसत्ता को जनता में निहित करके शक्तियों के विकेन्द्रीकरण को महत्त्व दिया गया है ताकि प्रत्येक नागरिक को सरकार के कार्यों में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो सके। हमारे देश में लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है और लोगों में निर्धनता, निरक्षरता, अज्ञानता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। लोकतन्त्र को सफल बनाने के लिए उनमें राजनीतिक जागरूकता लाना अत्यन्त आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के बिना देश का विकास असम्भव है। एक बार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी कहा था कि "सच्चा लोकतन्त्र बीस व्यक्तियों द्वारा केन्द्र में बैठकर नहीं चलाया जा सकता। इसके लिए लोगों को प्रत्येक गाँव में कार्य करना होगा।" उनका यह कहना था, "प्रजातन्त्र की यह माँग है कि प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री अपने–अपने उत्तरदायित्त्व को समझे और यही पंचायती राज का अर्थ है।" अतः यह महात्मा गांधी की प्रेरणा और प्रभाव का ही परिणाम है कि संविधान के अनुच्छेद 40 में पंचायती राज का प्रावधान किया गया। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि "राज्य ग्राम पंचायतों की स्थापना के लिए आवश्यक कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा, जो उन्हें स्वायत्त्व शासन की इकाई के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हो।"

यद्यपि पंचायती राज प्रणाली भारत में अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था का श्रेय बलवन्त राय मेहता अध्ययन दल (Study Team) को जाता है जिसने नवम्बर, 1957 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम को ग्रामीण क्षेत्र के विकास में प्रभावी बनाने के लिए अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। इस प्रतिवेदन में पंचायती राज के लिए त्रिस्तरीय ढाँचे की सिफारिश की गई थी यथा जिला परिषद्, खण्ड अथवा पंचायत समिति तथा ग्राम पंचायत। इन तीनों संस्थाओं का निर्माण पूर्णतया लोकतान्त्रिक ढंग से करने की बात कही गई।

किन्तु भारत में पंचायती राज के प्रारम्भ होते ही बुद्धिजीवियों समाज–सुधारकों, राजनीतिज्ञों सरकारी अधिकारियों आदि में एक विवाद छिड़ पड़ा कि इन नवजात अर्थात् नवनिर्मित पंचायती राज संस्थाओं में राजनीतिक दलों की क्या भूमिका होनी चाहिए। इस विवाद के कारण लगभग सभी विचारक दो गुटों में विभाजित हो गए। प्रथम गुट में उन लोगों को रखा जा सकता है जो राजनीतिक दलों को पंचायती राज संस्थाओं से दूर रखने के पक्ष में है और दूसरे वे लोग हैं जो राजनीतिक दलों को पंचायती राज, संस्थाओं के लिए आवश्यक ने प्रभावित किया है। ये महान् विचारक दलविहिन प्रजातन्त्र के पक्ष में थे तथा प्रजातन्त्र व्यवस्था में जनता की सक्रिय भागीदारी चाहते थे। जयप्रकाश नारायण ने अपनी पुस्तक "A Plea for Reconstitution of Indian Politics" में पाश्चात्य संसदीय प्रजातन्त्र के कई दोषों का उल्लेख किया है जैसे– केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति, खर्चीली, पार्टीबाजी आदि। अतः उन्होंने ग्रामीण पंचायतों के निर्माण के लिए ग्रामीण समुदाय की सहमति पर बल दिया है। उनके विचार में जाति, वर्ग, धर्म और राजनीति लोगों में गुटबन्दी की भावना पैदा करती है। इसके विपरीत सामुदायिक भावना (Community feelings) उन्हें एक सूत्र में बाँधती है। उन्होंने एक अन्य पुस्तक में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि ग्राम पंचायत एक निर्माण सामान्य सहमति से होना चाहिए और ग्राम पंचायतों द्वारा पंचायत समिति का निर्माण किया जाए तथा इसी प्रथा के अनुसार लोकसभा का गठन हो। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पंचायती राज निकायों में राजनीतिक दलों का कोई स्थान नहीं है। किन्तु यह तभी सम्भव है यदि राजनीतिक दल इन संस्थाओं में बिल्कुल हस्तक्षेप न करें तथा इन्हें अपने राजनीतिक भविष्य का आधार बनाने का प्रयास न करें। अतः यह आवश्यक है कि पंचायतों के चुनाव में उम्मीदवारों में परस्पर मुकाबला न हो तथा गाँव के विकास के लिए सब मिलकर सामूहिक प्रयत्न करें।

श्रीमन् नारायण ने अपने एक लेख "Need for Unanimity : Some Aspects of Panchayati Raj" में कहा है कि ग्राम स्तर पर सामुदायिक विकास के लिए परस्पर सहयोग और सहनशीलता की भावना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु यह तभी सम्भव है यदि पंचायत के सभी निर्णय सर्वसम्मति से किए जाएं। ग्राम पंचायतों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उनका समाधान गाँव में पार्टीबाजी पैदा करके नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए जब कभी गाँव में शिक्षा, कृषि, उद्योग, पीने का पानी, गलियों सड़कों आदि से सम्बन्धित निर्णय लिया जाना है तो उसमें राजनीतिक दलों व उनकी नीतियों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

पंचायत एकता एवं सहयोग से विकास कार्यों को अच्छे ढंग से कर सकती है। किन्तु यदि राजनीतिक दलों को पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों में हस्तक्षेप की छूट दे दी गई तो वे वोटों के नाम पर ग्रामीण जनता का गुटों में बाँटने में संकोच नहीं करेंगे। यू॰ एन॰ ढेबर ने अपने एक लेख "Role of Panchayat in New India" में इस बात की पुष्टि करते हुए कहा है कि दलीय आधार पर किए गए चुनाव ग्रामीण जनता के लिए अत्याधिक हानिकारक होंगे।

पंचायती राज निकायों में राजनीतिक दलों द्वारा हस्तक्षेप के विरोधी यह भी सुझाव देते हैं कि पंचायतों में राजनीतिक हस्तक्षप को रोकने के लिए आवश्यक कानून बनाए जाने चाहिए। अथवा राजनीतिक दलों को पंचायतों में हस्तक्षेप न करने का स्वयं ही संकल्प करना चाहिए। यू॰ एन॰ ढोबर ने इस सम्बन्ध में संवैधानिक प्रतिबन्ध का सुझाव दिया था। एम॰ आर॰ मासानी (M.R. Masani) तो पंचायतो के चुनाव के लिए सर्व सेवा संघ की भाँति एक स्वतंत्र एवं गैर–राजनीतिक संगठन के पक्ष में थे। जयप्रकाश नारायण का मत था कि राजनीतिक दल पंचायती राज संस्थाओं को सत्ता के लिए संघर्ष में घसीटने की अपेक्षा पंचायती राज प्रणाली को सफल बनाने के लिए रचनात्मक भूमिका निभा सकते हैं अर्थात् लोगों को अपने ऊपर शासन करने का प्रशिक्षण दे सकते हैं।

दूसरी विचारधारा के समर्थक पाश्चात्य संसदीय प्रजातन्त्र की अवधारणा से प्रभावित हैं तथा पंचायती राजसंस्थाओं में राजनीतिक दलों की भूमिका को उचित मानते हैं। वे उपरोक्त विचारकों के मत को व्यवहॉरिक न मानकर कोरा आदर्शवाद मानते हैं। उनका विचार है कि संसदीय प्रजातन्त्र के लिए संगठित राजनीतिक दल तथा चुनाव अनिवार्य हैं। डा॰ एम॰ एन॰ लक्ष्मीनारायण (M.N. Laxmi Narayan) का कहना है कि जब सत्ता को विकेन्द्रित करके स्थानीय शासन की संवैधानिक इकाइयों को सौंप दी जाती है तो वहां राजनीतिक शून्यता (Political Vaccum) की कल्पना करना असम्भव है। बल्कि वायु की भाँति हमारे सभी प्रयास उस शून्यता की पूर्ति के लिए तुरन्त इन संस्थाओं में प्रवेश कर जाएँगे। मायरन वीनर (Myron Weiner) के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं का अनेक विकास सम्बन्धी कार्य करने होते हैं। जिसके लिए उन्हें कुछ शक्तियाँ व अधिकार दिए जाते हैं। जब तक इन संस्थाओं के पास नाममात्र की शक्ति होगी, इनमें राजनीतिक दलों की रुचि भी कम होगी। किन्तु जैसे ही सत्ता की मात्रा बढ़ेगी, राजनीतिक दलो का इन में प्रवेश कर जाना स्वाभाविक होगा। उनका कहना है कि सत्ता और राजनीति साथ–साथ चलते हैं। यह कहना गलत होगा कि राजनीतिक दल ही सदैव ग्रामीणों का शोषण करते हैं। कई बार ग्रामीण नेता भी राजनीतिक दलों का शोषण करते हैं। वास्तव में पंचायती राज राजनीतिक पेशे (Political Career) तथा नेतृत्व तैयार करने का प्रशिक्षण स्थल है। किन्तु यह तभी सम्भव होगा जब पंचायती राज के नेताओं को राजनीतिक दलों के साथ सक्रिय रूप से जोड़ा जाएगा। यह सर्वविदित है कि राज्य तथा राष्ट्र स्तर के कई नेताओं ने अपना राजनीतिक वृत्तिक (Political Career) पंचायती राज संस्थाओं से ही आरम्भ किया था।

किशोर चन्द्र गांधी ने अपने एक लेख "Local Self-Government and Political Parties" में उल्लेख किया है कि अमेरिका तथा इग्लेंड आदि देशों में किए गए अध्ययनों से यह पता चलता है कि स्थानीय ग्रामीण शासन की संस्थाओं के सदस्यों के चुनाव मे राजनीतिक दलों ने सक्रिय भूमिका निभायी है। अमेरिका में तो दलीय संगठन ग्रामीण स्तर पर कार्य करता है।

भारतीय संविधान के जनक डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर पंचायती राज को संविधान में शामिल करने के पक्ष में नहीं थे। वे पचायती राज को क्षेत्रीयवाद, दल–दल, अज्ञानता आदि का घर, संकीर्णता और साम्प्रदायिकता का प्रतीक मानते थे। वे ग्राम के स्थान पर व्यक्ति को ही प्रशासन की इकाई बनाना चाहते थे। दिलीस एम॰ हिल (Dilys M. Hill) का कहना है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि प्राचीनकाल में ग्रामीण पंचायतें राजनीति से मुक्त थी। उस समय राजनीति की प्रकृति भिन्न हो सकती है। के॰ सशाधरी (K. Seshardri) का विचार है कि पंचायती राज संस्थाओं से राजनीतिक दलों को अलग रखकर यह आशा नहीं की जा सकती कि ग्रामीण जनता का व्यवहॉर भी गैर राजनीतिक हो जाएगा। इसलिए संसदीय शासन प्रणाली में लोकतान्त्रिक सरकार स्थापित करने के लिए राजनीतिक दलों का होना अत्यन्त आवश्यक है। यह कहना व्यर्थ है कि राजनीतिक दल इन संस्थाओं में तटस्थ रहकर केवल प्रशिक्षण देने तक ही अपने आपको सीमित रखेंगे क्योंकि राजनीतिक दलों का उद्देश्य सदैव राजनीतिक रहता है। जैसा कि मोरिस जोन (W.H. Morris Jones) ने कहा है कि जहॉ भी तनिक सत्ता या शक्ति होगी, वहाँ राजनीति अवश्य होगी।

यह मानना कि ग्रामीण संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने आपको किसी राजनीतिक विचारधारा के साथ नहीं जोड़गे या राजनीतिक दल उन्हें प्रभाव में लाने का प्रयास नहीं करेंगे, निराधार है। जब कभी राज्य विधानमण्डल के लिए अथवा लोकसभा के लिए चुनाव होते हैं तो ग्रामीण संस्थाओं के प्रतिनिधि मूकदर्शक नहीं रहते। न ही राजनीतिक दल उनके प्रभाव का पूरा–पूरा लाभ उठाने में किसी प्रकार का संकोच करते हैं। हरियाणा में डॉ॰ हरभगवान बठला द्वारा 1992 में किए गए एक अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि अधिकांश पंच, सरपंच, समिति–सदस्य, किसी न किसी राजनीतिक दल के साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष जुडे हुए हैं तथा चुनाव मे

किसी न किसी दल के उम्मीदवार को सहयोग अथवा सहायता प्रदान करते हैं। चुनाव के पश्चात् उनका झुकाव सत्ताधारी दल की ओर हो जाता है ताकि वे अपने पद पर बने रह सकें। और अपने क्षेत्र के विकास के लिए अधिक अनुदान प्राप्त कर सकें। इसी प्रकार ग्रामीण नौकरशाही का यह कहना है कि राजनीतिक दल हस्तक्षेप के कारण वे अपने कर्त्तव्यों को भली प्रकार से नहीं कर सकते। राजनीतिक दबाव के कारण उन्हें कई गलत कार्य करने पड़ते हैं अथवा निरन्तर स्थानान्तरण का शिकार होना पड़ता है।

बलवन्त राय मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह कहा था कि इन ग्रामीण संस्थाओं के चुनाव एवं कार्य प्रणाली में राजनीतिक दलों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यद्यपि सिद्धान्त में सभी राजनीतिक दलों ने यह स्वीकार किया कि वे पंचायती राज संस्थाओं में अपने दल के उम्मीदवार को दल के चुनाव चिन्ह पर चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं देंगे किन्तु व्यवहाँर में से अपने इस संकल्प की कसौटी पर खरे नहीं उतर सके। यही कारण है कि सन् 1978 में अशोक मेहता कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया कि वास्तविकता को समझते हुए राजनीतिक दलों को पंचायती राज संस्थाओं में भाग लेने दिया जाना चाहिए। वैसे भी जब पंचायतों के चुनाव दलीय आधार पर होंगे तो पंचायती राज की सफलता या असफलता का उत्तरदायित्व निर्धारित करना आसान हो जाएगा। अशोक मेहता कमेटी का यह कथन था कि राजनीतिक दल स्थानीय और सामयिक मामलों में न केवल सर्वसाधारण जनता द्वारा भाग लेने के माध्यम हैं अपितु पंचायती राज संस्थाओं से खुले रूप से सम्बद्ध होने पर ये अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी भी हो जाते हैं। यह धारणा निरर्थक है कि राजनीतिक दल बुराइयों का स्त्रोत है जिनसे भारत में एक ग्रामीण शासन को बचाया जाना चाहिए। राजनीतिक दल लोकतन्त्र की प्रक्रिया के अभिन्न अंग है। अतः पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव राजनीतिक दलों के आधार पर होने चाहिए।

वर्तमान काल से ग्रामीण क्षेत्र में लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित पंचायती राज संस्थाओं पर इनका प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और व्यवहाँरिक रूप से प्रायः यह देखा गया है कि ये संस्थाएं राजनीतिक दलों के प्रभावाधीन काम करती हैं। राजनीतिक दल इस स्तर पर हस्तक्षेप के समर्थक कई लाभ बताते हैं जिनमें से मुख्य लाभ निम्न प्रकार के हैं–

1. **राजनीतिक शिक्षा प्रदान करना**– भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में रहती है और इसका बहुत बड़ा भाग अनपढ़ है। राजनीतिक दल देश की इस विशाल अशिक्षित तथा पिछड़ी हुई ग्रामीण जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं जिससे उनमें राजनीतिक चेतना उत्पन्न होती है। वे लोगों को अपने राजनीतिक अधिकारों का सही ढंग से प्रयोग करने के लिए प्रेरणा देते हैं और ग्रामीण संस्थाओं के शासन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। बहुत से अध्ययनों से यह पता चलता है कि अनेक राजनीतिक पद जिन के लिए पहले सदस्यों को निर्विरोध ही चुन लिया जाता था, अब उनके लिए बड़े उत्साह से चुनाव लड़ा जाता है। रजनी कोठारी (Rajni Kothari) के अनुसार, "लोगों का वह वर्ग जो अब तक राजनीतिक शक्ति को जन सामान्य की पहुँच से परे रखता रहा है और जो राजनीति को केवल शक्तिशाली तथा शिक्षित वर्ग का ही अधिकारिक मामला समझता रहा है, वह अब नई विचारधारा के सम्पर्क में आया है और उनसे जन शक्ति को पहचाना है तथा अपने सहयोग तथा नेतृत्व के माध्यम से स्वयं को संगठित करना आरम्भ कर दिया है।"

2. **राजनीतिक पुनर्गठन**– कई सदियों से हमारा ग्रामीण समाज जाति–पाति, साम्प्रदायिकता तथा धर्म के आधार पर विभिन्न समूह में बँटा चला आ रहा है। ये समूह ग्रामीण समाज की प्रगति के मार्ग में बाधा बने हुए हैं। राजनीतिक दल इन समूहों को तोड़कर इन्हें राजनीतिक समूहों में पुनर्गठन करते हैं। इनमें धर्म, जाति–पाति आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होता। अतः राजनीतिक दल ग्रामीण समुदाय को राजनीतिक धाराओं में लाकर पूर्व ग्रामीण विकास के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार राजनीतिक दल जन साधारण के राजनीतिकरण (Politicising) की प्रक्रिया को तेज करते हैं तथा उन्हें राष्ट्र की राजनीतिक प्रक्रिया में सम्मिलित करते हैं।

3. **ग्रामीण विकास में सहायक**– राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण राष्ट्रीय विकास पर आधारित होता है। अतः वे ग्रामीण लोगों को अपने क्षेत्रों का विकास करने के लिए अच्छी परामर्श तथा अच्छा निर्देशन दे सकते हैं। वे ग्रामीण विवादों तथा समस्याओं को सुलझाने के लिए उनका पथप्रदर्शन करते हैं और यदि राज्य अथवा केन्द्रीय स्तरों पर सत्ता उनके हाथों में हो तो ये ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए हर सम्भव सहायता भी करते हैं। ऐसी अवस्था में पंचायती राज संस्थाओं को वित्तीय अनुदानों, तकनीकी सहायता और ऋण आदि की सुविधाएँ अधिक मात्रा में उपलब्ध हो जाती हैं। विरोधी दल भी सत्ताधारी दल की त्रुटियों को प्रकाश में लाते हैं तथा उस पर अपना नियन्त्रण रखते हैं। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय तथा प्रादेशिक राजनीतिक दलों द्वारा स्थानीय संस्थाओं में रुचि लेने से स्थानीय संस्थाओं का महत्त्व और स्तर भी बढ़ जाता है।

4. **राजनीतिक अनुभव प्रदान करना**– राजनीतिक दल राज्य तथा केन्द्रीय स्तरों पर अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं को प्रारम्भिक राजनीतिक इकाइयों के रूप में प्रयोग करते हैं। पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्य अपने पदों पर कार्य करते–करते नेतृत्व का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं जिससे उन्हें राज्य विधानमण्डल अथवा लोकसभा का सदस्य बनना एवं अधिक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाने में आसानी हो जाती है। इन संस्थाओं के सदस्य अपने–अपने ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं एवं आवश्यकताओं की जानकारी अपने दल के वरिष्ठ नेताओं को देते हैं। वे सभी प्रकार के चुनावों में अपने दल के उम्मीदवारों को सफल बनाने का हर सम्भव प्रयत्न करते हैं तथा अपने आपकों पंचायती राज संस्थाओं में चुने जाने के लिए अपने दल का सक्रिय सहयोग लेते हैं। इस प्रकार पंचायती राज संस्थाएँ राजनीतिक दलों की बुनियादी राजनीतिक इकाइयाँ बन जाती हैं।

5. **ग्रामीण संस्थाओं के निर्माण तथा शासन संचालन में सहायक**– पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों एवं कार्य प्रणाली पर राजनीतिक दलों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। कई बार तो इन संस्थाओं के चुनाव के लिए उम्मीदवारों का चयन तथा उन्हें सफल बनाने के लिए राजनीतिक दल हर सम्भव प्रयास करते हैं। वे उन्हें धन उपलब्ध करवाते हैं, उनके लिए चुनाव अभियान चलाते हैं, चुनाव प्रचार करते हैं, अन्य उम्मीदवारों के साथ जोड़–तोड़ करते हैं। चुनाव जीत जाने क पश्चात् उन्हे इन संस्थाओं के पदाधिकारी अर्थात् अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष बनाने की चेष्टा करते हैं। राजनीतिक दलों का यह भी प्रयास रहता है कि ये संस्थाएँ उनके दल की नीतियों एवं कार्यक्रमों को अपनाएँ एवं लागू करें।

6. **जनमत का निर्माण**– लोकतन्त्र में जनमत का अत्याधिक महत्त्व होता है। इसलिए सभी राजनीतिक दल लोकमत को सदैव अपने पक्ष में तैयार करने में लगे रहते हैं। वे पंचायती राज संस्थाओं में माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में लोकमत का निर्माण करते हैं वे इस बात का पता लगाते हैं कि उनकी कौन सी नीति जनता में प्रिय है और कौन सी अप्रिय। राजनीतिक दल पंचायती राज संस्थाओं में अपने प्रतिनिधियों को केवल लोकप्रिय नीतियों को लागू करने के आदेश देते हैं ताकि उन नीतियों का सफल बनाने में जनता का सहयोग प्राप्त किया जा सके। अतः वे जानते हैं कि यदि स्थानीय समस्याओं का समाधान कुशलतापूर्वक न किया गया तो बुराई मिलेगी तथा उनकी आलोचना होगी। अतः अपने दल की बदनामी से बचने के लिए वे बडी सावधानी से कार्य करते हैं और सार्वजनिक हित को हानि पहुँचाने में संकोच करते हैं। विरोधी दल प्रहरी की भूमिका निभाते हैं और जनता की कठिनाइयों को सरकार तक पहुँचाते हैं।

7. **सरकार तथा पंचायती राज में कड़ी बनना**– पंचायती राज संस्थाओं में अनेक कर्मचारी व अधिकारी कार्य करते हैं। वे अधिकारी सत्ताधारी दल को प्रसन्न करने के लिए उनकी नीतियों व कार्यक्रमों को लागू करते हैं। यदि स्थानीय संस्थाओं में किसी अन्य दल का शासन हो तो वे अपना पूर्ण सहयोग नहीं देते। अतः राजनीतिक दल स्थानीय संस्थाओं एवं राज्य सरकार के बीच कड़ी की भूमिका निभाते हैं।

किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि राजनीतिक दल पंचायती राज संस्थाओं में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे नीतियों को लाकप्रिय बनाते हैं, ग्रामीण जनता में राजनीतिक जागृति लाते हैं, उसे शिक्षित करते हैं, जाति–पाति समाप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं, जनमत का निर्माण करते हैं, जनता को ग्रामीण विकास कार्यों में भागीदार बनाते हैं, ग्रामीणों को नेतृत्व का प्रशिक्षण देते हैं, सरकारी कर्मचारियों व अधिकारियों पर नियन्त्रण रखते हैं, स्थानीय संस्थाओं को मजबूत व स्थिर बनाते हैं। यद्यपि राजनीतिक दल उपरोक्त कुछ रचनात्मक भूमिका निभाते हैं, किन्तु इनकी नकारात्मक भूमिका भी कुछ कम नहीं है। यही कारण है कि राजनीतिक दलो की पंचायती राज संस्थाओं में हस्तक्षेप की कड़ी आलोचना की जाती है। साम्यवादी नेता ई॰ एम॰ एस॰ नम्बूद्रीपाद (E. M. S. Namboodri Pad) का कहना है कि "पंचायतों, म्यूनिसिपल परिषदों तथा स्थानीय शासन के अन्य संगठनों के चुनाव में दलीय राजनीति का आयात (Import) नहीं करना चाहिए और न ही राजनीतिक दलों को इनके भीतर राजनीतिक दलों की भाँति कार्य करना चाहिए।'

वास्तव में पंचायती राज संस्थाएँ दलीय संघर्ष का अखाड़ा बन चुकी है। सभी राजनीतिक दल उच्च स्तर पर सत्ता प्राप्त करन क लिए इन संस्थाओं को अपना आधार बनाते हैं। वे ग्रामीण जनता के चुनाव के माध्यम से जाति, धर्म तथा बिरादरी से विभाजित करत हैं। यही कारण है कि आज शायद ही कोई ऐसी स्थानीय संस्था होगी जो पार्टी बाजी का शिकार न हो। वे ग्रामीण जनता का राजनीति आधार पर संगठित करने की अपेक्षा उन्हें बाँटते हैं तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। ग्रामीण जनता भोली–भाली होती है। उसे गुमराह करना आसान है। राजनीतिक इस तथ्य को भली–भाँति जानते हैं पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों में राजनीतिक

दलों के सक्रिय होने से बहुत से ईमानदार तथा सेवा भावनावाले व्यक्ति इन संस्थाओं के चुनावों में भाग नहीं लेते। परिणामस्वरूप ये संस्थाएँ अनेक प्रतिभाशाली व्यक्तियों की सेवाओं से वंचित रह जाती हैं।

यह भी सर्वविदित है कि राजनीतिक दलों का उद्देश्य राज्य व राष्ट्र स्तर पर सत्ता प्राप्त करना होता है। उन्हें न तो स्थानीय समस्याओं की पूर्ण जानकारी होती है और न ही वे उन समस्याओं के समाधान में कोई रुचि लेते हैं। उनके पास स्थानीय समस्याओं को हल करने के लिए समय का भी अभाव होता है। अतः राजनीतिक दलों का ग्रामीण जनता से निकट सम्पर्क नहीं होता। आज पंचायती राज संस्थाओं का राजनीतिक दलों के मार्गदर्शन से अधिक धन की आवश्यकता है। राजनीतिक दल धन उपलब्ध कराने के वायदे कर सकते हैं, नारे दे सकते हैं किन्तु आवश्यक धन नहीं प्रदान कर सकते। व्यवहाँर में यह देखा गया है कि राजनीतिक दल इन संस्थाओं के भ्रष्ट, बेईमान, अकुशल व अयोग्य कर्मचारियों, अधिकारियों व पदाधिकारियों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। जिससे ये संस्थाएँ अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकती। कई बार स्थानीय मामले को राजनीतिक दल अपनी प्रतिष्ठा का विषय बना लेते हैं और उसके लिए स्थानीय लोगों के हितों की अवहेलना करते हैं जिससे पंचायती राज संस्थाओं पर से सामान्य जनता का विश्वास उठ जाता है और वह प्रत्येक कार्यक्रम व नीति को शक की नजर से देखती है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. पंचायती राज में राजनैतिक दलों का क्या महत्त्व है?
2. राजनैतिक दल पंचायती राज संस्थाओं को क्या लाभ पहुँचाते हैं?

अध्याय-17

73वां संशोधन - 73वें संशोधन अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ

(73rd Amendment – Main Features of 73rd Amendment Act)

संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 के पारित होने से देश के संघीय लोकतांत्रिक ढ़ांचे में एक नए युग का सूत्रपात हुआ और पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ है। इस अधिनियम के लागू होने के परिणामस्वरूप जम्मू–कश्मीर, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और अरुणाचल प्रदेश को छोड़कर लगभग सभी राज्यों/संघ शासित प्रदेशों ने अपने कानून बना लिए हैं। असम, अरुणाचल बिहार, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, पांडिचेरी और गोवा (जिला परिषद्) को छोड़कर अन्य राज्यों/संघ शासित प्रदेशों के चुनाव सम्पन्न करवा लिए गए। इस प्रकार यह एक अत्यधिक व्यापक प्रतिनिधि । आधार है जो विश्व के किसी भी अन्य विकसित अथवा विकासशील देश में विद्यमान नहीं है। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ हैं– (1) 20 लाख से अधिक जनसंख्यावाले सभी राज्यों के लिए पंचायती राज की त्रि–स्तरीय प्रणाली, (2) प्रत्येक 5 वर्ष में पंचायतों के नियमित चुनाव (3) अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण और महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण (4) पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय शक्तियों के सम्बन्ध में सिफारिशें करने के लिए वित्त आयोग की स्थापना और (5) पूरे जिले के लिए विकास योजना मसौदा बनाने के लिए जिला आयोजना समिति का गठन। संविधान क अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान किए गए हैं जो स्वःशासन की संस्था के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हैं और इनमें (क) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करने तथा (ख) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए ऐसी योजनाओं का कार्यान्वयन के लिए समुचित स्तर पर पंचायतों को शक्तियां और उत्तरदायित्व सौंपने का प्रावधान है।

73वें संशोधन द्वारा स्थापित भारत के संविधान का अनुच्छेद 243 छः पंचायतों की शक्तियों, प्राधिकारों और उत्तरदायित्व से संबंधित हैं जो इस प्रकार है–

"संविधान के उपबंधों के अधीन राज्य का विधानमण्डल कानून द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान कर सकता है जो स्वशासन की संस्था के रूप में कार्य करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए आवश्यक होंगे और ऐसे कानून में (क) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करने तथा (ख) 11वीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों सहित आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए ऐसी योजनाओं का कार्यान्वयन जो उन्हें सौंपी जाएं।"

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 243 छः में पंचायतों की स्व–शासन की संस्थाओं के रूप में कल्पना की गई है, लेकिन शक्तियां और कार्य सौंपने का कार्य विधानमंडल की इच्छा के अधीन रखा गया है।

संविधान के अनुच्छेद 243 छः के आधार पर राज्य विधानमंडलों को निम्नलिखित विषयों पर कानून बनाने की शक्तियां दी गई हैं–

1. कुछ करों, महसूलों, मार्ग करों, शुल्क को लगाने, वसूल करने और उपयोग करने के लिए पंचायतों को प्राधिकृत करना।
2. राज्य सरकारों द्वारा लगाए और वसूल किए गए कुछ करों, शुल्कों तथा मार्ग करों को पंचायतों को सौंपना।
3. राज्य की संचित निधि से पंचायतों को सहायता अनुदान देने का प्रावधान करना।
4. पंचायतों द्वारा अथवा पंचायतों की ओर से प्राप्त की गई राशि जमा करने और उसमें से कुछ राशि निकालने क लिए निधियाँ गठित करने का प्रावधान करना।

संविधान के अनुच्छेद 243 झ में पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और अनुच्छेद 243 ज में उल्लिखित प्रमुख मामलों को विनियमित करने के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में राज्यपाल से सिफारिशें करने के लिए राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, असम, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के राज्य वित्त आयोगों ने सम्बन्धित राज्य सरकारों को अपनी–अपनी रिपोर्ट भेज दी हैं। असम, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल ने राज्य वित्त आयोगों की अधिकतर सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दादर और नगर हवेली तथा दमन और द्वीप को राज्य वित्त आयोगों की अंतरिम रिपोर्टें मिल गई हैं जिन पर राज्यों/संघ शासित प्रदेशों को अभी कार्रवाई करनी है। उड़ीसा, गोवा और सिक्किम के वित्त आयोगों को अभी अपनी रिपोर्ट राज्य सरकारों को भेजनी है।

संविधान में केन्द्रीय वित्त आयोग से राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों के आधार पर राज्य मे पंचायतों के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए राज्य की संचित निधि में वृद्धि करने के लिए आवश्यक उपायों की सिफारिश करने की अपेक्षा की गई है। दसवें वित्त आयोग ने राज्य वित्त आयोगों की रिपोर्टों के न होने के कारण 1996-2000 की अवधि के लिए पंचायतों राज संस्थाओं को 4381 करोड़ रुपये का तदर्थ प्रावधान किया था। पंचायतों को तीनों स्तरों में वितरित करने के लिए 1996-97 के दौरान सभी राज्यों को 1095 करोड़ रुपये का अनुदान जारी किया गया था। 1997-98 के दौरान जारी की गई राशियों के लिए राज्य सरकारों से उपयोग रिपोर्टें प्रस्तुत करने की अपेक्षा है। केरल, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, तमिलनाडु और त्रिपुरा राज्य ही ऐसे रहे जिन्होंने 1997-98 के दौरान चारों किस्तें प्राप्त की। आन्ध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश ने 4 में से 3 किस्तें प्राप्त कीं। शेष राज्यों को केवल एक या दो किस्तें ही मिलीं। चुनी हुई पंचायती राज संस्थाओं के न होने के कारण 1997-98 के दौरान बिहार राज्य के लिए कोई अनुदान जारी नहीं किया गया।

ग्यारहवां वित्त आयोग जो पहली अप्रैल 2000 से पांच वर्षों के लिए संसाधनों के हस्तांतरण के सम्बन्ध में सिफारिश करेगा, पंचायतों के लिए सिफारिशें करने के लिए अनिवार्य विषय पर सिफारिश करेगा। राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को राज्यों द्वारा शीघ्र स्वीकार करने की आवश्यकता है क्योंकि ग्यारहवें वित्त आयोग से राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों पर विचार करने के बाद पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में उचित वित्तीय व्यवस्था की सिफारिश करने की आशा है। इस मंत्रालय द्वारा ग्यारहवे आयोग की पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय आवश्यकताओं के सम्बन्ध में विस्तृत दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है।

मंत्रालय द्वारा की गई पहल

पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों की समीक्षा करने के लिए माननीय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में 2 अगस्त, 1997 को पंचायती राज पर मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन नई दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित किया गया था जिसमें पंचायती राज संस्थाओं को शक्तियाँ/कार्य और जिम्मेदारियाँ सौंपने, जिला आयोजना समितियों का गठन करने, राज्य वित्त आयोगों की रिपोर्टों के कार्यान्वयन, जिला परिषदों के साथ जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों को जोड़ने, पंचायती राज के चुने हुए प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देने जैसे महत्त्वपूर्ण मामलों पर विस्तृत चर्चा की गई। सम्मेलन में सम्बन्धित 8 राज्यों से पंचायत उपबन्ध (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 के सम्बन्ध में 23 दिसम्बर, 1997 से पहले अपेक्षित राज्य कानून बनाने का भी आग्रह किया गया। विस्तृत चर्चा के आधार पर सम्मेलन में दो समितियों (क) 23 दिसम्बर, 1997 में पूर्व केन्द्रीय अधिनियम, 1996 के अनुरूप राज्यों के कानून बनाने के लिए सिफारिश देने के लिए ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार राज्य मंत्री की अध्यक्षता में संविधान की अनुसूची 5 के अंतर्गत शामिल किए गए 8 राज्यों के लिए ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार राज्य मंत्री की अध्यक्षता में संविधान की अनुसूची–5 के पंचायत और जनजाति विकास मंत्रियों की समिति और (ख) पंचायती राज संस्थाओं को शक्तियाँ, कार्य और जिम्मेदारियाँ सौंपने और पंचायती राज प्रणाली को सुचारू रूप से कार्य करने योग्य बनाने से सम्बन्धित मामलों का अध्ययन करने और उचित उपाय सुझाने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में मुख्यमंत्रियों की समिति के गठन की सिफारिश की गई।

अनुसूची–5 राज्यों के पंचायत और जनजाति विकास मंत्रियों की समिति और प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में मुख्यमंत्रियों की समिति ने अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत कर दी हैं जिन्हें उपयुक्त कार्यवाई के लिए राज्यों को भेज दिया गया है। मुख्यमंत्रियों की समिति की महत्त्वपूर्ण सिफारिशें निम्नलिखित थीं–

1. लाभार्थियों का चयन ग्राम सभा पर छोड़ दिया जाए।
2. 10 हजार रुपये तक के कार्यों के लिए तकनीकी मंजूरी की शर्त को त्याग दिया जाए।
3. ग्राम पंचायतों को पर्याप्त जन–शक्ति सहायता प्रदान करने के लिए नई प्रक्रिया सोची जाए।
4. ऐसी जन–शक्ति पर पूर्ण नियंत्रण का अधिकार ग्राम पंचायतों को दिया जाए।
5. ज़िला परिषद् के अध्यक्षों को जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों का अध्यक्ष बनाया जाए।
6. निलम्बन/बर्खास्तगी से पूर्व पंचायती राज संस्थाओं को सुनवाई के लिए उचित अवसर प्रदान किया जाए।
7. ग्राम पंचायत का अध्यक्ष केवल ग्राम सभा के प्रति उत्तरदायी हो।
8. जिला आयोजन समितियों का गठन शीघ्र किया जाए।

यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि पंचायती राज संस्थाएँ स्थानीय शासन के साधन के रूप में कार्य करें, यह महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें कार्य करने और वित्तीय स्वायत्तता की गारंटी मिले और उनकी कार्य प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित की जाए। यह कार्य अभी अधिकतर राज्यों में पूरा किया जाना है। ग्राम स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं की सफलता सुनिश्चित करने में शायद ग्राम सभा की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। ग्राम सभा के सक्रिय होने से सामाजिक लेखा–परीक्षा करने और पचायत राज कार्यकत्ताओं की जिम्मेदारियाँ निश्चित करने में स्थानीय लोगों की भूमिका को प्रभावी रूप से सुनिश्चित किया जाएगा। यह आवश्यक है कि ग्रामीण समुदाय ग्राम सभा की बैठकों को उपयोगी समझें। उसके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है सभा को अधिकार–सम्पन्न बनाया जाए।

इन निकायों के कार्य में पारदर्शिता पंचायती प्रणाली की सफलता की एक आवश्यक शर्त है। चूँकि पचायतें लोगों के अधिक नजदीक होती हैं, इसलिए उन्हें उनके सूचना के अधिकार और पंचायतों तक उसकी पहुँच को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इस मामले पर 2 अगस्त, 1997 को आयोजित मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन और मुख्यमंत्रियों की समिति में भी चर्चा की गई थी। मंत्रालय ने राज्यों को पत्र लिखा है। माननीय प्रधानमंत्री ने भी मुख्यमंत्रियों को सम्बोधित करते हुए अपने पत्र में आग्रह किया था कि पंचायत द्वारा शुरू की गई विकास योजनाओं से सम्बन्धित पूरी जानकारी और उनके लिए रखे गए बजट को पंचायत कार्यालय में प्रमुखता से प्रदर्शित किया जाना चाहिए। लोगों को निरीक्षण के लिए संगत रिकार्ड उपलब्ध कराए जाने चाहिए। मस्टर रोल, वाउचरों, आंकलनों आदि जैसे दस्तावेजों की फोटो कापियाँ आम जनता को नाममात्र के शुल्क पर उपलब्ध कराई जा सकती हैं। पंचायत स्तर पर विभिनन कार्यों के निष्पादन के लिए तकनीकी नियमावली तैयार की जाए ताकि पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके।

ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय ने 13 मई, 1998 को ग्रामीण विकास और पंचायती राज के राज्य मंत्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया। बैठक का उद्घाटन माननीय प्रधानमंत्री द्वारा किया गया था। इस सम्मेलन में लिए गए संकल्प इस प्रकार हैं– (1) पंचायतों के ढ़ाँचे और कार्यप्रणाली का अध्ययन करने के लिए एक कार्य बल की स्थापना की जाए, (2) 73वें संशोधन अधिनियम और केन्द्रीय अधिनियम 40 के प्रावधानों पर अमल किया जाए, (3) प्रत्येक तिमाही में एक पूर्व निर्धारित दिन को ग्राम सभाओं की बैठक बुलाई जाए और (4) पंचायती राज संस्थाओं के प्रत्येक स्तर की स्वायत्तता और स्वतंत्रता का सम्मान किया जाए और ग्राम स्तरीय पंचायतों को अधिकार प्रदान किए जाएँ। संकल्प के अनुसरण पर पंचायती राज संस्थाओं के ढ़ांचे और कार्यप्रणाली का अध्ययन करने के लिए राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार), ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मत्रालय की अध्यक्षता में एक कार्यबल गठित किया गया है। राज्य सरकारों से यह सुनिश्चित करने का अनुरोध किया गया है कि ग्राम सभा की बैठक प्रत्येक तिमाही में एक बार वरीयतः 26 जनवरी – गणतंत्र दिवस, 1 मई – श्रम दिवस, 15 अगस्त – स्वतंत्रता

दिवस और 2 अक्टूबर – गांधी जयंती पर आयोजित की जाए।

अनुसूचित जातियों को आरक्षण प्रदान करने की आवश्यकता से अरुणाचल प्रदेश को छूट देने के लिए संविधान के अनुच्छेद 243 द में संशोधन करने के लिए मंत्रालय एक विधेयक पेश करना चाहता है। यह विधेयक राज्य की सामाजिक–राजनैतिक स्थिति के अनुसार अरुणाचल प्रदेश में पंचायती राज संस्थाओं के लिए एक कानूनी और संवैधानिक आधार प्रदान करेगा।

पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों को प्रशिक्षण

सभी राज्यों में पंचायतों के चुनावों के परिणामस्वरूप पंचायत के सभी स्तरों पर लगभग 34 लाख निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। इसमें से बहुत बड़ी संख्या में नए सदस्य हैं जो विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों से हैं अर्थात् अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाएँ (33 प्रतिशत) हैं। संविधान में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के विभिन्न कार्यक्रमों को तैयार करने और इन्हें कार्यान्वित करने के लिए ग्राम पंचायतों को बहुत बड़ी जिम्मेदारी दी गई है, अतः निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपेक्षित दक्षता प्राप्त करनी होगी और इसके लिए उन्हें उपयुक्त प्रशिक्षण देना होगा। पंचायती राज प्रणाली की सफलता मुख्य रूप से उनकी क्षमता–निर्माण पर निर्भर करती है ताकि इन कार्यों और जिम्मेदारियों को पूरा कर सकें। इस प्रकार बड़े पैमाने पर निर्वाचित प्रतिनिधियों को जानकारी देने के लिए एक समयबद्ध और व्यवस्थित प्रशिक्षण कार्यक्रम पंचायती राज संस्थाओं की सफलता के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शर्त है। राज्यों/संघ शासित प्रदेश की सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं को प्रशिक्षण देने और निचले स्तर पर लोगों में जागरूकता पैदा करने तथा ग्राम सभा को सुदृढ़ बनाने के लिए पूरी नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-98 से 2000-03) के लिए व्यवस्थित और व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को तैयार करना है। यह मंत्रालय पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों और कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने और उनमें जागरूकता उत्पन्न करने के प्रयासों में राज्यों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। पंचायती राज संस्थाओं के ढ़ाँचे के तहत कार्य कर रहे विकास कार्यकर्त्ताओं के लिए सर्टिफिकेट कोर्स में प्रशिक्षण प्राप्त करना जरूरी है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय को सर्टिफिकेट कोर्स के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने का कार्य सौंपा गया है। राज्य ग्रामीण विकास संस्थानों/राज्य सरकारों से इन पाठ्यक्रम को आयोजित करने का अनुरोध किया जा रहा है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय में इस विषय पर दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम भी शुरू किया गया है। सूचना, शिक्षा और संचार गतिविधियों के लिए यह मंत्रालय राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान को मुख्य रूप से 'पंचायत उन्नति' पत्रिका के प्रकाशन के लिए धनराशि उपलब्ध कराता है।

आठवीं योजना के दौरान प्रशिक्षण के लिए केन्द्रीय परिव्यय 8.80 करोड़ रुपये का था। वर्ष 1998-99 के दौरान 3 करोड़ रुपये उपलब्ध कराये गए थे। वर्ष 1999-2000 के लिए भी 3 करोड़ रुपये की राशि का प्रस्ताव रखा गया है।

यह मंत्रालय लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद् (कपाट) की जरिए भी पंचायती राज के सम्बन्ध में प्रशिक्षण और जागरूकता सृजन कार्यक्रम आयोजित करने के लिए अच्छे रिकार्ड वाले गैर–सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता दे रहा है।

ग्रामीण विकास के सचिव की अध्यक्षता में अनुसंधान सलाहकार समिति, स्वैच्छिक संगठनों/संस्थाओं से पंचायती राज से सम्बन्धित अनुसंधान और अध्ययनों पर प्राप्त प्रस्तावों का अनुमोदन करती है। मंत्रालय ने कुछ ख्याति प्राप्त गैर–सरकारी संगठनों/संस्थानों को पंचायती राज संस्थाओं के अनुसंधान और मूल्यांकन अध्ययन करने के लिए कहा है।

पंचायती राज संस्थाओं का सामान्य कार्य संचालन–एक मूल्यांकन

इन संस्थाओं के कार्य–संचालन और उपलब्धियों से सम्बन्धित पिछले कुछ वर्षों में अनेक अध्ययन हुए हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं–ईनामदार द्वारा महाराष्ट्र में किए गए एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि परिपक्वता प्राप्त करने में पंचायत को समय लगता है और अधिकांश पंचायतों की प्रकृति प्रजातन्त्रात्मक एवं मन्त्रणात्मक है। राजस्थान में इकबाल नारायण और माथुर द्वारा किए एक अध्ययन से प्रकट होता है कि शक्ति गुट पंचायती राज संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं इस अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि ग्राम सभा को पंचायत के कार्य–संचालन की रचनात्मक आलोचना हेतु एक

प्रभावशाली मंच के रूप में अभी उभारना है। यह भी पाया गया है कि ग्राम सभा के प्रति लोगों में उत्साह की कमी रहा है। इस प्रकार का निष्कर्ष इनामदार तथा ईचनन्दीकर ने अपने अध्ययनों के आधार पर निकाला है। आन्ध्र प्रदेश म किए गए अपने अध्ययन के आधार पर सर्वेश्वरराव ने बताया है कि पंचायती राज की स्थापना ने गाँवों की सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित किया है। अब लोगों ने विकास कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और शक्ति संरचना में परिवर्तन आया है। बी०एस० खन्ना ने पंचायती राज के प्रभावों का मूल्यांकन करते हुए बताया है कि अब ग्रामीण लोग अपनी समस्या क सम्बन्ध में अधिक सोचने लगे हैं, अपनी माँगों के सम्बन्ध में अधिक जोर देने लगे हैं और प्रशासन की कमियों तथा कार्यक्रमा की क्रियान्वयन सम्बन्धी असफलताओं के सम्बन्ध में आलोचना करने लगे हैं। पंजाब के दो जिलों के अध्ययन के आधार पर बी०एस० खन्ना ने बताया है कि शिक्षित और विवेकपूर्ण नेतृत्व ने अधिकारियों एवं गैरशासकीय लोगों के बीच अच्छ सम्बन्ध बनाए रखने में योगदान दिया है। लोगों की विकास कार्यों में अधिकाधिक रुचि बढ़ती जा रही है और राजनीतिक दल भी ग्रामीण क्षेत्रों में अपने कार्यों के विस्तार हेतु काफी इच्छुक हैं।

मुख्य प्रावधान

स्वतन्त्रता के पश्चात् पंचायती राज के स्वरूप के विकास में बलवन्तराय समिति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर ही देश में तीन–स्तरीय पंचायती राज - जिला परिषद्, पंचायत समिति और ग्राम पंचायत व्यवस्था को स्वीकार किया गया है। इस तरह से देश में पंचायती राज व्यवस्था का जो संस्थागत ढाँचा प्रचलित है, वह बलवन्तराय मेहता समिति के अनुरूप है।

प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने देश में पंचायती राज को वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए 1989 में सविधान म सशोधन करने के लिए एक विधेयक लोकसभा में प्रस्तावित किया गया था, जो पारित नहीं किया जा सका। सन् 1991 के लोकसभा के चुनावों में कांग्रेस (आई) ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में पंचायती राज को सशक्त और प्रभावशाली बनाने का संकल्प व्यक्त किया था। इसी उद्देश्य के अनुरूप नरसिंहराव के नेतृत्व वाली कांग्रेस (आई) की सरकार ने सितम्बर, 1991 में संविधान (बहत्तरवाँ संशोधन) विधेयक 1991, लोकसभा में पेश किया, जिसे 22 सितम्बर, 1992 को स्वीकृति दे दी। 23 दिसम्बर, 1992 को राज्यसभा ने भी इसे स्वीकृति प्रदान की। इसके बाद 17 राज्यों की विधानसभाओं ने इस विधेयक का अनुसमर्थन कर दिया। फलतः राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने पर इसे 24 अप्रैल, 1993 से अधिनियमित कर दिया गया और इसे संविधान (73वाँ सशोधन) अधिनियम से जाना जाने लगा। 24 अप्रैल, 1993 से यह अधिनियम पूरे देश में लागू हो गया। इस संविधान का मूल पाठ निम्नानुसार है–

संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ

भारत गणराज्य के तैंतालीसवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो–

1. (i) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम संविधान (तिहत्तरवाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 है।

   (ii) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे।

2. संविधान के भाग 8 के पश्चात् निम्नलिखित भाग अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्–

   'भाग 9' पंचायतें

   243 इस भाग में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो–

   (क) 'जिला' से किसी राज्य का जिला अभिप्रेत है;

   (ख) 'ग्राम सभा' से ग्राम स्तर पर पंचायत के क्षेत्र के भीतर समाविष्ट किसी ग्राम से सम्बन्धित निर्वाचक नामावली में रजिस्ट्रीकृत व्यक्तियों से मिलकर बना निकाय अभिप्रेत है;

   (ग) 'मध्यवर्ती स्तर' से ग्राम और जिला स्तरों के बीच का ऐसा स्तर अभिप्रेत है जो किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा

इस भाग के प्रयोजनों के लिए, लोक अधिसूचना द्वारा, मध्यवर्ती स्तर पर विनिर्दिष्ट किया जाए;

(घ) 'पंचायत' से ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अनुच्छेद 243 ख के अधीन स्वायत्त शासन की कोई संस्था (चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है;

(ङ) 'पंचायत क्षेत्र' से पंचायत का प्रादेशिक क्षेत्र अभिप्रेत है;

(च) 'जनसंख्या' से ऐसी अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में अभिनिश्चित की गई जनसंख्या अभिप्रेत है जिसके सुसंगत आँकड़े प्रकाशित हो गए हैं; और

(छ) 'ग्राम' से राज्यपाल द्वारा इस भाग के प्रयोजनों के लिए, लोक अधिसूचना द्वारा ग्राम के रूप में विनिर्दिष्ट ग्राम अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत इस प्रकार विनिर्दिष्ट ग्रामों का समूह भी है।

ग्राम सभा

243 क. ग्राम सभा, ग्राम स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे मूल्यों का निर्वहन कर सकेगी, जो राज्य के विधान–मण्डल द्वारा, विधि द्वारा, उपबन्धित किये जाएँ।

पंचायतों का गठन

243 ख.

(1) प्रत्येक राज्य में ग्राम, मध्यवर्ती और जिला स्तर पर इस भाग के उपबंधों के अनुसार पंचायतों का गठन किया जाएगा।

(2) खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत का उस राज्य में गठन नहीं किया जाएगा जिसकी जनसंख्या बीस लाख से अधिक है।

पंचायतों की संरचना

243 ग.

(1) इस भाग के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा, पंचायतों की संरचना की बाबत उपबंध कर सकेगा।

परन्तु, किसी भी स्तर पर पंचायत के प्रादेशिक क्षेत्र की जनसंख्या और ऐसी पंचायत में निर्वाचन द्वारा भरे जानेवाले स्थानों की संख्या के बीच अनुपात समस्त राज्य में, यथासाध्य, एक ही होगा।

(2) पंचायत के सभी स्थान पंचायत क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्रों से प्रत्यक्ष, निर्वाचन द्वारा चुने गए व्यक्तियों से भरे जाएंगे और इस प्रयोजन के लिए, प्रत्येक पंचायत क्षेत्र ऐसी रीति से प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन–क्षेत्र की जनसंख्या और उसको आंबटित स्थानों की संख्या के बीच अनुपात समस्त पंचायत क्षेत्र में, यथासाध्य, एक ही हो।

(3) राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा–

(क) ग्राम स्तर पर पंचायतों के अध्यक्षों का मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों में या ऐसे राज्य की दशा में जहाँ मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत नहीं है, जिला स्तर पर पंचायतों में;

(ख) मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों के अध्यक्षों का जिला स्तर पर पंचायतों में;

(ग) लोक सभा के सदस्यों और राज्य की विधानसभा के सदस्यों के जो ऐसे निर्वाचन–क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनमें ग्राम स्तर से भिन्न स्तर पर कोई पंचायत क्षेत्र पूर्णतः या भागतः समाविष्ट है, ऐसी पंचायत में;

(घ) राज्यसभा के सदस्यों और राज्य की विधानपरिषद् के सदस्यों के, जहाँ वे–

(i) मध्यवर्ती स्तर पर किसी पंचायत क्षेत्र के भीतर निर्वाचकों के रूप में रजिस्ट्रीकृत है, मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत में;

(ii) जिला स्तर पर किसी पंचायत क्षेत्र के भीतर निर्वाचकों के रूप में रजिस्ट्रीकृत है, जिला स्तर पर पंचायत में, प्रतिनिधित्व करने के लिए उपबंध कर सकेगा।

(4) किसी पंचायत के अध्यक्ष और पंचायत के ऐसे अन्य सदस्यों को पंचायतों के अधिवेशनों में मत देने का अधिकार होगा, जो पंचायत क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्रों से, चाहे प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा या अन्यथा, चुने गए हैं।

(5) (क) ग्राम स्तर पर किसी पंचायत के अध्यक्ष का निर्वाचन ऐसी रीति से, जो राज्य के विधान मण्डल द्वारा, विधि द्वारा, उपबंधित की जाए, किया जाएगा; और

(ख) मध्यवर्ती स्तर या जिला स्तर पर किसी पंचायत का अध्यक्ष, उसके निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से चुन जाएगा।

स्थानों का आरक्षण

243 घ.

(1) प्रत्येक पंचायत में– (क) अनुसूचित जातियों; और (ख) अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे और इस प्रकार आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, उस पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे गए स्थानों की कुल संख्या में यथाशक्य वही होगा जो उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की अथवा उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से है और ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न–भिन्न निर्वाचन–क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

(2) खंड (1) के अधीन आरक्षित स्थानों की कुल संख्या के एक तिहाई से अन्यून स्थान, यथास्थिति, अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे।

(3) प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जानेवाले स्थानों की कुल संख्या के एक–तिहाई के अन्यून स्थान (जिसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी है) स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे और ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न–भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

(4) ग्राम या किसी अन्य स्तर पर पंचायतों में अध्यक्षों का पद–अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और स्त्रियों के लिए ऐसी रीति से आरक्षित रहेगा, जैसी राज्य विधान मण्डल, विधि द्वारा, उपबंधित करे।

परन्तु किसी राज्य में प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित अध्यक्षों के पदों की संख्या का अनुपात, प्रत्येक स्तर पर उन पंचायतों में ऐसे पदों की कुल संख्या का यथाशक्य वही होगा, जो उस राज्य की अनुसूचित जातियों की अथवा राज्य की अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की कुल जनसंख्या से है:

परन्तु यह और कि प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में अध्यक्षों के कुल पदों की कुल संख्या एक–तिहाई से अन्यून पदों पर स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे:

परन्तु यह भी कि इस खण्ड के अधीन आरक्षित पदों की संख्या प्रत्येक स्तर पर भिन्न–भिन्न पंचायतों को चक्रानुक्रम से आबंटित की जाएगी।

(5) खण्ड (1) और खण्ड (2) के अधीन स्थानों का आरक्षण और खण्ड (4) के अधीन अध्यक्षों के पदों का आरक्षण (जो स्त्रियों के लिए आरक्षण से भिन्न है) अनुच्छेद 334 में विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर प्रवर्तन नहीं रहेगा।

(6) इस भाग की कोई बात किसी राज्य के विधान मण्डल को किसी स्तर पर किसी पंचायत में पिछड़े वर्गों के

के पक्ष में स्थानों के या पंचायतों के अध्यक्षों के पदों के आरक्षण के लिए कोई उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी।

पंचायतों का कार्यकाल

243 ड.

(1) प्रत्येक, पंचायत, यदि तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन उसे पहले ही विघटित नहीं कर दिया जाता है, तो अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से पाँच वर्ष की अवधि तक, न कि उससे अधिक बनी रहेगी।

(2) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि का कोई संशोधन किसी स्तर पर ऐसी पंचायत का, जो ऐसे संशोधन के ठीक पूर्व कार्य कर रही है, तब तक विघटन नहीं करेगा, जब तक खण्ड (1) में विनिर्दिष्ट उसके कार्यकाल का अवसान नहीं हो जाता।

(3) किसी पंचायत का गठन करने के लिए निर्वाचन–

(क) खण्ड (1) में विनिर्दिष्ट उसके कार्यकाल के अवसान के पूर्व,

(ख) उसके विघटन की तारीख से छः मास की अवधि के अवसान के पूर्व पूरा किया जाएगा।

परन्तु जहाँ शेष अवधि, जिसके लिए कोई विघटित पंचायत बनी रहती, छः मास से कम है, वहाँ ऐसी अवधि के लिए उस पंचायत का गठन करने के लिए इस खण्ड के अधीन कोई निर्वाचन कराना अवाश्यक नहीं होगा।

(4) पंचायत के कार्यकाल के अवसान से पूर्व किसी पंचायत के विघटन पर गठित की गई पंचायत उस अवधि के केवल शेष भाग के लिए बनी रहेगी, जिस अवधि तक विघटन पंचायत खण्ड (1) के अधीन बनी रहती, यदि वह इस प्रकार विघटित नहीं की जाती।

सदस्यता के लिए निरर्हताएँ (अयोग्यताएँ)

243 च.

(1) कोई व्यक्ति किसी पंचायत का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य बनने के लिए निरर्हित होगा–

(क) यदि वह सम्बन्धित राज्य के विधान मण्डल के निर्वाचनों के प्रयोजनों के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है।

परन्तु कोई व्यक्ति इस आधार पर निरर्हित नहीं होगा कि उसकी आयु पच्चीस वर्ष से कम है, यदि उसने इक्कीस वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है;

(ख) यदि वह राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है।

(2) यदि यह प्रश्न उठता है कि पंचायत का कोई सदस्य खण्ड (1) में वर्णित किन्हीं निरर्हताओं से ग्रस्त हो गया है या नहीं, तो वह प्रश्न ऐसे प्राधिकारी को, और ऐसी रीति से, जैसा राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा, उपबन्धित करे, विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाएगा।

पंचायतों की शक्तियाँ, प्राधिकार और उत्तरदायित्व

243 छ.

संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा, पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा जो वह उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक समझे और ऐसी विधि में पंचायतों को उपयुक्त स्तर पर ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जैसी उसमें विनिर्दिष्ट की जाएँ, निम्नलिखित के सम्बन्ध में शक्तियाँ और उत्तरदायित्व न्यागत करने के लिए उपबंध किए जा सकेंगे–

(क) आर्थिक विकास और सामजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करना;

(ख) आर्थिक विकास और सामजिक न्याय की स्कीमों को, जो उन्हें सौंपी जाएँ, जिसके अन्तर्गत वे स्कीमें भी हैं जो ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के सम्बन्ध में हैं, क्रियान्वित करना।

पंचायतों द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्ति और पंचायतों की निधियाँ

243 ज. राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा–

(क) ऐसी प्रक्रिया के अनुसार और ऐसी सीमाओं के अधीन रहते हुए, ऐसे कर, शुल्क, पथकर और फीसें उद्‌गृहीत और संगृहीत और विनियोजित करने के लिए किसी पंचायत को प्राधिकृत कर सकेगा;

(ख) ऐसे प्रयोजनों के लिए और ऐसी शर्तों तथा सीमाओं के अधीन रहते हुए, राज्य सरकार द्वारा उद्‌गृहीत और संगृहीत ऐसे कर, शुल्क, पथकर और फीसें किसी पंचायत को समनुदेशित कर सकेगा;

(ग) पंचायतों के लिए राज्य की संचित निधि में से सहायता–अनुदान देने के लिए उपबंध कर सकेगा; और

(घ) पंचायतों द्वारा या उनकी ओर से प्राप्त धनों के जमा करने के लिए ऐसी निधियों का गठन तथा ऐसी निधियों में से धन का प्रत्याहरण करने के लिए भी उपबंध कर सकेगा, जो विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएँ या की जाएँ।

वित्तीय स्थिति के पुनर्विलोकन के लिए वित्त आयोग का गठन

243 झ.

(1) राज्य का राज्यपाल, संविधान (तिहत्तरवाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 के प्रारंभ से एक वर्ष के भीतर यथाशक्य शीघ्र और उसके पश्चात् प्रत्येक पाँचवें वर्ष के अवसान पर, पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनर्विलोकन करने के लिए और–

(क) उन सिद्धान्तों, जो निम्नलिखित को शासित करेंगे, अर्थात्–

(i) राज्य द्वारा उद्‌गृहणीय ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के शुद्ध आगमों का राज्य और पचायतों के बीच वितरण जो इस भाग के अधीन उनके बीच वितरित किए जा सकेंगे तथा पंचायतों के बीच सभी स्तरों पर ऐसे आगामों के अपने–अपने अंशों का आबंटन;

(ii) ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों का अवधारणा जो पंचायतों को समनुदेशित किए जा सकेंग या उसके द्वारा विनियोजित किए जा सकेंगे,

(iii) राज्य की संचित निधि में से पंचायतों को सहायता अनुदान;

(ख) पंचायतों की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक अध्युपाय;

(ग) किसी अन्य विषय, जो राज्यपाल द्वारा पंचायतों के ठोस वित्तपोषण के हित में वित्त आयोग को निर्दिष्ट किया जाए, की बाबत राज्यपाल को सिफारिशें करने के लिए एक वित्त आयोग का गठन करेगा।

(2) राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा, आयोग की संरचना, अर्हता, जो आयोग के सदस्यों के रूप में नियुक्ति क लिए अपेक्षित होगी और रीति, जिससे उनका चयन किया जाएगा, का उपबंध कर सकेगा।

(3) आयोग अपनी प्रक्रिया अवधारित करेगा और उसे अपने कृत्यों के पालन के लिए ऐसी शक्तियाँ होगी जो राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा उसे प्रदान करें।

(4) राज्यपाल इस अनुच्छेद के अधीन आयेाग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश और उसके बारे में की गई कार्यवाही का स्पष्टीकरण–ज्ञापन राज्य के विधान मण्डल के समक्ष रखवायेगा।

पंचायतों के लेखाओं की संपरीक्षा

243 ञ. राज्य का विधान मण्डल, पंचायतों द्वारा लेखे बनाए रखने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा करने की बाबत, विधि द्वारा उपबंध कर सकेगा।

पंचायतों के लिए निर्वाचन

243 ट.

(1) पंचायतों के लिए कराए जानेवाले सभी निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन और नियन्त्रण एक राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होगा जिसमें राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया गया एक राज्य निर्वाचन आयुक्त होगा।

(2) राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुए, राज्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जो राज्यपाल नियमों द्वारा अवधारित करें:

परन्तु राज्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर ही हटाया जाएगा जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है, अन्यथा नहीं, और राज्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा।

(3) जब राज्य निर्वाचन आयोग ऐसा अनुरोध करे तब किसी राज्य का राज्यपाल राज्य निर्वाचन आयोग को उतने कर्मचारीवृन्द उपलब्ध कराएगा जितने खण्ड (1) द्वारा राज्य निर्वाचन आयोग को उसे सौंपे गए कृत्य के निर्वहन के लिए आवश्यक हों।

(4) इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा पंचायतों के निर्वाचनों से सम्बन्धित या सम्पृक्त सभी विषयों की बाबत उपबंध कर सकेगा।

राज्य क्षेत्रों को लागू होना

243 ठ. इस भाग के उपबंध राज्य क्षेत्रों को लागू होंगे और किसी संघ राज्य क्षेत्र को उनके लागू होने में उनका वह प्रभाव होगा मानों राज्य के राज्यपाल के प्रतिनिर्देश 239 के अधीन नियुक्त किए गए संघ राज्य क्षेत्र के प्रशासक के प्रतिनिर्देश हैं और राज्य के विधान मण्डल का विधान सभा के प्रति निर्देश, उस संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में, जिनमें विधान सभा हैं, उस विधान सभा के प्रति निर्देश हैं:

परन्तु राष्ट्रपति, लोक अधिसूचना द्वारा, यह निर्देश दे सकेगा कि इस भाग के उपबंध किसी संघ राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग को ऐसे उपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए लागू होंगे जो वह अधिसूचना में विनिर्दिष्ट करे।

भाग का कतिपय क्षेत्रों को लागू न होना

243 ड़.

(1) इस भाग की कोई बात अनुच्छेद 244 के खण्ड (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों और खण्ड (2) में निर्दिष्ट जनजाति क्षेत्रों को लागू नहीं होगी।

(2) इस भाग की कोई बात निम्नलिखित को लागू नहीं होगी–

(क) नागालैण्ड, मेघालय और मिजोरम राज्य,

(ख) मणिपुर राज्य में ऐसे पर्वतीय क्षेत्र जिनके लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन जिला परिषदें विद्यमान हैं।

(3) इस भाग की–

(क) कोई बात, जिला स्तर पर पंचायतों के सम्बन्ध में, पश्चिमी बंगाल राज्य के दार्जिलिंग जिले के ऐसे पर्वतीय क्षेत्रों को लागू नहीं होगी जिनके लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद् विद्यमान है;

(ख) किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसी विधि के अधीन गठित दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद् के कृत्यों और शक्तियों पर प्रभाव डालती है।

(4) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी–

(क) खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में निर्दिष्ट किसी राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा, इस भाग का विस्तार, खण्ड (1) में निर्दिष्ट क्षेत्रों, यदि कोई है, के सिवाय, उस राज्य पर कर सकेगा, यदि उस राज्य की विधानसभा इस आशय का एक संकल्प उस सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उस सदन के उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के कम-से-कम दो–तिहाई बहुमत द्वारा पारित कर देती है;

(ख) संसद्, विधि द्वारा, इस भाग के उपबंधों का विस्तार खण्ड (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों और जनजाति क्षेत्रों पर ऐसे अपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए कर सकेगी, जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएँ और ऐसी कोई विधि अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिए इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जाएगी।

विद्यमान विधियों और पंचायतों का बना रहना

243 ढ.

इस भाग में किसी बात के होते हुए भी, संविधान (तिहत्तरवाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 के प्रारम्भ के ठीक पूर्व राज्य में प्रवृत्त पंचायतों से सम्बन्धित किसी विधि का कोई उपबंध, जो इस भाग के उपबंधों से असंगत है, तब तक जब तक कि सक्षम विधान मण्डल द्वारा या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे संशोधित या निरसित नहीं कर दिया जाता, या जब तक ऐसे प्रारम्भ से एक वर्ष का अवसान नहीं हो जाता, इनमें में जो भी पूर्वतर हो, प्रवृत्त बना रहेगा।

परन्तु ऐसे प्रारम्भ के ठीक पूर्व विद्यमान सभी पंचायतें अपने कार्यकाल की समाप्ति तक बनी रहेंगी, यदि उन्हें उस राज्य की विधानसभा द्वारा या एसे राज्य की दशा में जिसमें विधान परिषद् है, उस राज्य के विधान मण्डल के प्रत्येक सदन द्वारा, पारित इस आशय के संकल्प द्वारा पहले ही विघटित नहीं कर दिया जाता।

निर्वाचन सम्बन्धी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन

243 ण. इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी–

(क) अनुच्छेद 243 ट. के अधीन बनाई गई या बनाए जाने के लिए तत्पर किसी ऐसी विधि की, जो निर्वाचन–क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन–क्षेत्रों को स्थानों के आबंटन से सम्बन्धित है, विधिमान्यता किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं की जाएगी;

(ख) किसी पंचायत के लिए कोई भी निर्वाचन अर्जी पर ही प्रश्नगत किया जाएगा जो ऐसे प्राधिकारी को ऐसी रीति से प्रस्तुत की गई है जिसका राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंध है, अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 280 का संशोधन

(3) संविधान के 280 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) के पश्चात् निम्नलिखित उपखण्ड अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात–

"(ख) राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर राज्य में पंचायतों के साधनों की अनुपूर्ति के

लिए किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिए आवश्यक अध्युपाय।"

ग्यारहवाँ अनुसूची (अनुसूची 243 छः) का जोड़ा जाना

(4) संविधान की दसवीं अनुसूची के पश्चात् निम्नलिखित अनुसूची जोड़ी जाएगी, अर्थात्–

1. कृषि, जिसके अन्तर्गत कृषि–विस्तार भी है।
2. भूमि विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वियन, चकबंदी और भूमि संरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध और जल–आच्छादन विकास।
4. पशुपालन, दुग्ध–उद्योग और कुक्कुट–पालन।
5. मत्स्य उद्योग।
6. सामाजिक वनोद्योग और फार्म वनोद्योग।
7. लघु वन उत्पाद।
8. लघु उद्योग, जिनके अन्तर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी हैं।
9. खादी, ग्राम और कुटीर उद्योग।
10. ग्रामीण आवासन।
11. पेय जल।
12. ईंधन और चारा।
13. सड़कें, पुलिया, पुल, फेरी, जल मार्ग तथा संचार के अन्य साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण, जिसके अन्तर्गत विद्युत का वितरण भी है।
15. गैर–पारम्परिक ऊर्जा स्रोत।
16. गरीबी उपशमन कार्यक्रम।
17. शिक्षा, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं।
18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा।
19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।
20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक क्रियाकलाप।
22. बाजार और मेले।
23. स्वास्थ्य और स्वच्छता, जिसके अन्तर्गत अस्तपाल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी हैं।
24. परिवार कल्याण।
25. स्त्री और बाल विकास।
26. समाज कल्याण, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है।
27. दुर्बल वर्गों का और विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।

28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।

29. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।"

संविधान (तिहत्तरवाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 के आधार पर सभी राज्यों में कानून बनाए जाएँगे जिसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) पंचायत क्षेत्र में रहनेवाले जितने भी वयस्क लोगों का नाम वोटर लिस्ट में दर्ज हैं, वे सब ग्राम सभा के सदस्य होंगे।

(ख) पंचायतों का एक त्रिस्तरीय ढाँचा होगा–गाँव, मध्यवर्ती और जिला स्तर पर। जिन राज्यों की जनसख्या 20 लाख से कम है, उन्हें यह विकल्प रहेगा कि मध्यवर्ती स्तर पर न रखें।

(ग) सभी तीनों स्तरों की पंचायतों की सीटें चुनाव द्वारा भरी जाएँगी। इसके अतिरिक्त गांव पचायतों के अध्यक्ष मध्यवर्ती स्तर की पंचायतों के सदस्य बनाए जा सकते हैं और मध्यवर्ती स्तर की पंचायतों के अध्यक्ष जिला स्तर की पचायतो के सदस्य बनाए जा सकते हैं और संसद् सदस्य, विधानसभा सदस्य और विधानपरिषद् सदस्य भी मध्यवर्ती या जिला स्तर की पंचायतों के सदस्य बनाए जा सकते हैं।

(घ) सभी पंचायतों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों के लिए उनकी आबादी के अनुपात म सीटे सुरक्षित होंगी। कुल सीटों की एक तिहाई महिलाओं के लिए सुरक्षित होंगी। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सुरक्षित सीटों में से भी एक तिहाई महिलाओं के लिए सुरक्षित होंगी।

(ङ) सभी स्तरों की पंचायतों के अध्यक्षों के पद भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए राज्य में उनकी आबादी के अनुपात में सुरक्षित रहेंगे। सभी स्तरों की पंचायतों के अध्यक्ष पदों में से एक तिहाई महिलाओं के लिए सुरक्षित होंगे।

(च) राज्य के विधान मण्डल को यह छूट होगी कि पंचायतों की सीटों में और अध्यक्ष पदों में पिछड़े वर्गों के लिए भी स्थान सुरक्षित रखे।

(छ) हर पंचायत की अवधि एक-सी अर्थात् पाँच वर्ष होगी और नई पंचायतों के लिए चुनाव पुरानी पचायतों की अवधि ा समाप्त होने से पहले ही पूरे हो जाएँगे। पंचायत भंग किए जाने की दशा में छः महीने के भीतर ही निश्चित रूप से चुनाव कराए जाएँगे। नई गठित पंचायत पाँच वर्ष की अवधि के शेष समय के लिए काम करेगी।

(ज) किसी अधिनियम में संशोधन करके अपनी अवधि पूरी होने से पहले किसी पंचायत को भंग नहीं किया जा सकेगा।

(झ) यदि कोई व्यक्ति किसी कानून के अन्तर्गत राज्य विधान मण्डल का चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित किया जाता है या राज्य के किसी कानून के अन्तर्गत अयोग्य घोषित किया जाता है तो वह पंचायत का सदस्य बनने का अधिकारी नहीं होगा।

(ञ) हर राज्य में चुनाव प्रक्रिया के संचालन, निर्देशन तथा नियंत्रण के लिए और मतदाता सूचियाँ तैयार करने के लिए स्वतंत्र चुनाव आयोग स्थापित किए जाएँगे।

(ट) पंचायतों को इस बात की विशिष्ट जिम्मेदारी सौंपी जाएगी कि वे ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित विषयों के बारे में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करें। विकास योजनाएँ कार्यान्वित करने की मुख्य जिम्मदारी पंचायतों को सौंपी जाएगी।

(ठ) पंचायतों को अपने कार्य पूरे करने के लिए पर्याप्त धनराशि दी जाएगी। राज्य सरकार से मिलनेवाले अनुदान पचायतों के कोष का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत होंगे, परन्तु राज्य सरकारों से यह आशा की जाएगी कि वे कुछ करों का राजस्व पंचायतों को सौंप देंगी। कुछ मामलों में पंचायतों को यह भी अनुमति होगी कि अपने द्वारा लगाया गया राजस्व इकट्ठा कर सकें और उसे अपने पास ही रख सकें।

(ड) हर राज्य में एक वर्ष के अन्दर–अन्दर एक वित्त आयोग गठित किया जाएगा और उसके बाद फिर हर पाँचवे वर्ष

गठित किया जाएगा जिसका काम ऐसे सिद्धान्त तय करना होगा जिनके आधार पर पंचायतों के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन सुनिश्चित किए जाएँ।

(ढ) जो पंचायतें 24 अप्रैल, 1993 को काम कर रही थीं, उन्हें अपनी पूरी अवधि के लिए काम करने दिया जाएगा बशर्ते कि सदन अपने किसी प्रस्ताव द्वारा उन्हें भंग न कर दें।

यह संविधान संशोधन अधिनियम बनाने का मुख्य उद्देश्य यह है कि अपने विकास के कार्यों में लोग पहले से अधिक भाग ले सकें। यह अनुभव किया जा रहा था कि लोगों में विकास कार्यों में भागीदारी की भावना नहीं थीं और न ही उन्हें ऐसे विषयों के बारे में भी फैसला करने का मौका मिलता था जिनका उनके जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। जब संविधान संशोधन अधिनियम के उपबंध राज्यों के अधिनियमों में शामिल कर लिए जाएँगे और विभिन्न स्तरों पर इन संस्थाओं की स्थापना हो जाएगी तो विकास कार्यक्रम पहले से काफी ज्यादा अच्छी तरह कार्यान्वित किए जाएँगे। राज्य सरकारें उन्हें करने के लिए पर्याप्त काम देंगी और पर्याप्त वित्तीय साधन और शक्तियाँ सौंपेगी ताकि विभिन्न कार्यक्रमों को बेहतर ढंग से कार्यान्वित किया जा सके।

इस प्रकार इस संविधान संशोधन अधिनियम में प्रशासन के लिए विकेन्द्रित स्वरूप की परिकल्पना की गई है। उपर्युक्त संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों की स्थिति को बहुत सुदृढ़ किया गया है और उन्हें व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इससे पंचायती राज व्यवस्था को नई शक्ति प्राप्त होगी। साथ ही सारे देश में पंचायतों के एकरूप स्वरूप का विकास होगा।

अध्याय-18

पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में राज्य सरकार एवं संघीय सरकार की भूमिका

(Role of State and Union Government in Regard to Panchayati Raj Institutions)

स्वतन्त्रता से पूर्व महात्मा गांधी ने भारत में रामराज्य की स्थापना की कल्पना की थी जिसमें उन्होंने नगरों की अपेक्षा छोट–छोटे गाँवों को अधिक महत्त्व दिया था और उन्हें अपने मामलों में स्वायत्तता देने के बारे में भी कल्पना की थी। पंचायती राज स्वतन्त्र भारत की एक महत्त्वपूर्ण खोज है। पंचायती राज की स्थापना के द्वारा महात्मा गांधी द्वारा कल्पित भारत में ग्रामीण स्तर की स्थानीय संस्थाओं को सीमित स्वायत्ता देने का प्रावधान किया गया है ताकि गांधी जी के सपने को साकार रूप दिया जा सके।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत अनुच्छेद 40 के अनुसार प्रकट किया गया, "राज्य को ऐसे पग उठाने चाहिए कि वह पंचायतों को इस तरह से संगठित करे कि वह अपने स्थानीय मामलों का भली–भाँति कार्य करने के योग्य हो सकें। इसके लिए उन्हें सीमित शक्तियाँ व सत्ता प्रदान की जाएं।" (The state shall take steps to organise Village Panchayats and endow them with such powers and authority as may be necessary to enable them to function units of self-government.) स्वतन्त्रता के बाद भारत में लोकतन्त्र को अपनाया गया है। लोकतन्त्र की स्थापना स्थानीय स्व–शासन के मजबूत आधार के बिना असम्भव है। इसलिए पंचायती राज की स्थापना का उद्देश्य ग्रामीण स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत बनाना रखा गया है। परन्तु केन्द्र सरकार प्रत्यक्ष रूप से राज्यों द्वारा स्थापित पंचायती राज व्यवस्था में अपनी भूमिका नहीं निभा सकती है वह पंचायती राज के सम्बन्ध में कोई भी नीति निर्माण आदि कर सकती है परन्तु उन्हें साकारात्मक ढंग से लागू करना राज्य सरकारों का दायित्व है। अतः पंचायती राज व्यवस्था की सफलता राज्य सरकार की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है।

पंचायती राज के सम्बन्ध में राज्य सरकार की भूमिका

(Role of State Government Regarding to Panchayati Raj)

भारत में पंचायती राज की व्यवस्था बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर की गई है। पंचायती राज की स्थापना सर्वप्रथम 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान में हुई। आन्ध्र प्रदेश ने नवम्बर, 1959 में पंचायती राज को अपनाया। असम, कर्नाटक एवं उड़ीसा ने अपने राज्य में 1960 में पंचायती राज लागू किया। बिहार, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र एव उत्तर प्रदेश ने 1961 में, मध्य प्रदेश 1962 में, पश्चिमी बंगाल 1963 में तथा हिमाचल प्रदेश 1968 में पंचायती राज विधान लागू किया। इन राज्यों ने अपने राज्य के वित्तीय संस्थाओं की उपलब्धता के अनुसार अपने यहाँ पंचायती राज व्यवस्था लागू की थी। इस समय भारत के लगभग सभी राज्यों में पंचायती राज लागू है। दिसम्बर 1992 में केन्द्र सरकार ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार लाने और राज्यों द्वारा उन्हें अधिक शक्तियाँ दिए जाने के लिए संसद में 72वाँ संवैधानिक संशोधन बिल पेश किया गया। संसद द्वारा इस बिल को पास करने पर इसे राष्ट्रपति की मन्जूरी के लिए भेजा गया। अप्रैल, 1993 में राष्ट्रपति ने इस पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और स्वीकृति के बाद इस संशोधन का क्रमांक 73 हो गया क्योंकि इससे पूर्व 72 संशोधन पारित किए जा चुके थे। इस संशोधन द्वारा राज्य सरकार को पंचायती राज के सम्बन्ध में कई तरह शक्तियां दी गईं, उनका वर्णन इस प्रकार है–

1. **संवैधानिक मान्यता** – 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायती राज की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया और सभी राज्य सरकारों को भी इन संस्थाओं को अपने–अपने क्षेत्र में कानूनी दर्जा दिए जाने के निर्देश दिए हैं। इस तरह प्रत्येक राज्य ने पंचायती राज के संबंध में कानून पारित करके इसे कानूनी रूप प्रदान किया है।

2. **पंचायतों की रचना** – 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है प्रत्येक राज्य की विधानसभा प्रत्येक स्तर की पंचायती राज से सम्बन्धित संस्थाओं की रचना की व्यवस्था स्वयं करेगी।

3. **पंचायती राज चुनाव राज्य चुनाव आयोग की निगरानी में** – प्रत्येक राज्य में होने वाले पंचायती राज से सम्बन्धित चुनावों की निगरानी, निर्देशन और नियन्त्रण राज्य का चुनाव आयोग करेगा। राज्य चुनाव आयोग ही चुनाव की तिथि तय करता है, नामांकन पत्रों की जाँच–पड़ताल करके, चुनाव चिन्ह् जारी करता है। चुनाव आयोग स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनावों की व्यवस्था के लिए समुचित प्रबन्ध करता है।

4. **पंचायती राज संस्थाओं में विधानसभा और विधानमण्डलों के सदस्यों की प्रतिनिधित्वता** – 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायत समिति व जिला परिषद् के चुनाव क्षेत्र में आनेवाले राज्य विधानसभा और विधानमण्डल के सदस्यों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है।

5. **कर सम्बन्धी कार्य** – राज्य की विधानसभा अथवा विधानमण्डल कानून द्वारा इन संस्थाओं को कुछ कर लगाने और उनका संग्रहण करने की शक्ति सौंप सकती है।

6. **वित्त आयोग का निर्माण** – 73वें संशोधन द्वारा प्रत्येक राज्य सरकार पंचायती राज संस्थाओं के लिए एक वित्त आयोग का गठन कर सकता है। इस वित्त आयोग की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। वित्त आयोग के सदस्यों की संख्या, योग्यताओं, उनके चुनाव, शक्तियाँ आदि राज्य विधानसभा अथवा विधानमण्डल निश्चित करेगा।

राज्य पंचायती राज विभाग
(State Panchayats Department)

पंचायती राज के संगठन और उसका प्रशासकीय नियन्त्रण राज्य सरकार प्रत्यक्ष रूप से स्वयं या राज्य स्तर पर गठित पंचायत और विकास विभाग के द्वारा किया जाता है। हरियाणा और पंजाब में पंचायती राज से सम्बन्धित संस्थाएँ दो स्तरों पर काम करती है – राज्य स्तर और जिला स्तर। पंचायती राज संस्थाओं के दोनों स्तर मुख्यालय से लेकर ग्राम पंचायत तक एक प्रशासनिक संरचना में बँधे हुए हैं। राज्य ग्रामीण विकास और पंचायत विभाग का इन पंचायती राज की संस्थाओं पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित है। राज्य में ग्रामीण विकास और पंचायती कार्यों से संबंधित एक अलग से विभाग की स्थापना की गई है। राज्य पंचायती राज विभाग एक मंत्री के नेतृत्व में अपना कार्य करता है। हरियाणा और पंजाब में ग्रामीण विकास और पंचायत राज विभाग का एक सचिव होता है, वह इस विभाग का प्रशासनिक मुखिया होता है। ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों का मार्ग निर्देशन ग्रामीण विकास एवं पंचायत विभाग का निदेशक करता है। निदेशक के कार्यों में उसकी सहायता के लिए राज्य सरकार एक अपर सचिव की नियुक्ति करती है। अपर सचिव के अतिरिक्त एक पंचायत अधिकारी (शिक्षा), छः सामाजिक शिक्षा तथा पंचायत अधिकारी, जिला विकास तथा पंचायत अधिकारियों की नियुक्ति भी राज्य सरकार करती है। पंचायती राज की स्थापना होने के कारण सामुदायिक विकास को पंचायतों के साथ ही मिला दिया गया है।

पंचायती राज के सामान्य प्रशासन पर राज्य सरकार का नियन्त्रण
(State Government's Control over General Administration of Panchayati Raj)

प्रत्येक राज्य की राज्य सरकार को अपने राज्य में पंचायती राज की सफलता और उनके कार्य संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। पंचायती राज की संस्थाएँ स्वतन्त्र नहीं है चूँकि इन पर राज्य सरकार का नियन्त्रण रहता है। इन संस्थाओं

का अस्तित्व राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है। पंचायती राज लागू होने के कारण तो पंचायती राज के सामान्य प्रशासन में राज्य सरकार की भूमिका बढ़ गई क्योंकि पंचायती राज के द्वारा जो शक्तियाँ ग्रामीण लोगों को सौंपी गई है उसके उचित प्रयोग की सम्भावनाएँ बहुत कम हैं। इसका मुख्य कारण अधिकांश ग्रामीण अनपढ़ और अप्रशिक्षित हैं। इससे इन शक्तियों के गलत प्रयोग की अधिक सम्भावनाएँ बनी हुई हैं। पंचायती राज प्रणाली सरकार के विरोध के लिए नहीं अपितु इसके द्वारा बनाए गए लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बनाई गई हैं। ये केवल स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ ही नहीं, अपितु विकासशील कार्यों को वास्तविक रूप देने का साधन भी हैं। साधन सदा मूल कार्य द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

पंचायती राज का मुख्य उद्देश्य लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत बनाना है। यदि पंचायती राज को अच्छी प्रकार से प्रशासन चलाने तथा उन्हें स्वायत्त शासन की संस्था के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से सरकारी नियन्त्रण के अधिकारों का प्रयोग किया जाए तो यह बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

पंचायती राज की संस्थाओं पर नियन्त्रण का आधार स्थानीय संस्थाओं की स्वायत्तता या आत्म–निर्भरता को समाप्त न करके इसका विकास होना चाहिए। राज्य सरकार को इन संस्थाओं को अधीनस्थ सरकारी अंग न मानकर प्रशासन के मामले में इनमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए बल्कि इनका पथ प्रदर्शन करना चाहिए। राज्य सरकारों को इन पंचायती राज की संस्थाओं पर अपने नियन्त्रण का अधिकार एक मित्र के रूप में ही प्रयोग करना चाहिए। हरियाणा और पंजाब सरकार इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठा रही है।

राज्य सरकार द्वारा सहायता
(Policy Assistance by State Government)

पंचायती राज की सफलता राज्य सरकार द्वारा उसे विभिन्न रूपों में दी जानेवाली सहायता पर निर्भर करती है। राज्य सरकार भी पंचायती राज की सफलता के लिए हर सम्भव सहायता उपलब्ध करवाती है। राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज की प्रशासकीय कार्यकुशलता के लिए प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। जिले की पंचायती राज व्यवस्था जिले के प्रशासनिक अधिकारी के नियन्त्रण में ही काम करती है। यह प्रशासनिक अधिकारी पंचायती राज से सम्बद्ध संस्थाओं के कार्यों पर निगरानी रखता है। पंचायती राज के विकास कार्यों को पूरा करने के लिए राज्य सरकार इन्हें वित्तीय अनुदान, ऋण आदि प्रदान करती है। आवश्यकता पड़ने पर राज्य सरकार उन्हें अतिरिक्त अनुदान राशि भी उपलब्ध करवा सकती है। प्रत्येक लोकतान्त्रिक सरकार अपनी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की हर सम्भव सहायता करके प्रशासन को मजबूती प्रदान करती है। अतः पंचायती राज्य की सफलता राज्य सरकार द्वारा दी जानेवाली सहायता पर मुख्यतः निर्भर करती है।

पंचायती राज की संस्थाओं पर राज्य सरकार का प्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित है। राज्य सरकार कई तरीकों से इन पर अपना नियन्त्रण स्थापित करती है। 1954 की कर जाँच समिति ने पंचायती राज की संस्थाओं पर राज्य सरकार के उत्तरदायित्व के बारे में कहा है, "यह देखना राज्य सरकार का कार्य है कि स्थानीय संस्थाएँ सुसंगठित हैं तथा वे अपने कार्यों का उचित रूप से करती हैं और राज्य के विकास में पर्याप्त भाग लेती हैं।" इन संस्थाओं का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता है बल्कि यह राज्य सरकार की इच्छाओं पर निर्भर करती है। दिसम्बर, 1992 से पहले पंचायती राज की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं था इसीलिए यह सभी राज्यों में पूर्णतः लागू नहीं थी। 22 दिसम्बर को पंचायती राज से सम्बन्धित विधेयक को संसद ने पारित कर दिया। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने पर यह 73वाँ संवैधानिक संशोधन बन गया। इस संशोधन के द्वारा पंचायती राज की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अक्टूबर, 1994 में राष्ट्रपति ने सभी राज्यों को अपने राज्य में पंचायती राज लागू करने का अध्यादेश जारी कर दिया। इसके अलावा केन्द्र सरकार ने भी सभी राज्यों से पंचायती राज व्यवस्था तेजी से लागू करने के निर्देश दिए हैं। आजकल सभी राज्य अपने क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के प्रति कृतसंकल्प है। इस दिशा में जनवरी, 1993 में पंजाब राज्य में और दिसम्बर 1994 में हरियाणा राज्य ने पंचायती राज की तीनों संस्थाओं के लिए पंचायती चुनाव करवाए। अन्य राज्यों की सरकारें भी इस दिशा में कार्य कर रही हैं। अतः राज्य सरकार पंचायती राज में महत्त्वपूर्ण भूमिका

अदा करती हैं।

पंचायती राज के सम्बन्ध में संघीय सरकार की भूमिका
(Role of Union Government Regarding to Panchayati Raj)

पंचायती राज स्वतंत्र भारत की एक महत्त्वपूर्ण खोज है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने अपने एक भाषण में पंचायती राज के विषय में कहा था कि इसकी स्थापना गाँवों में की जा रही है तथा इसके द्वारा लोगों को अपने मामलों का प्रशासन तथा अपने इलाकों का विकास स्वयं करने की शक्ति दी जा रही है। इससे भारत के गाँव और ग्रामीण आत्म–निर्भर बन सकेंगे। पंचायती राज द्वारा गाँवों की शक्ति बढ़ेगी और इससे गाँववासियों को नया जीवन मिलेगा और भारत का निर्माण होगा।

पंचायती राज के सम्बन्ध में केन्द्र की भूमिका
(Role of Central Government Regarding to Panchayati Raj)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में लोकतन्त्र को अपनाया गया है। पंचायती राज की स्थापना का उद्देश्य ग्रामीण स्तर पर लोकतन्त्र को मजबूत बनाना है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में पंचायती राज की व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। जिसके अनुसार, "राज्यों को ऐसे पग उठाने होंगे कि वह ग्राम पंचायतों को संगठित कर सकें और उन्हें वे शक्तियाँ व सत्ता प्रदान करें जिससे कि वे स्वशासन की संस्थाओं की भाँति कार्य करने के योग्य हो सकें।" भारत सरकार ने भी पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा ग्रामीण स्थानीय स्व–शासन के विकास पर बल दिया। पंचायती राज की स्थापना की दिशा में केन्द्र सरकार ने बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसने जनवरी 1957 में अपनी सिफारिशें केन्द्र सरकार की प्रस्तुत की। इस समिति ने ग्रामीण स्तर पर स्थानीय विषयों में निर्णय लेने की विशेष शक्तियों के साथ त्रिसूत्री संस्थागत व्यवस्था का समर्थन किया और ग्रामीण विकास के लिए पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत त्रिसूत्री संस्थागत व्यवस्था (ग्राम, पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद्) की स्थापना पर बल दिया।

मेहता समिति ने इसके साथ ही सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा सम्बन्धी अध्ययन मण्डली ने सिफारिश की थी कि शासन व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण किया जाए तथा सत्ता शासन–व्यवस्था पर नियन्त्रण स्थानीय क्षेत्र के लोकतान्त्रिक प्रतिनिधियों द्वारा हो। 12 जनवरी, 1958 को राष्ट्रीय विकास परिषद् के लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी सिफारिशों का समर्थन किया। इस परिषद् ने पंचायती राज की स्थापना के लिए कुछ सिद्धान्त निश्चित किए। पंचायती राज व्यवस्था सबसे पहले राजस्थान में 2 अक्टूबर, 1959 को हुई। दूसरे स्थान पर आन्ध्र प्रदेश आता है जहाँ इसको प्रथम नवम्बर, 1959 को स्थापित किया गया। पंजाब में इसकी स्थापना 2 अक्टूबर, 1961 में हुई। इस समय भारत के लगभग सभी राज्यों में पंचायती राज लागू है। 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है और भारत के सभी राज्यों को दिसम्बर, 1995 तक अपने राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के निर्देश दिए हैं। अगर किसी राज्य ने जम्मू–कश्मीर के अतिरिक्त दिसम्बर, 1995 तक पंचायती राज लागू नहीं किया तो केन्द्र सरकार कोई भी कार्यवाही कर सकती है। हरियाणा सरकार ने अगस्त 1994 में एक पंचायती राज विधेयक पारित करके दिसम्बर, 1994 में केन्द्र सरकार के निर्देशानुसार पंचायती राज की स्थापना के लिए चुनाव करवाए हैं। पंचायती राज की स्थापना से सामुदायिक विकास को पंचायतों के साथ मिला दिया गया है।

केन्द्र सरकार द्वारा सहायता
(Policy Assistance by Central Government)

केन्द्र सरकार राज्य सरकारों के माध्यम से पंचायती राज की संस्था को हर सम्भव सहायता उपलब्ध करवाती है। केन्द्र सरकार पंचवर्षीय योजनाओं, सामुदायिक विकास योजनाओं और लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा राज्य सरकारों को पंचायती राज की सफलता के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाती है। केन्द्र सरकार के माध्यम से राज्य सरकार की तरफ से पंचायती

राज की संस्थाओं के लिए प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं। केन्द्र द्वारा नियुक्त प्रशासनिक अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवाओं (I.A.S) से सम्बद्ध होते हैं। राज्य के एक जिले की पंचायती राज व्यवस्था, प्रशासनिक अधिकारी के नियन्त्रण में काम करती है। यह प्रशासनिक अधिकारी पंचायती राज से सम्बद्ध संस्थाओं के कार्यों पर निगरानी रखते हैं। केन्द्र सरकार निश्चित समय में पंचायती राज की संस्थाओं का विकास करने के लिए कदम उठाती है प्रत्येक लोकतान्त्रिक सरकार की सफलता स्थानीय स्व–शासन की सफलता पर निर्भर करती है। दिसम्बर, 1992 से पहले पंचायती राज की संस्थाओं का संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं था, इसीलिए यह सभी राज्यों में पूर्णतः लागू नहीं थी। 22 दिसम्बर, 1992 का 73वा संवैधानिक संशोधन विधेयक संसद ने पारित कर दिया। इस संशोधन द्वारा पंचायती राज की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अक्टूबर, 1994 में राष्ट्रपति ने सभी राज्यों को अपने राज्य में पंचायती राज लागू करने का अध्यादेश जारी किया है। इसके अलावा केन्द्र सरकार ने सभी राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के लिए सख्त निर्देश दिए हैं। यदि कोई राज्य (जम्मू–कश्मीर को छोड़कर) अपने क्षेत्र में पंचायती राज व्यवस्था लागू नहीं करता तो केन्द्र सरकार उस राज्य की अनुदान राशि में भारी कटौती या बन्द कर सकती है। आजकल सभी राज्य अपने क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के प्रति कृत संकल्प हैं। जनवरी, 1993 में पंजाब में, दिसम्बर 1994 में हरियाणा राज्य में पंचायती राज की तीनों संस्थाओं के लिए पंचायती चुनाव हुए।

पंचायती राज की संस्थाओं के लिए प्रशिक्षण (Training for Panchayati Raj Institutions)

पंचायती राज की संस्थाओं की सफलता के लिए इनके कर्मचारियों (निर्वाचित सदस्यों) के लिए प्रशिक्षण का बहुत महत्त्व है पंचायती राज में दो तरह के अधिकारी होते हैं – पहले, सरकारी अधिकारी और कर्मचारी, इनमें प्रशासनिक अधिकारी और निम्न श्रेणी के अधिकारी होते हैं। दूसरे, गैर–सरकारी कर्मचारी, इनमें इन संस्थाओं के निर्वाचित सदस्य आते हैं। पचायती राज के प्रशासनिक अधिकारियों में जिनमें भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी भी शामिल हैं, को प्रशिक्षण केन्द्र सरकार की तरफ से दिया जाता है। अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को राज्य सरकार प्रशिक्षण देती है। केन्द्र सरकार भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.) के अधिकारियों को पंचायती राज से सम्बन्धित रिफ्रेशर (Refresher) प्रशिक्षण के लिए भी समय–समय पर भेजती रहती है। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार की तरफ से हैदराबाद में राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान की स्थापना की गई है। इस संस्थान में देश के किसी भी राज्य की पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों को अपनी संस्थाओं की कार्यकुशलता बनाए रखने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। इस संस्थान में प्रत्येक वर्ष जिन पाठ्य विषयों और संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है उनमें ग्रामीण विकास के बहुमुखी क्षेत्रों को शामिल किया जाता है। नवम्बर 1965 में राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान, हैदराबाद को स्वायत्तशासी निकाय बना दिया गया है। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार राज्यों में भी उपकेन्द्र स्थापित कर सकती है। इस दिशा में चण्डीगढ़ में स्थापित किया गया पंचायत भवन या किसान भवन सम्पूर्ण भारत में अनूठा है। यहाँ पर पंचायती राज से सम्बद्ध बैठकें, सम्मेलन और पंचो–संरपचों को विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती है।

पंचायती राज की संस्थाओं पर केन्द्र का सामान्य नियन्त्रण (General Control on Panchayati Raj Institutions by Central Government)

आज विश्व के अधिकांश देशों में स्थानीय स्व–शासन की पद्धति प्रचलित है। यह संस्था अपना कोई पृथक अस्तित्व नहीं रखती है बल्कि यह केन्द्र अथवा राज्य सरकार के नियन्त्रण में कार्य करती है। भारत में प्राचीन काल में चाहे ग्रामीण सस्थाओ को सम्मानित स्थान प्राप्त था फिर भी इन्हें स्वायत्तता प्राप्त नहीं थी। पंचायती राज की संस्थाओं पर केन्द्र द्वारा नियन्त्रण ग्रामीण सेवाओं के उचित निर्देशन, एकीकरण एवं समन्वीकरण के लिए तथा राष्ट्रीय नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में एकरूपता एवं निरन्तरता लाने के लिए भी आवश्यक है। केन्द्र सरकार यह नियन्त्रण राज्य सरकारों के माध्यम से रखती है। केन्द्र सरकार पंचायती राज के सम्बन्ध में कोई भी संवैधानिक संशोधन पारित कर सकती है, जिन्हें लागू करना प्रत्येक राज्य सरकार का दायित्व बन जाता है यदि कोई राज्य सरकार केन्द्र सरकार द्वारा पारित किसी कानून को जो कि पंचायती राज से सम्बद्ध

हो, अगर लागू करने से इन्कार कर दे तो केन्द्र सरकार उस राज्य के विरुद्ध कार्यवाही कर सकती है। 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इसे संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। इस कारण इस पर नीतियाँ विधानपालिका बनाती है, लागू कार्यपालिका करती है और अगर इसके सम्बन्ध में कोई अड़चन या बाधा आए तो उसके सम्बन्ध में व्याख्या न्यायपालिका करती है। न्यायपालिका पंचायती राज से सम्बद्ध राष्ट्रीय हितों को विभिन्न स्तरों पर सुरक्षित करती है।

केन्द्र सरकार पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से इन संस्थाओं के लिए राज्यों में धन आंबटित करती है। राज्य सरकारें इन संस्थाओं के विकास आदि पर खर्च करने के लिए अतिरिक्त अनुदान राशि केन्द्र सरकार से माँग सकते हैं। अतः केन्द्र सरकार राज्य सरकारों के माध्यम से इन संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं।

निष्कर्षतः यह पंचायती राज की संस्थाओं पर केन्द्र सरकार का प्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित नहीं है। केन्द्र सरकार राज्य सरकार के माध्यम से इन पंचायती राज संस्थाओं पर अपना नियन्त्रण स्थापित करती है। सन् 1954 की कर जाँच समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था, "यह देखना सरकार का उत्तरदायित्व है कि स्थानीय संस्थाएँ सुसंगठित है तथा वे अपने कार्यों को उचित रूप से करती है और राष्ट्र के विकास में पर्याप्त भाग लेती है।" इसी रिपोर्ट में सरकारी नियन्त्रण के बारे में भी कहा गया है, "सरकारी नियन्त्रण तथा सहायता अधिक विस्तृत या कम नहीं होनी चाहिए जिससे स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की स्वायत्तता या आत्म–निर्भरता समाप्त हो जाए। सरकार के प्रयत्नों तथा नियन्त्रण का उद्देश्य इन संस्थाओं को प्रशासन के ऐसे योग्य यन्त्र जो अपनी नीतियों का निर्माण कर सकें तथा उन्हें कार्यान्वित कर सकें, के रूप में विकसित करना होना चाहिए।" केन्द्र सरकार ने 73वाँ संवैधानिक संशोधन पारित करके पंचायती राज की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है। संवैधानिक दर्जा प्रदान होने से इन्हें सरकारी संरक्षण प्राप्त हुआ है। पंचायती राज के विषय में राज्य सरकारें केन्द्र सरकार की इच्छानुसार कार्य करती हैं। केन्द्र सरकार का प्रमुख कार्य राज्य सरकारों को पंचायती राज की संस्थाओं के विकास के लिए वित्तीय सहायता अनुदान के रूप में देना है। केन्द्र सरकार का इन संस्थाओं पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण न होने के कारण केन्द्र सरकार राज्यों में पंचायती राज लागू करवाने की दिशा में केवल परामर्शदात्री ही बन जाती है। परन्तु 73वें संशोधन द्वारा केन्द्र सरकार की पंचायती राज की संस्थाओं में भूमिका में वृद्धि हुई और वह इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रही हैं।

अध्याय-19

ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध एवं समस्याएँ

(Rural-Urban Relationship and Problems)

भारत के शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय शासन की संस्थाओं का एक जाल–सा बिछा हुआ है। इनका गठन लोकतन्त्रीय ढग से स्थानीय लोगों द्वारा किया जाता है और यह उनके प्रति उत्तरदायी होती हैं, शहरी क्षेत्रों में नगर निगम, नगरपालिकाओं, अधिसूचित क्षेत्र समितियों तथा टाउन क्षेत्र समितियों की स्थापना की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज प्रणाली को लागू किया गया है जिसके अन्तर्गत ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतों, खण्ड स्तर पर पंचायत समितियों तथा ज़िला स्तर पर ज़िला परिषदों की स्थापना की गई ह। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों की स्थानीय शासन की ये संस्थाएँ भारत के बहुपक्षी विकास के महान् तथा कठिन कार्य में प्रभावशाली रूप से भागीदार हैं। हमारे देश में स्थानीय शासन की दृष्टि से ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों को दो भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में बॉटा गया है। इससे उनमें आपसी भिन्नता बढ़ती चली गई हैं और वे स्थानीय शासन के दो भिन्न टुकड़े बन गए हैं। इससे स्थानीय शासन क ढॉचे का विभागीकरण हो गया है। जिसमें से एक भाग को ग्रामीण स्थानीय शासन तथा दूसरे भाग को शहरी स्थानीय शासन कहते हैं।

शहरी तथा ग्रामीण स्थानीय शासन की संस्थाओं के क्षेत्राधिकार में भिन्नता है। इन संस्थाओं को कितने बड़े क्षेत्र पर अधिकार प्रदान किए जाएँ, इस विषय में अभी तक कोई सर्वमान्य मत सामने नहीं आ पाया है। ऐसा होना संभव नहीं है क्योंकि अनुभव और व्यवहार के संदर्भ में इन संस्थाओं के क्षेत्र में परिवर्तन होते रहना अधिक उपयोगी समझा जाता है। कई बार इनके क्षेत्राधिकार के विषय पर ही इनमें आपसी तनाव तथा झगड़े पैदा हो जाते हैं। ग्रामीण संस्थाओं को शहरी संस्थाओं की अपेक्षा कम शक्तियाँ तथा कम क्षेत्राधिकार दिया गया है। इसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से शहरी संस्थाएँ ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थाओं की अपेक्षा अच्छी स्थिति में हैं, परन्तु प्रायः देखा गया है कि दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं को अपने प्रोजैक्टों तथा नीतियों को लागू करने के लिए सरकारी अनुदानों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अपर्याप्त वित्तीय साधन दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं के मार्ग में सामान्यतः बाधा बन रहते हैं।

शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय शासन की संस्थाओं का गठन लोकतान्त्रिक ढंग से किया जाता है और वे इसी पद्धति के अनुसार कार्य करती हैं। इनके कार्य भी सामान्यतः एक जैसे हैं। उनका मुख्य उद्देश्य जनकल्याण करना है। स्थानीय क्षेत्रों के विकास तथा वहाँ के निवासियों को जीवन की बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने के लिए दोनों वर्गों की स्थानीय संस्थाएँ प्रयत्नशील हैं। शहरी संस्थाओं के कर्मचारियों की संख्या ग्रामीण संस्थाओं की संख्या की अपेक्षा अधिक होती है, परन्तु दोनों क्षेत्रों को कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन, पदोन्नति, सेवा निवृत्ति तथा अनुशासन आदि की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनके कर्मचारी वर्ग सम्बन्धी बहुत से नियम तो राज्य सरकारों द्वारा ही बना दिए जाते हैं। अब धीरे–धीरे सेवाओं के प्रान्तीयकरण की प्रणाली को अपनाया जा रहा है जिसके फलस्वरूप स्थानीय संस्थाओं के कर्मचारियों पर राज्य सरकार का नियन्त्रण बढ़ता जा रहा है, दोनों ही क्षेत्रों की संस्थाओं को राजनीतिक हस्तक्षेप तथा सरकारी कर्मचारियों के नौकरशाही पूर्ण व्यवहार का शिकार होना पड़ता है। उन पर किया जा रहा सरकारी नियन्त्रण भी रचनात्मक नहीं है। शहरी क्षेत्रों की संस्थाओं पर तो राज्य सरकार का स्थानीय शासन विभाग तथा उसका निदेशालय नियन्त्रण रखता है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थाओं पर सामुदायिक विकास तथा पंचायती राज विभाग द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है। ज़िले का ज़िलाधीश दोनों ही क्षेत्रों की संस्थाओं पर नियन्त्रण रखता है। शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा लोग अधिक मात्रा में शिक्षित है तथा वे अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हैं। वे ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों की अपेक्षा अधिक सक्रिय रूप से स्थानीय शासन में भाग लेते हैं तथा स्थानीय शासन को नगरीय सुविधाओं का प्रबन्ध करने में सहायता देते हैं।

आधुनिक युग नगरीकरण का युग है। दिन प्रतिदिन नये–नये नगरों का निर्माण हो रहा है। नगरीकरण को निम्न शब्दों में वर्णित किया गया है–

" Urbanisation is defined as the whole range of governmental organisation and processes for planning at all levels for performing the public services related to an urban area." United Nations Report on Administrative Aspects of Urbanization, New York, 1970.

आंगिक सम्बन्ध (Organic Relationship): इस समय भारत के लगभग सारे ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना

कर दी गई है। इन संस्थाओं का शहरी क्षेत्र की संस्थाओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने तथा उनमें आपसी समन्वय बढ़ाने के लिए, कई राज्य सरकारों ने विशेष कानूनी उपबन्ध भी किए हैं जिनके अनुसार नगरपालिकाओं को अपने कुछ सदस्यों को अपने प्रतिनिधियों के रूप में पंचायती राज संस्थाओं में भेजने की शक्ति दी गई है। ऐसे प्रतिनिधियों का स्वरूप विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है। आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, बिहार तथा गुजरात में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्ष पंचायत समितियों में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्ष पंचायत समितियों में नगरीय स्थानीय संस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। मध्य प्रदेश में नगरपालिका का एक सदस्य पंचायत समिति में नगरपालिका की ओर से प्रतिनिधि के रूप में भेजा जाता है। उड़ीसा में नगरपालिका का अध्यक्ष पंचायत समिति के पदेन सदस्य होते हैं। उत्तर प्रदेश में केवल अधिसूचित क्षेत्र समितियों तथा टाउन क्षेत्र समितियों को ही पंचायत समितियों में प्रतिनिधि भेजने की शक्ति दी गई है, परन्तु पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र राज्यों में इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं किया गया है।

ग्रामीण तथा नगरीय स्थानीय संस्थाओं का इस प्रकार आंगिक सम्बन्ध स्थापित कर देने से दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं में सम्पर्क तथा सहयोग को बढ़ाने में सहायता मिली है, परन्तु इसका लाभ पंचायत समिति स्तर की अपेक्षा ज़िला परिषद् स्तर पर अधिक हुआ है क्योंकि नगरपालिकाओं के सदस्य पंचायत समिति जैसे निचले स्तर की संस्था के कार्यों में पर्याप्त दिलचस्पी नहीं लेते। कई बार पंचायत समिति की बैठकों में ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित ऐसे विषयों पर विचार किया जाता है जिनके बारे में नगरपालिका के प्रतिनिधियों को बिल्कुल कोई ज्ञान नहीं होता। इसलिए वे पंचायत समिति के कार्यों में कोई रुचि नहीं लेते। वह नगरपालिका के अधिक समीप होती है, इसलिए नगरपालिका के सदस्य उसकी कार्यवाहियों में अधिक दिलचस्पी रखते हैं। ज़िला परिषद् की स्थायी समिति आयोजन, विकास तथा यातायात की प्रगति से सम्बन्धित कार्य करती है, इसलिए नगरपालिका के सदस्यों का इसके साथ संबंधित किया जाना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। पंचायत समितियों में नगरपालिकायों द्वारा भेजे गए प्रतिनिधियों की पंचायत समिति की कार्यवाहियों में रुचि लेनी चाहिए, उन्हें देश के ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं को समझना चाहिए और उनके समाधान के लिए अपनी अनुभवी नेतृत्व तथा रचनात्मक परामर्श देना चाहिए। नगरपालिकाओं में पंचायत समितियों तथा ज़िला परिषदों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जाना चाहिए। इससे उनमें आपसी सम्पर्क तथा सहयोग और बढ़ेगा।

क्रियाकारी सम्बन्ध (Functional Relationship): ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं द्वारा किए जा रहे म्युनिसिपल कार्य लगभग एक जैसे होते हैं। उदाहरण के तौर पर सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई, पानी की सप्लाई, डाक्टरी सेवाएँ, सड़कें, गलियाँ तथा नालियाँ बनाना और उनकी मरम्मत करना तथा रोशनी का प्रबन्ध करना इत्यादि कुछ ऐसे कार्य हैं जो दोनों ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं द्वारा किए जाते हैं, इसलिए दोनों क्षेत्रों में यदि कुछ म्युनिसिपल कार्यों को मिल कर किया जाए अथवा आपसी सहयोग से किया जाए तो उससे दोहराव (Overlapping) नहीं होगी और मानवीय शक्ति तथा धन को व्यर्थ मे नष्ट होने से बचाया जा सकेगा। बहुत-सी हालतों में वे अपर्याप्त वित्तीय स्रोतों तथा अपर्याप्त योग्यता के कारण अकेले म्युनिसिपल कार्यों को नहीं कर पातीं, परन्तु यदि वे आपसी सहयोग से उन्हीं कार्यों को करने लग जाएं तो वे अवश्य ही नागरिकों को प्रत्येक प्रकार की बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने में सफल हो सकेंगी।

आयोजन (Planning) के क्षेत्र में भी इनके सहयोग की आवश्यकता है। एक ज़िले के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के विकास के लिए योजनाएँ किसी भी एक क्षेत्र को दृष्टि से ओझल करके नहीं बनाई जा सकतीं। ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए बनाई गई योजनाओं को उनके समीप शहरी क्षेत्रों से सम्बन्धित करना ही पड़ता है। यदि हम सम्पूर्ण देश के बहुपक्षीय विकास का उद्देश्य प्राप्त करना चाहते हैं तो ग्रामीण तथा शहरी आयोजन में ऐसा समन्वय निरन्तर रखना अति आवश्यक है, इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों की विकासशील योजनाओं को उनके साथ लगने वाले शहरी क्षेत्रों की योजनाओं से निरन्तर सम्पर्क तथा सहयोग स्थापित करना होगा, तभी हम एक विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे।

सक्रियात्मक सम्बन्ध (Operational Relationship): सभी पक्षों में से जिस पक्ष में समन्वय तथा सहयोग की अधिक आवश्यकता है वह है सक्रियात्मक क्षेत्र (Operational Field) – यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें संयुक्त प्रयास तथा भागीदारी की भावना को पैदा करने तथा उसे कायम रखने की विशेष रूप से आवश्यकता है। सामाजिक तथा आर्थिक विकास के प्रोजैक्टों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं में सक्रियात्मक एकसारता का होना जरूरी है। दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं के कर्मचारी वर्ग तथा सरकारी अधिकारियों के बर्ताव, नियमों तथा कार्यप्रणाली की पद्धति तथा क्षेत्रीय झगड़े दोनों क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं के मार्ग में कई प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। इन सबको दूर करने के लिए सरकार तथा दोनों क्षेत्रों को

ही रचनात्मक कदम उठाने चाहिए।

ग्रामीण शहरी सम्बन्धों का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है – पंचायती राज अधिनियमों तथा म्युनिसिपल अधिनियमों के उपबन्धों का पूर्ण तथा सही ढंग से लागू किया जाना। विशेषकर भवनों के निर्माण तथा उनके आयोजन की स्वीकृति देने के लिए इन अधिनियमों की पूरी तरह क्रियान्वित की जानी चाहिए। शहरीकरण की बहुत सी समस्याएँ इस कारण बढ़ गई है क्योंकि नगरपालिकाओं तथा नगर निगमों के अधिकार क्षेत्र से बाहर लोगों ने अपने आवास के लिए बनाने शुरू कर दिए हैं। ऐसी बहुत–सी कालोनियाँ शहरों से बाहर बनती जा रही हैं जिनकी स्वीकृति न तो नगरपालिका अथवा नगर निगम से ली जाती है और न ही पंचायती राज संस्थाओं से। इस समस्या की ओर सरकार व शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं को ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि बिना आयोजन के इस अवैध निर्माण का नियमन किया जा सके।

इस प्रकार अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण–शहरी स्थानीय संस्थाओं के निरन्तर विकास के लिए इनमें आपसी सहयोग तथा समन्वय होना बहुत आवश्यक है। यदि वे एक–दूसरे के साथ समीप का सम्पर्क तथा अच्छे सम्बन्ध रखेंगी, एक–दूसरे की समस्याओं को समझेंगी, उन्हें हल करने के लिए संयुक्त प्रयास करेंगी, सामाजिक तथा आर्थिक विकास के सयुक्त प्रोजैक्ट चलाएंगी, तथा एक–दूसरे के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलेंगी तभी वे भारतीय संविधान में लिखित कल्याणकारी राज्य की स्थापना के महान लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकेंगी।

भारतीय स्थानीय संस्थाओं की समस्याओं का सम्बन्ध उनके क्षेत्र, कार्य, संगठन, सेवीवर्ग नियन्त्रण, वित्तीय प्रबन्ध तथा जनता का सहयोग आदि बातों में रहता है।

1. **क्षेत्रीय समस्याएँ (Area Problems)**– शहरी और ग्रामीण सम्बन्ध में सर्वप्रथम समस्या क्षेत्रीय है। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि संस्थाओं का अधिकार क्षेत्र कितना बड़ा रखा जाए। शहरी एवं देहाती क्षेत्रों में कार्य कर रहे विभिन्न स्थानीय निकायों को कितने बड़े क्षेत्र पर अधिकार प्रदान किया जाए। शहरी एवं देहाती क्षेत्र के बारे में अभी तक कोई सर्वमान्य मत सामने नहीं आ पाया है, ऐसा होना सम्भव नहीं है क्योंकि अनुभव और व्यवहार के संदर्भ में इन संस्थाओं का क्षेत्र बदलता रहना अधिक उपयोगी समझा जाता है। शहरी क्षेत्र के आधार पर नगर निगम, नगर परिषद्, नगरपालिका समिति (Notified) क्षेत्र समितियाँ आदि संस्थाएँ संगठित की जाती हैं।

   ग्रामीण क्षेत्र की संस्थाओं की बहुत कम शक्तियाँ होती हैं क्योंकि क्षेत्र छोटा होने के कारण कार्य व्यापक नहीं होता है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्र को अधिक व्यापक अधिकार दिए हुए होते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में ये भी देखना पड़ता है कि क्षेत्र के आधार पर वहाँ पंचायत समिति एवं जिला परिषद् का क्या आकार रखा जाए। पंचायतों के क्षेत्र का निर्धारण करते समय एक बात का ध्यान रखा जाता है कि ये संस्थाएँ आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन सकें।

   शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही स्थानीय शासन की संस्थाएँ हैं और इसके कार्य लगभग एक जैसे हैं। क्षेत्र की समस्याएं ता एक ही हैं।

2. **कार्य समस्या (Problems of Functions)**– शहरी एवं ग्रामीण सम्बन्धों में कार्यों का जानना भी आवश्यक है। ग्रामीण संस्थाएं जैसे ग्राम पंचायत, पंचायत समितियां और जिला परिषद् विकास विभाग के अधीन कार्य करती हैं इनका स्थानीय शासन विभाग से कोई सीधा सम्पर्क नहीं होता। यह उचित है कि विकास विभाग और स्थानीय शासन विभाग दोनों ही विभाग सरकार के हैं। परन्तु फिर भी शहरी और देहाती वर्ग अपना–अपना निश्चित कार्य करते हैं। इनका आपस में सम्बन्ध कम ही होता है।

3. **सेवा वर्ग नियन्त्रण सम्बन्ध समस्या (The Problems Related to Personnel Control)**– शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य जन कल्याण है। दोनों ही लोकतन्त्रीय ढंग से कार्य करती हैं। शहरों का नियन्त्रण स्थानीय शासन विभाग करता है और ग्रामीण इलाके का नियन्त्रण पंचायत विभाग के द्वारा किया जाता है। पंचायतों के कर्मचारियों की संख्या बहुत कम होती है और नगर पालिकाओं के कर्मचारी कार्यों के कारण संख्या में अधिक होते हैं। दोनों ही संस्थाओं की यह समस्या है कि कर्मचारियों की नियुक्ति प्रतियोगिता, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा निवृत्ति, अनुशासन तथा अनुशासन सम्बन्धी नियम राज्य सरकार द्वारा बनाए जाते हैं। पंचायतों का नियन्त्रण पंचायत विभाग के पास है। परन्तु फिर भी शहरी और ग्रामीण लोगों की समस्याएँ एक जैसी हैं। उनका सम्बन्ध साधारणतः एक जैसा नहीं है। यह ठीक

है कि दोनों संस्थाओं को सहयोग से कार्य करना चाहिए परन्तु नियन्त्रण अलग–अलग होने के कारण कर्मचारियों सम्बन्धी समस्या उत्पन्न नहीं होती। प्रशिक्षण केन्द्रों की कमी है। जितने भी प्रशिक्षण केन्द्र हैं उनमें पर्याप्त सुविधाएँ नहीं जुटाई जातीं। कम-से- कम प्रशिक्षार्थियों को आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने योग्य बनाया जाए। सेवीवर्ग लोगों की सेवाओं का प्रान्तीयकरण भी कर दिया जाए। प्रान्तीयकरण से यह लाभ होगा कि पदोन्नति के अवसर बढ़ जाएँगे। कर्मचारी अपने संगठन बनाएं जिससे वे अपनी समस्याएँ सरकार या उनके प्रतिनिधियों के समक्ष पेश कर सकें।

4. **समन्वय की समस्या (The Problem of Co-ordination)**- समन्वय की समस्या प्रत्येक संगठन में आंतरिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्व रखती है। किसी भी संगठन का सफल कार्य संचालन एवं कुशल रूप से उनके कर्त्तव्यों का निर्वाह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके विभिन्न अंगों और उन अंगों का कर्मचारियों के बीच कितना समन्वय है। (The Purpose of co-ordination is to achieve smooth and efficient functioning, remove bottlenecks and avoid wastage due to overlapping and duplication, co-ordination also ensures better relationship between different functionaries and institutions. -Sadiq Ali Report)

पंचायती राज संस्थाएँ स्थानीय सरकार की इकाई के रूप में कार्य करती है। उनको राज्य सरकार के अभिकरण के रूप में कार्य करना पड़ता है, राज्य सरकार अनेक कार्यक्रमों को इन्हें हस्तान्तरित कर देती है। सामुदायिक विकास से सम्बन्धित क्रियाएँ जो कि ग्रामों के आर्थिक जीवन में क्रान्ति लानेवाले प्रमुख निकाय हैं पंचायती राज संस्थाओं के सहयोग की आकांक्षा करती है। पंचायती राज को पुलिस राजस्व, जंगलात आदि विभिन्न सरकारी विभागों से भी सम्बन्ध रखना होता है। यह संगठन ग्रामीण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लिए अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य करते हैं। पंचायती राज संस्थाओं में समन्वय की पूर्णता केवल तभी आ सकती है जब कि उच्च स्तर पर समन्वय को प्रभावशाली बनाया जाए।

5. **वित्तीय समस्याएँ (The Financial Problems)**– वित्त प्रशासन जितना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है उतना ही उल्लेखनीय है। भारत में शहरी एवं देहाती दोनों ही क्षेत्रों में स्थानीय निकाय वित्त की अपर्याप्तता से प्रभावित है। वित्त की अपर्याप्तता स्थानीय निकायों के मार्ग में सामान्यतः अवरोधक बनी रही है। वे अपने कार्यक्रमों को ठीक प्रकार से नहीं चला पाते। उन्हें धन के लिए सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है जो पर्याप्त सहायता नहीं दे पाती जो दी जाती है वह समय पर नहीं मिलती है।

इनके सुधार के लिए कौन-कौन से कदम उठाए गए हैं? (What steps have been taken to improve them?)

शहरी और ग्रामीण सम्बन्धों के सुधार के लिए आमतौर पर समन्वय समितियाँ बनाई जाती हैं जिनमें इलाके के चुने हुए प्रतिनिधि मुख्यतः सम्बन्धित इलाके का विधानसभा सदस्य, डिप्टी कमिश्नर, जिला परिषद् अधिकारी, ब्लाक विकास तथा पंचायत अधिकारी, ग्राम पंचायतों में से इलाके का सरपंच तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को शामिल किया जाता है। इन Co-ordination Committees की समय–समय पर मीटिंग होती रहती है तथा इन कमेटियों द्वारा शहरी तथा ग्रामीण सम्बन्धों को सुधारने के लिए सरकार को सुझाव दिए जाते हैं। सरकार इन सुझावों को लागू करने के लिए उचित कार्यवाही करती है अतः यह कहा जा सकता है कि स्थानीय शासन की सफलता के लिए शहरी सम्बन्धों का सकुशल होना काफी जरूरी है।

कहा जा सकता है कि शहरी और ग्रामीण दोनों ही संस्थाओं के अलग–अलग और निश्चित कार्य हैं और उनका अन्तिम निशाना जन–कल्याण है। शहरी निकाय स्थानीय शासन विभाग के अधीन कार्य करते हैं और ग्रामीण संस्थाएँ पंचायत विभाग के अधीन कार्य करती हैं। इनकी आपस की बहुत सी समस्याएँ हैं। परन्तु यदि सरकार यह चाहती है कि ग्रामीण तथा नगरीय स्थानीय संस्थाएँ ठीक प्रकार से उन्नति के पथ पर अग्रसर हों तो इसके लिए यह आवश्यक है कि इन दोनों संस्थाओं में आपसी सहयोग तथा समन्वय की भावना उत्पन्न हो। यदि शहरी तथा ग्रामीण संस्थाएँ एक दूसरे के साथ अच्छा सम्बन्ध रखेंगी और आपसी सम्पर्क स्थापित करेंगे, एक दूसरे की समस्याओं को समझने की कोशिश करेंगी तो दोनों ही संस्थाओं को लाभ पहुँचेगा। चतुर्मुखी विकास के लिए एक–दूसरे के साथ सहयोग करके योजनाएँ बनाएँ और उन्हें कार्य रूप दें तभी भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सकती है।